पशुधन प्रकाश

दशम् अंक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा)

पशुधन प्रकाश

(दशम् अंक - 2019)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल- 132 001 (हरियाणा) भारत

पशुधन प्रकाश

(दशम् अंक-2019)

संरक्षक एवं प्रकाशक

रमेश कुमार विज, निदेशक

मुख्य सम्पादक

मोनिका सोढ़ी

सम्पादक मंडल

अनिल कुमार मिश्र
संजीव सिंह
करणवीर सिंह
सतपाल

© भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

अंक-10 (वर्ष-2019)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए आंकडे तथा विचार लेखकों के अपने हैं।
उनके लिए संपादक मंडल अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक:
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल, करनाल - 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184-4043541, 80539-76111
ई-मेलः jobs.ipp@gmail.com

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
ICAR - NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box-129, G.T. Road - By Pass, Near Basant Vihar
KARNAL - 132 001 (Haryana)

डॉ. रमेश कुमार विज
निदेशक
Dr. RK Vijh
Director

निदेशक की कलम से...

पशुपालन आधुनिक कृषि का एक महत्वपूर्ण भाग है। आज पशुपालन बोझ नहीं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की शक्ति है। भारत की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए कृषि विकास और पशुपालन के सशक्तिकरण की आवशकता है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल भारतीय पशु अनुवांशिक संसाधनों की पहचान, योगदान, संरक्षण एवं इनके सतत् उपयोग के साथ साथ विकास और ज्ञान के हस्तांतरण के प्रति भी प्रतिबद्ध है। पशुधन विकास मे तत्पर विभिन संस्थानों एवं ब्यूरो के संयुक्त प्रयास से विगत वर्ष में नस्ल पंजीकरण समिति द्वारा पशुधन और मुर्गी की पंद्रह नई भारतीय नस्लों का पंजीकरण किया गया। इसमें गोवंश की दो, भैंस की तीन, बकरी की छह और भेड़, सुअर, गधे और मुर्गे की एक-एक नस्ल शामिल हैं। इन नई पंजीकृत नस्लों को शामिल करने के बाद, अब देश में कुल देसी पशुधन नस्लों की संख्या 184 हो गई है। इन प्रयासों के माध्यम से हमारा संस्थान किसानों के साथ कदम से कदम मिला कर उन्नति के पथ पर अग्रसर है।

पशुधन सम्बन्धी शोध के साथ-साथ हमारा संस्थान राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और इसके राजकीय कार्यों में अधिकाधिक प्रयोग हेतु निरंतर प्रयासरत है "मेरा गाँव मेरा गौरव" कार्यक्रम द्वारा गाँव-गाँव जाकर वैज्ञानिकों द्वारा किसानो को पशुओं की नई नस्लों व नवीन तकनीकों की जानकारी हिंदी में प्रदान की जा रही है। "पशुधन प्रकाश" पत्रिका इसी दिशा में एक सशक्त प्रयास है जिसका लक्ष्य पूरे भारत में युवा वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और शिक्षाविदों के लिए एक ऐसा मंच प्रदान करना है, जो बहु-विषयक विज्ञान और पशु सम्पदा पर किए गए अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने और इस जानकारी को किसानों के साथ साझा करने लिए हैं। प्रस्तुत अंक में कुल 29 लेखों को सम्मलित किया गया है जो पशु प्रबंधन, पशु स्वास्थ्य, नस्ल सुधर एवं चारा प्रबंधन आदि से सम्बंधित है। आशा करता हूँ कि यह लेख कृषि एवं पशु पालन से जुड़े लोगो के लिए लाभप्रद होंगे। पत्रिका में सुधार हेतु आपके सुझाव एवं मार्गदर्शन का स्वागत है।

मैं "पशुधन प्रकाश" के उज्जवल एवं उन्नतिपूर्ण भविष्य की कामना करता हूँ।

(रमेश कुमार विज)

सम्पादकीय

आधुनिक अनुसंधानों को सहज व सरल तरीके से पशुपालकों तक पहुंचने में हिंदी भाषा का एक महत्वपूर्ण योगदान है। चूंकि यह देश के अधिकतर प्रांतों में बोली व समझी जाती है, इस लिए हिन्दी का सम्मान, देश का सम्मान है। हिंदी में प्रकाशित "पशुधन प्रकाश" पत्रिका अनुसंधानों को जन-मानस तक पहुंचने के लिए एक प्रयास है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल, विगत चार दशकों से देशी पालतू पशुधन एवं कुक्कुट संसाधनों की पहचान, मूल्यांकन, लक्षणीकरण, संरक्षण एवं उनके सतत उपयोग से सम्बंधित सभी क्षेत्रों में शोध कार्य में संलग्न है एवं इससे सम्बंधित नवीनतम अनुसंधानों तथा तकनीकों को पशुपालकों तथा पशु पालन से सम्बंधित नीति निर्माताओं एवं विकास संस्थाओं को स्थानातरित करने में महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। हमें अत्यंत प्रसन्नता है कि भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" का दशम अंक आपके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस अंक में देश में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण नस्लों की जानकारी, बकरी एवं भैंस पालन बकरी एवं भैंस पालन की किसानों की आय वृद्धि में भूमिका, पशुओ में पाई जाने वाली विभिन्न बीमारियां एवं उनका समाधान, महिलाओं की पशुधन प्रबंधन में भूमिका, भेड़ एव बकरी के दूध की शुद्धता व मिलावट की आधुनिक तकनीकों द्वारा पहचान, बकरियों में कृत्रिम गर्भधारण, शूकर पालन आदि से सम्बंधित लेखों को शामिल किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह अंक सभी पशुपालक भाईयों के लिए उपयोगी साबित होगा। यद्यपि पत्रिका के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती गयी है, फिर भी अगर इस अंक में कोई त्रुटि पाए तो हम क्षमाप्रार्थी हैं। इसकी सूचना अवश्य दें ताकि आगामी अंकों में समुचित सुधार किया जा सके। हम सम्पादक मंडल के सभी सदस्य सभी लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं एवं आशा करते हैं कि भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा।

सम्पादक मंडल

विषय-सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	**जलवायु परिवर्तन और पशुपालन** सत्येन्द्र पाल सिंह	1
2.	**भारत में बकरी पालन से ग्रामीण आबादी की आय दुगुनीः परिदृश्य एवं सम्भावना** अनुज कुमार सिंह सिकरवार एवं मनोज कुमार सिंह	7
3.	**गर्भित पशु की देखभाल व इस दौरान होने वाले प्रमुख रोगों से बचाव** संजय कुमार मिश्र एवं अतुल सक्सेना	16
4.	**समुचित पशु आहार प्रबन्धन का दुग्ध उत्पादन में महत्व** संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव	19
5.	**बकरी पालनः एक बहुउद्देश्यीय व्यवसाय** पल्लवी सिंह एवं रवि रंजन	21
6.	**गाय तथा भैसों की प्रमुख नस्लें तथा उनकी पहचान** दुर्गा शंकर गोस्वामी एवं जगदीश प्रसाद तेतरवाल	26
7.	**तेलंगाना राज्य की बकरियों की बाह्या व् आनुवंशिक रूपरेखा** नरेश वर्मा	33
8.	**भारतीय परम्परा में गोवंश का महत्व** दीपक कुमार पाण्डेय एवं उमेश कुमार शुक्ला	36
9.	**भैंस पालन: किसानों की आय दोगुनी करने का उत्तम विकल्प** एस.पी. सिंह, चेतना गंगवार, डी. एन. सिंह एवं एस.डी.खर्चे	38
10.	**बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान: एक नवोन्मेशी तकनीक** चेतना गंगवार, एस.डी.खर्चे, अनुज कुमार सिंह एवं ए.के. मिश्रा	43
11.	**जन्मजात विसंगतियां एवं शल्यचिकित्सा द्वारा उपचार** सुरभि के. त्यागी, विनीत कुमार एवं विवेक मलिक	46
12.	**सतत एवं लाभदायक शूकर पालन के दो पहलू : चयन एवं योजनाबद्ध प्रजनन** देवेश कुमार यादव, कुलदीप कुमार त्यागी एवं अतुल गुप्ता	49
13.	**भेड़ एवं बकरी के दूध की पीसीआर आधारित तकनीक से शुद्धता एवं आपस में मिलावट की पहचान** अमरसिंह मीणा, राजीव कुमार एवं अरूण कुमार	54
14.	**पशुपालन की दैनिक गतिविधियों के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका** इन्दु देवी, राज कुमार, रमेश चन्द्र शर्मा एवं अर्पिता महापात्रा	57

15. **शून्य खर्च में हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन: सफल पशुपालन के लिए तकनीकी विकल्प** 62
धर्मेन्द्र कुमार एवं राकेश रंजन

16. **राजस्थान की विभिन्न बकरी की नस्लें** 65
हेमलता चौहान, जी.सी. गहलोत एवं सुनीता मीणा

17. **पशुओं के रोगवाहक (वैक्टर) जनित रोग** 67
करम चन्द एवं एस. के. विश्वास

18. **पशुओं के लिए चुकन्दर एक महत्वपूर्ण चारा फसल** 70
सूर्यपाल सिहं, हर्षिता सिंह एवं सज्जन सिंह

19. **बुन्देलखण्ड में बकरी पालन -समस्या व समाधान** 72
साकेत भूषण

20. **बीज व वनस्पतियों से पशुओं की बीमारियों का इलाज़** 75
सुर्यपाल सिंह एवं हर्षिता सिंह

21. **जीवन का आधार है - स्तम्भ कोशिकाएँ** 80
अनुज कुमार सिंह सिकरवार, जूही पाठक एवं एस.डी. खर्चे

22. **अनाम से "घुर्रा" तक-इतिहास, चित्रण, प्रलेखन और पंजीकरण** 86
ज्ञानेन्द्र कुमार गौड़, प्रशांत बोरो, मंजूनाथ पटेल एवं एन आर साहू

23. **किसानों के लिए मोबाइल एप्लिकेशन और मोबाइल फोन विशेषताओं का उपयोग** 92
सुनेष, अशोक ब्लहारा एवं सज्जन सिंह

24. **प्रजनन क्षमता में सुधार के लिए भैंस की ब्रीडिंग** 95
शिवम् भारद्वाज एवं संजीव सिंह

25. **नियंत्रित प्रजनन विधि द्वारा गौवंशीय पशुओं में गर्भधारण** 99
सत्यनिधि शुक्ला एवं उमा शंकर तिवारी

26. **जंसकारी घोड़ा : लद्दाख की दुर्गम परिस्थितियों के लिए एक उत्तम नस्ल** 101
प्रिंस विवेक, मोनिका सोढ़ी, रणजीत सिंह कटारिया, साकेत कुमार निरंजन, विजय कुमार भारती, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

27. **पशुओं में पीलिया (पीत) रोग** 105
दिग्विजय सिंह, अखिलेश कुमार सिंह, मनोज कुमार एवं उदय प्रताप सिंह

28. **गोवंशों में टिक संक्रमण: समस्या और समाधान** 107
अवनीश कुमार सिंह, करणवीर सिंह, कमल जायसवाल, मोनिका सोढ़ी, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

29. **गाय/भैंसों में रिपीट ब्रीडिंग/फिरावट (पशु का बार-बार गर्मी में आना)** 111
संजय कुमार मिश्र एवं अतुल सक्सेना

जलवायु परिर्वतन और पशुपालन

सत्येन्द्र पाल सिंह

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना-476001 (मध्य प्रदेश)

खेतीबाड़ी के साथ पशुपालन सहायक व्यवसाय के रूप में प्राचीन काल से ही ग्रामीणों और किसानों की आजीविका का अति महत्वपूर्ण अंग रहा है। ग्रामीण अंचल में लोगों द्वारा पशुओं का लालन-पालन खेतीबाड़ी से पहले ही अंगीकार कर लिया गया था। इसके बाद धीरे-धीरे लोगों द्वारा पशुओं के सहयोग से खेतीबाड़ी करना शुरू किया गया। इसलिए यह कहा जाता है कि पशुपालन भारतीय कृषि की रीढ़ रहा है। मशीनीकरण के दौर में खेतीबाड़ी में पशुओं का प्रयोग भले ही नगण्य हो गया है, लेकिन बावजूद इसके पशुपालन का महत्व कम नहीं हो जाता है। भारतीय प्रायद्वीप में पाले जाने वाले पशुओं की नस्लों पर नजर डाली जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहां पाली जाने वाले पशुओं- गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि की नस्लों को एक क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुकूल ही पालन को प्रमुखता दी जाती थी। ऐसा क्यों था इसका उत्तर उस समय के लोगों की वैज्ञानिक सोच को ही दर्शाता है। क्योंकि उस क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुकूल विकसित नस्लों के पालन में जोखिम नहीं था। आज भी अधिकांश क्षेत्रों में वहां की अनुकूलता के अनुसार ही पशुओं की नस्लों का पालन किया जाता है।

बदलते जलवायु परिवर्तन को देखते हुये पशुपालन के समक्ष कई चुनौतियां अभरकर सामने आ रहीं हैं। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम आसानी से देखे जा सकते हैं। इनका प्रभाव खेतीबाड़ी के साथ पशुपालन पर पड़ने लगा है। इससे दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन प्रभावित होने से लेकर उनके विकास, प्रजनन और पशु रोगों पर असर पड़ रहा है। आने वाले समय में यदि यही रूख जारी रहा तो जलवायु परिवर्तन के खतरे पशुपालन के समक्ष गंभीर चुनौती बनकर उभरेंगे। आज देश के कई भागों में कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की अलग-अलग तस्वीर देखने को मिलती हैं। इतना ही नहीं कम होती सर्दी, घटते बरसात के दिन, बढ़ता तापमान यह सब जलवायु परिवर्तन के कारण ही हो रहा है। इस सब का प्रभाव पशुपालन पर आसानी से देखा जा सकता है। यदि अभी से इस दिशा में प्रयास नहीं किये गये तो आने वाले वर्षों में इसके घातक परिणाम भी सामने आ सकते हैं।

1. पशुधन की संख्या में आ रहा बदलाव

जलवायु परिवर्तन के खतरे से धीरे-धीरे ही सही पशुपालकों के सामने कई समस्याऐं उभरकर सामने आना शुरू हो चुकी हैं। यह जलवायु परिवर्तन का ही असर है कि पशुधन की संख्या में कमी आ रही है। वर्ष 2007 और 2012 की पशु गणना की तुलना करें तो आसानी से देखा जा सकता है कि पशुधन की संख्या में गिरावट आ रही है।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में पशुधन और मुर्गी की संख्या में बदलाव (हजारों में)

प्रजाति	ग्रामीण क्षेत्रों में कुल पशुओं की संख्या			शहरी क्षेत्रों में कुल पशुओं की संख्या		
	2007	2012	% बदलाव	2007	2012	% बदलाव
गाय	190297	183736	-3.45	8778	7168	-18.34
भैस	99916	104095	4.18	5427	4607	-15.11
याक	83	76	-8.43	-	-	-
मिथुन	234	291	24.56	31	7	-78.10
भेड़	69601	63775	-8.37	1957	1294	-33.90
बकरी	133314	129081	-3.18	7224	6092	-15.66
घोड़ा एवं खच्चर	556	563	1.31	55	61	11.68
मुले	125	183	46.23	12	14	13.26
गधा	372	267	-28.09	66	51	-22.29
ऊंट	507	390	-22.99	10	10	-1.80
सूअर	9960	9226	-7.37	1174	1068	-9.06
कुत्ता	16513	9495	-42.50	2575	2178	-15.42
मुर्गी	606738	697895	15.02	42092	31314	-25.60

स्रोतः 19 वीं पशुगणना-2012 रिपोर्ट, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

2. बढ़ता तापमान

बढ़ता तापमान पशुपालन में कई तरह से असर डाल रहा है। बढ़ते तापमान के कारण दुग्ध उत्पादन प्रभावित होने के साथ ही पशु प्रजनन की समस्या भी पैदा हो रही है। उत्तर भारत में पशुपालकों द्वारा गायों की बजाय भैंस पालन ज्यादा जोर दिया जाता है। भैंस एक सीजनल ब्रीडर है। अधिकांशतः भैंस बरसात से लेकर सर्दियों में (अगस्त से लेकर मार्च तक) गर्मी में आकर गर्भधारण करती है। लेकिन गर्मी के मौसम में (अप्रैल से लेकर जुलाई तक) गर्मी में आने और गर्भधारण करने का प्रतिशत काफी कम हो जाता है। इतना ही नहीं तापमान में बढ़ोत्तरी होते ही भैंस का दुग्ध उत्पादन भी बुरी तरह से प्रभावित होता है। यदि इसी प्रकार से तापमान में बढ़ोत्तरी सर्दियों के दिन कम होने के साथ ही गर्मियों के दिनों में बढ़ोत्तरी होती रही तो निश्चित रूप से उत्तर भारत में भैंस से प्राप्त होने वाले दुग्ध उत्पादन और उनके प्रजनन में गिरावट आयेगी। देश के उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब जैसे बड़े दुग्ध उत्पादक राज्य इससे बुरी तरह से प्रभावित होगें।

3. दुग्ध उत्पादन

प्राथमिक अध्ययनों से यह बात साफ हो गई है कि तापमान के बदलाव और बढ़ते तापमान के चलते पशुओं के दुग्ध उत्पादन और विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्मियों में उष्मागत तनाव के कारण दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में गिरावट के नकारात्मक प्रभाव के चलते उनका यौवन, गर्भ धारण की क्षमता, गर्भावस्था और दुग्धकाल की अवधि प्रभावित होती है। उष्मागत तनाव के कारण देश में गाय और भैंस से प्राप्त होने वाला लाखों लीटर दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है। यह देखा गया है कि अकेले उत्तर भारत में तापमान में बढ़ोत्तरी के नकारात्मक प्रभाव के कारण गाय और भैंस के दुग्ध उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है। इससे ज्यादा दुग्ध उत्पादन करने वाली क्रॉस ब्रीड गायें, भैंस एवं भारतीय गायें भी प्रभावित होती हैं।

4. पशु विकास एवं मांस उत्पादन

पशुओं का वृद्धि एवं विकास उनके "जीनोटाइप एवं पर्यावरणीय कारक" के द्वारा प्रभावित होता है। जलवायु तत्वों एवं अन्य पर्यावरणीय कारक जैसे आहार की उपलब्धता शरीर विकास में महत्वपूर्ण योगदान करती है। शारीरिक विकास एक संवेदनशील प्रक्रिया है जिस पर उष्मागत तनाव का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है खासकर उष्मा को संश्लेषित करने के दौरान। तनावपूर्ण स्थिति की तुलना में पशुओं का विकास आरामदायक स्थिति में बेहतर होता है। पशुओं में नवबंर से लेकर मार्च तक अधिक विकास दर रहती है, जबकि अप्रैल से लेकर सितबंर तक ऐसा नहीं होता है।

5. शारीरिक क्रिया

तापमान के बढ़ने पर पशुओं की शारीरिक प्रतिक्रियाओं में वृद्धि होती है। जिससे सबसे ज्यादा कार्डियोपल्मोनरी और उसकी तीव्रता की क्षमता प्रभावित होती है। पशुओं के शरीर को और अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में पशुओं को बेहतर हवा के आवागमन वाले हवादार-छायादार स्थान पर रखना चाहिए।

6. प्रजनन कार्य

थर्मल स्ट्रेस के कारण भारतीय पशुधन विशेषकर गाय और भैंस में दुग्ध उत्पादन में गिरावट, पशुओं के गर्मी के न आने तथा गर्मी के लक्षण प्रकट नहीं करने तथा गर्भ धारण नहीं होना प्रमुखता से देखा जा रहा है। भैंस बढ़ते तापमान के प्रति बहुत ही ज्यादा संवेदनशील है। गर्मियों के दिनों में भैंस की बहुत कम प्रजनन क्षमता रह जाती है। इससे गर्भधारण की क्षमता कम होती है। पशु साइलेंट हीट प्रर्दशित करता है जिससे गर्भधारण में भारी गिरावट आने, शुष्क काल का समय बड़ने के साथ ही बच्चा पैदा करने के अंतराल का समय बढ़ता चला जाता है। इससे के चलते डेयरी पशुओं का प्रजनन चक्र बुरी तरह से प्रभावित होता है। जलवायु परिवर्तन के चलते इसी प्रकार से आगे भी तापमान में वृद्धि जारी रही तो भैंस के अलावा अन्य पशुओं की प्रजातियों में साइलेंट हीट, छोटा मदकाल और प्रजनन क्षमता में ओर अधिक गिरावट आयेगी।

7. पशु रोग

जलवायु परिवर्तन के कारण पशु रोगों में भी वृद्धि देखी जा रही है। सामान्य तापमान की दशा में आद्रता के उपयुक्त होने पर कई प्रकार के कीट, बैक्टीरिया आदि पनपते हैं, जोकि पशुओं में रोग पैदा करने का कारण बनते हैं। अधिक दुग्ध उत्पादन करने वाले पशु प्रोटोजुआन रोग ट्रायीपेनोसियोसिस एवं बेबीसिएसिस के प्रति बहुत ही संवेदनशील रहते हैं। कुछ वाइरल बीमारियां जैसे पीपीआर

एंव आरपी छोटे एवं बड़े पशुओं को प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार से बैक्टीरिया द्वारा संचारित रोग थनैला और खुरपका-मुंहपका भी डेयरी पशुओं पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

8. जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिये अनुकूल प्रथाओं और प्रोद्योगिकियां

जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिये अनेक प्रथाऐं एवं प्रोद्योगिकियां प्रयोग में लायी जाती हैं। इसमें कई तकनीकी ऐसी हैं जिन्हें बिना किसी खर्चे और आर्थिक सहयोग के पूरा किया जा सकता है। ग्रामीण अंचल के संसाधन विहीन पशुपालक किसानों के लिये इस प्रकार की तकनीकी काफी कारगर रहती हैं।

8.1 सूक्ष्म पर्यावरण संशोधन: पशुओं के आवास में पर्यावरण के अनुकूल संशोधन करके सूर्य के सीधे आने प्रकाश को रोखा जा सकता है। इससे पशु आवास के तापमान में काफी कमी की जा सकती है। पानी का छिड़काव करने और पंखे आदि लगाकार तापमान और गर्मी को कम किया जा सकता है।

8.2 पशु आवास: पशुओं का आवास ऐसे स्थान पर बनाना चाहिये जहां पेड़ों की घनी छांव हो अथवा पशुशाला के आसपास चारो और पेड़-पौधे लगाकर भी तापमान एवं सीधे आने वाली सूर्य किरणों और धूप को काफी हद तक रोखा जा सकता है। इस प्रकार के पर्यावरणीय संशोधन पशुओं को थर्मल हीट स्ट्रेस से बचाने में बहुत ही कारगर रहता है। पेड़-पौधों की छावं ट्रॉपीकल एवं सब-ट्रॉपीकल जलवायु परिस्थितियों में एक बेहतर पसंद है। इस प्रकार से पशु आवास के पास सूर्य से आने वाली किरणों में 30 प्रतिशत से अधिक कमी लायी जा सकती है।

इसके लिये नीम, पीपल, जामुन, शीशम, बरगद, कंरज आदि के वृक्ष लगाये जा सकते है। पेड़-पौधे के अभाव में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध बांस आदि का प्रयोग करके कपड़े एवं टाट के बोरों के माध्यम से सूर्य की किरणों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार के शैड को आराम दायक मौसम (फरवरी-मार्च और सितंबर-नवबंर) होने पर हटा देना चाहिए और गर्मी के मौसम तथा अत्यधिक ठंड़ की दशा में पुनः लगा देना चाहिये। पशु आवास इस प्रकार से बनाना चाहिये कि लंबाई हमेशा उत्तर और दक्षिण दिशा में होनी चाहिये ताकि सूर्य की किरण सुबह और शाम पशुशाला में पड़ती रहें जिससे पशुशाला साफ, स्वच्छ और सूखी रहे।

8.3 पशु आवास का हवादार: गर्मियों के दिनों में जब गर्म हवायें चलती हैं तब आवश्यक है कि शैड के अंदर हवा का आवागमन को रोखा जा सके और इसके बाद हवा आती-जाती रहे। पशु आवास के अंदर प्रत्येक हिस्से में हवा का आवागमन पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये। पशु आवास के अंदर हवा का आवागमन बढ़ाने के लिये दो काम करने चाहिये। एक पशुशाला बनाते समय अथवा बाद में पशुशाला में ऐसे बदलाव करें जिससे शैड के अंदर हवा सामांय वेग के साथ बहती रहे। दूसरे बदलाव के तहतः पंखे और कूलर लगवाना चाहिये। पशु आवास को उचित तरीके से डिजाइन करना चाहिये जिससे हवा का आवागमन बढ़ने के साथ ही प्राकृतिक रूप से प्रकाश और हवा अंदर आती रहे।

8.4 पानी के छिड़काव द्वारा गर्मी कम करनाः पशु आवास के अंदर हवा के आवागमन के साथ ही पानी का प्रयोग करके पशुओं को प्रभावित करने वाले थर्मल हीट स्ट्रेस को कम किया जा सकता है। पानी की बौछार का प्रयोग वाष्पशील शीतलन को बढ़ाने के लिये किया जाता है। पशुओं पर पानी की बौछार करने का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक मात्रा में गर्मी को कम करना होता है। ऐसा करने से तत्काल रूप से पशुशाला और उसके आसपास के तापमान को कम करके पशुओं को राहत पहुंचाना हैं। पशुशाला में इस हेतु फौगर और स्प्रेयर को लगवाया जा सकता है।

9. पशु आहार और पोषण संसोधन

गर्मियों के मौसम में उष्मागत तनाव (हीट स्ट्रेस) के दौरान पशुओं द्वारा लिये जा रहे आहार के तहतः फीड का सेवन कम हो जाता है। इसका प्रभाव पशुओं के उत्पादन, विकास और वृद्धि पर पड़ता है। इससे बचने के लिये सीधे तौर पर पशुओं को पौषणयुक्त आहार खिलाने की रणनीति अपनानी चाहिये जिससे हीट स्ट्रेस के कारण पशुओं के उत्पादन पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव को कम किया जा सके। पशुओं के आहार में सभी प्रकार के ऐसे घटक मिलाने चाहिये जिससे उसका आहार संतुलित हो सके। पशु आहार में पर्याप्त रूप से रेशा की मात्रा होनी चाहिये जिससे उसका रूमन ढ़ग से कार्य करता रहे। पशुओें को अच्छी गुणवत्ता का चारा खिलाना चाहिये। नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिये पशुओं को अतरिक्त रूप से अधिक ऊर्जा देने वाला आहार खिलाने की आवश्यकता होती है। अधिक उत्पादन करने वाले पशुओं के आहार में 6 से 7 प्रतिशत शुष्क पदार्थ होना चाहिये। यदि पशु नकारात्मक नाइट्रोजन के कारण हीट स्ट्रौक से प्रभावित है तो इसे कम करना चाहिये। उष्मागत तनाव को कम करने के लिये गाय और भैस दोनों को ही पशु आहार में अच्छी गुणवत्तायुक्त पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन खिलाना

आवश्यक होता है। उष्मागत तनाव के दौरान यह ध्यान रखें कि आहार में क्रूड प्रोटीन की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। इसी प्रकार से रूमन पाच्य प्रोटीन की मात्रा 61 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये।

9.1 खनिज और उनकी पूरकताः गर्मियों के मौसम के दौरान उष्मागत तनाव को कम करने में खनिज लवण अतरिक्त रूप से गर्म आद्र पर्यावरण के प्रभाव को कम करने में सहयोग प्रदान करते हैं। खनिज लवण पानी की कमी से होने वाले प्रभाव को भी कम करने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। सोडियम और पोटेशियम शरीर के रखरखाव में पानी के संतुलन को बनाये रखने में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इस दौरान पशुओं के आहार में पोटेशियम, सोडियम, मैगनीशियम, कॉपर, सेलेनियम, जिंक, फास्फोरस, कैल्शियम आदि खनिज लवणों को उपयुक्त मात्रा में शामिल करने से गर्मी के प्रभाव को कम करने के साथ ही पशुओं से अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

9.2 पशुओं हेतु फीड एडीट्व्सिः पशु आहार में पौषण की दृष्टि से फीड एडीट्व्सि उष्मागत तनाव को कम करने में लाभदायक होते हैं। सामान्यतौर पर फीड एडीट्व्सि गर्मी की अधिकता को कम करने के साथ ही पशुओं के शरीर के अंदरूनी तापमान को कम करते हैं। नाइसिन (निकोटनिक एसिड) एक लाभदायक सप्लीमेंट है। आहार में एंटीऑक्सीडेंट के लिये विटामिन-ए, ई, सेलेनियम, जिंक आदि उष्मागत तनाव को कम करने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पशु आहार में इनको नियमित तौर पर शामिल करने पर पशुओं को थनैला जैसी बीमारी से बचाव के साथ ही हीट स्ट्रेस के नकारात्मक प्रभाव को कम किया जा सकता है। एंटीऑक्सीडेंटयुक्त यीस्ट भी आहार में शामिल करने से उष्मागत तनाव को कम करने, पशुओं का स्वास्थ्य बेहतर बनाये रखने एवं उनसे गुणवत्तापरक दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान में पशुओं के आहार के लिये बाजार में कई प्रकार के प्रोबायोटिक उत्पाद मिल रहे हैं। जिनका प्रयोग उनके आहार में करके जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के साथ ही अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

9.3 खाने का समयः अधिकांश पशुपालक पशुओं को दिन के समय ही चारा-दाना खिलाते हैं। गर्मियों के दिनों में जिस समय पशुओं को आहार दिया जाता है उस समय का पर्यावरणीय

तापमान अधिक होता है। खासकर दिन में दोपहर के समय गर्मी अपने चरम पर होती है। अतः इस समय आहार नहीं देना चाहिये। पशुओं को गर्मियों के दिनों में ठंड़े समय पर अर्थात सुबह और देर शाम में चारा-दाना खाने को देना उपयुक्त रहता है। इससे पशुओं में आहार गृहण करने का प्रतिशत बढ़ने के साथ ही उष्मागत तनाव कम होता है। इसके साथ ही पशुओं को एक साथ खिलाने की बजाय थोड़ा-थोड़ा करके दिन में कई बार खाने को देना चाहिए।

9.4 पानी: गर्मियों के दिनों में खासकर उष्मागत तनाव के दौरान पशुओं में पानी की आवश्यकता दो से तीन बार अधिक पड़ती है। गर्मियों के दिनों में एक दुधारू गाय और भैस को पूरे दिन में 80 से 100 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। इसलिये गर्मियों के दिनों में पशुधन प्रबंधन में यह आवश्यक है कि पशुओं को स्वच्छ और ताजी पानी की उपलब्धता पर्याप्त रूप से बनी रहे। आहार देने के बाद यदि पानी की उपलब्धता नहीं है तो उत्पादन प्रभावित होता है। अच्छे दुग्ध उत्पादन के लिये भी लगातार पानी पिलाते रहना आवश्यक है। इससे पशुओं के शरीर का तापमान कम करने में मदद मिलती है। हमेशा यह ध्यान रखा जाये कि पशुशाला में स्वच्छ, ताजी और शीतल जल की उपलब्धता पशुओं के लिये बनी रहे। दुधारू पशुओं को दुग्ध दोहन से पूर्व एवं पश्चात तथा चारा-दाना खिलाने के उपरांत पानी पिलाना नितांत आवश्यक होता है।

10. पशुधन नस्ल सुधार

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को लंबे समय तक कम करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पशुओं की ऐसी नस्लें विकसित की जायें जोकि आनुवांशिक रूप अधिक उत्पादन, प्रजनन एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से सक्षम होने के साथ ही जलवायु की अनुकूलता में अपने

आप को ढ़ाल सकें। हमारे देश में विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पायी जाने वाली स्थानीय पशुओं की प्रजातियां पहले से ही जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील हैं। जिसमें कांकरेच, थारपारकर, देवनी, अंगोल, नागपुरी, हैल्लीकर, सूरती, जाफराबादी, सिरोही, ओसमानाबादी, जमुनापारी, झालाबाड़ी, मारवाड़ी, पटनवाडी, मगरा, मालपुरा, मंडया आदि हैं जोकि विपरीत जलवायु परिस्थितियों में भी अधिक तापमान को सहने में सक्षम हैं। यह स्थानीय नस्लें सदियों से उक्त जलवायु क्षेत्रों में रहते हुये अपने आप को वहां ही जलवायु के अनुकूल ढ़ाले हुये हैं। परंतु वर्तमान समय में ऐसी नस्लों की आवश्यकता से जिनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सके। अतः इन नस्लों को बेहतर बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए इस प्रकार से नस्ल सुधार कार्यक्रम अमल में लाया जाये जिससे इन नस्लों के परंपरागत गुणों को बनाये रखने के साथ ही इनकी उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हो सके। ऐसा करके जलवायु के अनुकूल, रोगों से लड़ने की क्षमता एवं अधिक उत्पादन देने वाली नस्लें विकसित की जा सकेंगी।

11. जीनोटाइप संशोघन

जलवायु परिवर्तन के खतरे से निपटने के लिये वैज्ञानिकों को आगे आने की जरूरत है जिससे जलवायु के अनुकूल नस्लें विकसित की जा सकें। यदि यह संभव हो सका कि 'जीन' के माध्यम से जलवायु सहनशीलता के अनुकूल नस्लें तैयार हो सकेंगी। जिनमें अत्यधिक गर्मी, सर्दी आदि को सहने एवं अधिक उत्पादन, वृद्धि, रोगों से लड़ने की क्षमता होगी। आने वाले समय को ध्यान में रखते हुये पशुओं की आनुवांशिक संरचना में बदलाव करके आज ऐसी जलवायु अनुकूल नस्लें विकसित करने की नितांत आवश्यकता है।

12. पशु स्वास्थ्य

उपचार से रोकथाम बेहतर उपाय है। पशुओं का अच्छा स्वास्थ्य बना रहे और उनमें विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में रोगों के प्रति सहनशीलता विकसित हो सके इसके लिये उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिये सबसे बेहतर उपाय पशुओं में विभिन्न प्रकार के संक्रामक रोगों से बचाव के लिये समय-समय पर टीकाकारण कराया जाना चाहिए। पशुओं में रोगों का संक्रमण होने तथा उसके फैलने से रोखने में टीकाकरण सबसे सस्ता और प्रभावी उपाय है। टीकाकारण से पशुओं का स्वास्थ्य बेहतर होने के साथ ही उनका कल्याण होता है। इसलिये पशुओं को समय रहते समय-समय पर टीकाकरण कराये जाते रहना चाहिए। पशु रोगों पर

प्रभावी ढ़ग से काबू पाने के लिये ''सतर्कता और निगरानी तंत्र'' को बहुत अधिक मजबूत बनाये जाने की आवश्यकता है। इस तंत्र के माध्यम से समय पूर्व पशु रोगों की पहचान करके योजनाबद्ध तरीके से उन पर काबू पाया जा सकेगा।

13. जलवायु वरिवर्तन से लड़ने में सक्षम भारतीय पशुधन की नस्लें

प्रजनन पशुपालन की महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रजनन जहां पशुओं की नस्लों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है वहीं इसके माध्यम से क्षेत्र विशेष के लिये विकसित पशुओं की नस्लों के शुद्ध गुणों को पीढ़ी दर पीढ़ी सहेजकर रखने का काम भी करता है। परंतु जिस तरीके से देश में अधिक दुग्ध उत्पादन लेने के लिये विदेशी क्रॉसब्रीड गाय की नस्लों को बढ़ावा दिया गया। उससे भारतीय नस्लों के संरक्षण एंव संवर्धन में रूखावट पैदा हुई है। फलस्वरूप आज क्रॉसब्रीड गायें कई क्षेत्रों में अनेकों समस्याओं जैसे- बांक्षपन, बार-बार गर्मी में आना परंतु गर्भ नहीं ठहरना, थनैला आदि गभीर समस्याओं के चलते लाभ की बजाय घाटे का कारण ही बन रहीं हैं। इन गायों का दूध भी आज एक अहम चर्चा का विषय बनकर सामने आ रहा है। वैज्ञानिकों से लेकर आम जागरूक लोगों में ए 1 एवं ए 2 दूध के प्रति जिज्ञासाओं से लेकर गंभीर चिंताऐं हैं, जिनका निवारण मिलना अभी बाकी है।

क्या? विदेशी एवं संकर (क्रॉसब्रीड) गायें भारतीय जलवायु के अनुकूल नहीं हैं। क्या? देश में क्रॉसब्रीड गायों का भविष्य उज्वल नहीं हैं। भारत सरकार की पहल को देखा जाये तो कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। भारत सरकार आज गोकुल मिशन के माध्यम से देश की जलवायु के अनुकूल विकसित एवं पल्लवित नस्लों को ही बढ़ावा देने के किये कार्य कर रही है। जिसमें देश की अधिक दुग्ध उत्पादन करने वाली गायों जैसे- साहीवाल, गिर, रैड सिंधी, राठी, थारपारकर आदि प्रमुख नस्लें हैं। यह नस्लें पूरी तरह से भारतीय जलवायु के अनुकूल हैं। इसी प्रकार से क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली नस्लों को बढ़ावा देकर उनके दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी के प्रयास करके जलवायु परिवर्तन से प्रजनन की समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है।

14. बकरी है भविष्य का पशु

बकरी को भविष्य का पशु कहा जाता है। भारत में बकरी की अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नस्लें माइनस तापमान से लेकर 50 डिग्री तापमान में बखूबी पाली जा रहीं हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि बकरी पालन देश के प्रत्येक क्षेत्र और जलवायु में आसानी से किया जा सकता है। इसके लिये जलवायु के अनुकूल भारतीय बकरी की नस्लें हैं। परंतु ऐसा गाय, भैस के मामले में नहीं है। कम चारा-दाना, कम स्थान, कम समय और कम देखभाल में बकरी पालन आसानी से किया जा सकता है। इसलिये जलवायु परिवर्तन और बढ़ते तापमान के मध्येनजर बकरी को भविष्य का पशु कहना गलत नहीं होगा।

15. बाढ़ एवं सूखा

जलवायु परिवर्तन से सिर्फ तापमान में ही बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है, अपितु प्रकृति में कई अन्य बड़े बदलाव भी देखने को मिल रहे हैं। देश के अलग-अलग हिस्सों में कहीं बाढ़ तो कहीं सूखा देखा जा सकता है। यह दोनों ही स्थिति पशुपालन के लिये अत्यधिक नुकसान दायक हैं। बाढ़ की स्थिति में पशुधन का जीवन ही संकट में पड़ जाता है तो वहीं सूखा के कारण चारे का अभाव पशुओं के जीवन यापन पर प्रश्नचिंह खड़ा कर देता है। हर साल देश के अनेक भागों में इसके चलते लाखों की संख्या में पशुधन की हानि होने के साथ ही आर्थिक रूप से एवं उत्पादन पर बहुत ही प्रतिकूल असर पड़ता है। यह परिस्थितियां जलवायु में हो रहे परिवर्तन के कारण साल दर साल उग्र रूप में प्रकट होकर सामने आ रहीं हैं।

भारत में बकरी पालन से ग्रामीण आबादी की आय दुगुनीः परिदृश्य एवं सम्भावना

अनुज कुमार सिंह सिकरवार एवं मनोज कुमार सिंह

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

भारत में लगभग 72.2% जनसंख्या 6.38 लाख गाँवों में निवास करती है, इनमें अधिकांशतः अपने जीवकोपार्जन हेतु कृषि तथा पशुपालन पर निर्भर हैं । फसलों की उत्पादकता सीमा, अनिश्चित और अनियमित वर्षा, सिंचाई के लिए पानी की कमी और मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट के कारण बढ़ नहीं पा रही है। 138 मिलियन भारतीय ग्रामीण परिवारों में से 33.01 मिलियन (24 प्रतिशत) बकरी पालन कर रहे हैं। देश की कुल बकरियों में से 76 प्रतिशत बकरियाँ 2.0 हेक्टेयर भूमि वाले (सीमान्त तथा छोटे) ग्रामीण परिवारों द्वारा पाली जा रही है। बकरियाँ ग्रामीण लोगों को कई प्रकार से आय, रोजगार, भोजन उपलब्ध कराती हैं, ये फसल के उत्पादन में सहयोग देने के साथ-साथ उसके खराब होने पर जोखिम को कम करती हैं। भूमिहीन स्त्री-पुरुषों में अपने सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए बकरी पालन बढ़ रहा है। बकरी कम वर्षा वाले क्षेत्रों में आजीविका के लिए आदर्श पशु है, जहाँ फसल उत्पादन अनिश्चित होने और भोजन तथा चारे की कमी के चलते बड़े पशु पालना तुलनात्मक रूप से महँगा है। भारत के गाँवों में मिलने वाले मिश्रित चारागाहों में बकरी उन पौधों को खाती है जिन्हें अन्य नस्लों के पशु अधिक पसन्द नहीं करते। इस कारण ये मिश्रित नस्लों के पशुओं के लिए उपयुक्त हैं। बकरियाँ अन्य पशुओं ,फसलों तथा बहुवर्षीय वृक्षों के साथ आसानी से तालमेल बैठा लेती हैं। करीब 56 प्रतिशत वध होने तथा 15 प्रतिशत मृत्यु दर के बावजूद बकरियों की आबादी 3 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ना क्षमता के सुदृढ़ होने का संकेत है। इसलिए पालतू पशुओं में बकरी सबसे उपयुक्त पशु बन गयी है। दूसरे पशुओं को पालने की तुलना बकरी पालन आर्थिक एवं प्रबन्धकीय दृष्टि से कई तरह से लाभप्रद है, क्योंकि प्रारम्भिक कम निवेश, कम लागत की जरूरतें, उच्च प्रजनन क्षमता, विस्तृत प्रजनन काल, भोजन के रूप में बड़ी संख्या में पौधों को चरना, कम अवस्था में प्रजनन परिपक्वता, निम्न स्तर के मोटे चारे के रेशों को पचाने की क्षमता,आसानी से देखभाल, सालभर विक्रय की सुविधा और अनेक रोगों के प्रति प्रतिरोधी है। वर्तमान में भारत में वाणिज्यिक बकरी पालन कृषि विकास में एक महत्त्वपूर्ण कारक बन कर उभरा है। बकरी पालन ग्रामीण विकास में बड़े पैमाने पर

अवसर प्रदान करता है, क्योंकि बकरी में अपने उत्पादों के निर्यात, पूँजी संचय, परिवाारिक आय, रोजगार तथा भोजन उपलब्ध कराने की क्षमता है। यह महिलाओं के लिए उपयुक्त है तथा इसे ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। यह ग्रामीणों की सन् 2022 तक आय दुगुनी करने का महत्त्वपूर्ण साधन बन सकती है जैसा कि भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चाहते हैं।

भारत में बकरियों (34 नस्लों) की बड़े स्तर की जैव विविधता सम्पदा पूरे देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितिक तंत्रों में फैली हुई है जो हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने उस क्षेत्र की जलवायु और उस क्षेत्र विशेष के लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किया है। (सारिणी-1) ये सभी 34 भारतीय बकरियों की नस्लें उपयुक्त भोजन के कारण अपने वातावरण में बेहतर कार्य करती हैं। इनमें वहाँ के रोगों के प्रति अपार प्रतिरोधी तथा जलवायु के उतार-चढ़ाव को सहने की क्षमता होती हैं। उत्तरी ऊपरी हिमालय क्षेत्र (लद्दाख तथा कश्मीर) के 3500 एमएसएल की ऊँचाई पर पायी जाने वाली चेगू तथा चेंगथंगी अच्छे माँस के अलावा महीन गुणवत्ता के बाल/रेशे उत्पन्न करने के लिए जानी जाती है, इस रेशे को 'कश्मीरी' या 'पश्मीना' कहा जाता है। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में बीटल, जमुनापारी, बरबरी, सिरोही, मारवाड़ी, जखराना, सूरती, गोहिलवाड़ी, कच्छी, झालावाड़ी, मेहसाणा, पाई जाने वाली बकरी की महत्त्वपूर्ण नस्लें हैं। ये बकरियाँ मध्यम से बड़े आकार की होती है तथा होती है। इनका 12 माह में शरीर का वजन (20-40 किलोग्राम), दूध उत्पादन 1.3 से 1.7 लीटर और बच्चा उत्पन्न करने की दर 1.3 से 1.6 है। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की बकरियों की क्षमता बकरी डेयरी विकसित करने और निर्धन लोगों को सतत् खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण करने की है। कई नस्लें (बीटल, जमुनापारी, सिरोही, जखराना, बरबरी इत्यादी) भारत के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की गैर वर्णित बकरियों के उन्नयन हेतु प्रत्याशी प्रजाति हैं।

तालिका-1 भारत के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में फैली बकरियों की नस्लें

क्षेत्र	राज्य	बकरियों की नस्लें
उत्तरी-शीतोष्ण	जम्मू -कश्मीर, हिमाचल उत्तराखण्ड	गद्दी, चेंगथांगी, चेगू, पतन्जा तथा भाकरवाली
उत्तर-पश्चिम	दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश	बीटल, जमुनापारी, बरबरी, सिरोही, मारवाड़ी, जखराना, सूरती, गोहिलवाड़ी, कच्छी, झालावाड़ी, मेहसाणा, कहमी, रुहेलखण्डी
दक्षिणी	महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु	संगमनेरी, उस्मानावाड़ी, कोंकणी कन्याल, बेरारी, कन्नाइउ-ऐडू, कोडी-ऐडू, मालावारी, काली एटटापेड़ी, सलेम ब्लैक, बिदरी एवं नन्दीदुर्गा
पूर्वी	बिहार,, झारखण्ड, उडीसा, पश्चिम बंगाल	गंजाम, ब्लैक बंगाल
पूर्वोत्तर	मेघालय, असम, मिजोरम, मणिपुर, नगालैण्ड, सिक्किम, त्रिपुरा	समे-ने, आसोमी
पूर्वी तटीय	अण्डमान निकोबार	टेरेसा

बड़े आकार की नस्लों की बकरियाँ छह माह की उम्र में 19-23 कि॰ग्रा॰ तथा एक साल में 40-50 कि॰ग्रा॰ वजन की हो जाने की क्षमता रखती हैं। सघन /स्टॉल भोजन देने पर अपनी अनुकूलता और परफार्मेस के कारण बरबरी सबसे अधिक माँग वाली नस्ल बन गयी है। परम्परागत बकरी पालकों में सिरोही 'राष्ट्रीय नस्ल' बन चुकी है। दक्षिणी क्षेत्र में उस्मनाावाड़ी, संगमनेरी, मालावाड़ी तथा कन्नाई-ऐडु बकरी प्रमुख नस्लें हैं। इन बकरियाँ में बेहतर बहुप्रजनन (40-65 प्रतिशत) तथा अनुकूल भोजन दिये जाने पर 12 माह की अवस्था में इनके शरीर का वजन 20-24 कि॰ग्रा॰ और गहन भोजन दिये जाने पर 25-34 कि॰ग्रा॰ तक हो जाता है। भारत के पूर्वी क्षेत्र की ब्लैक बंगाल प्रमुख नस्ल है। यह छोटे आकार की माँस के लिए पाली जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की बकरियाँ बहुप्रजनता/

बहुप्रसव (80 प्रतिशत से अधिक) वाली होती हैं, खाल, गुणवत्तापूर्ण हड्डियों (अस्थियों) और कम दूध देने के लिए जानी जाती है। बारह माह में इनके शरीर का वजन 10 से लेकर 22 किलो तक होता है। अर्द्ध शुष्क तथा गर्म-आर्द्र पूर्वी क्षेत्रों में अर्द्ध सघन या अनुकूलतम भोजन के अन्तर्गत रखी/पाली गई कुछ महत्त्वपूर्ण नस्लों की तुलना तालिका -2 में प्रदर्शित की गई है:-

तालिका-2 भारत की बकरियों की प्रमुख नस्लों के उत्पादन तथा उनकी आर्थिक विशेषताएँ

उत्पादनात्मक विशेषताएँ	बरबरी	जमुनापारी	सिरोही	ब्लैक बंगाल
अनुकूलतम जलवायु	अर्द्ध-शुष्क	अर्द्ध-शुष्क	अर्द्ध-शुष्क	गर्म-आर्द्र
वयस्क मादा की कीमत (₹)	5000	8000	7000	3500
प्रथम प्रसव की उम्र (माह)	12-16	18-22	18-20	10-12
प्रसव अन्तराल	9	10	10	8
बहुप्रसव (संख्या)	1.6	1.3	1.3	2.2
तीन साल में उत्पन्न मेमने	6.4	4.7	4.7	10
12 माह में जीवित मेमने(%)	92.5	92.5	92.5	80
तीन साल में उपलब्ध जीवित मेमने	6.4	4	4	8
12माह में शरीर का वजन (कि॰ग्रा॰)	22	27	27	16
वजन बकरी/वर्ष	42	38	38	42
प्राप्त दूध/बकरी/वर्ष	80	135	100	30
अतिरिक्त दूध /वर्ष/(लीटर)	25	78	60	0
आय अतिरिक्त दूध	625	1950	1500	-
वयस्क मादा बकरी तथा उसके मेमने के पालने की लागत	4250	4550	4150	3840
मेमनों का विक्रय मूल्य (रुपए)	8400	7300	7300	8440
प्रति बकरी शुद्धलाभ /प्रति वर्ष	4775	4700	4650	4600

नोटः उत्पादकता तथा आर्थिक विशेषताएँ उन बकरियों से प्राप्त किये गए हैं जिन्हें अर्द्ध सघन भोजन व्यवस्था के अन्तर्गत रखा गया। जहाँ उन्हें 50 प्रतिशत भोजन-चारा भोजनपूरक द्वारा तथा शेष 50 प्रतिशत चराई से उपलब्ध कराया जाता है। वर्तमान बकरी उत्पादन तथा सम्भाव्य क्षमता में सम्भाव्य क्षमता तथा अन्तराल उपस्थित हैं जिसे कि भारत के अधिकांश पालकों द्वारा अपनाया जा रहा है। इसे तालिका-3 में संक्षेप में प्रदर्शित किया गया है-

तालिका 3 बकरी पालन (फार्मिंग) पोषाहार में अभाव

मद या मदें	अन्तराल (प्रतिशत)	सामान्य मूल्य	आधार मूल्य
बकरी स्टाक दर (बकरी हेक्टयर)	400 प्रतिशत	10	50
बकरों की उपलब्धता	150	1.40	1.300
शुद्ध-ब्रीड पेडग्री बकरों की उपलब्धता	450	1.40	1.300
मेमने भी 3 माह तक मृत्युदर	250	10	35
वयस्क मृत्युदर	166	7.5	20

चारा (इत्यादि) उपलब्धता (ग्राम/बकरी/दिन)	233	1000	300
केन्द्रित उपलब्ध (ग्राम/बकरी/दिन)	400-500	200-300	25-50
12 माह में शरीर का वजन (किलो ग्राम)	25-55	-	-
प्रजनन क्षमता	40-65 प्रतिशत		
लाभ/वयस्क मादा बकरी प्रति वर्ष(शून्य लागत)तथा रणनीति लागत	100	5000	2500

बकरियों की निम्न उत्पादकता के लिए उत्तरदायी प्रमुख बाधाएँ तथा चुनौतियाँ

बकरी पालन में बाधाएँ

1. अप्रभावी तथा अनुपयुक्त उत्पादन व्यवस्था (विस्तृत/शून्य लागत)
2. अधिकतर अवर्णित या कमजोर आनुवंशिक पशुओं का पाला जाना तथा संगठित प्रजनन कार्यक्रमों का अभाव
3. भोजन-चारे की कमी जो बकरियों के उत्पादन तथा उनकी प्रतिरोधी क्षमता का क्षरण तथा उनकी रोगों से रक्षण क्षमता घटाती है।
4. विकसित/रणनीतिक प्रबन्धन प्रक्रिया तथा प्रौद्योगिकी (तकनीकें) के बीच अत्यधिक ज्ञान का अन्तराल
5. बकरियों को रहने की अपर्याप्त जगह तथा अनुपयुक्त आवास।
6. पशु चिकित्सा सेवाओं, बकरों का अभाव और संस्थागत वित्त की उपलब्धता की कमी।
7. अपर्याप्त रोग प्रतिरोधक उपायों के कारण उच्च मृत्युदर (40-50 प्रतिशत)
8. विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों और विविध फार्मिंग व्यवस्था के लिए उपयुक्त/अनुकूल बकरी आधारित विशेष एवं समन्वित आजीविका और व्यवसाय माडल का के प्रचार-प्रसार में कमी।
9. असंगठित विपणन, बकरी का गलत विक्रय ,प्रयासों की कमी, बकरी उत्पादों माँस, दूध, खाल, रेशे (फाइबर), खाद इत्यादि के मूल्यवर्द्धन हेतु आन्तरिक सरंचना का अभाव।

प्रचलित उत्पादन व्यवस्था में बकरी पालकों की चुनौतियाँ

1. बकरी की उत्पादकता को बढ़ाना तथा संवृद्धि करना।
2. बकरों को पालने में अधिक लागत आने के भय तथा देखभाल में आने वाली कठिनाइयों के कारणे पालने में अनिच्छुक होना।
3. लगभग 70 प्रतिशत अवर्णित बकरियों की जनसंख्या के सामर्थ्य का मूल्यांकन
4. हिमीकृत वीर्य प्रौद्योगिकी में कृत्रिम गर्भाधान में दक्षता
5. अनियंत्रित वध पर नियंत्रण तथा उच्च सम्भाव्य बकरों का विक्रय
6. विभिन्न नस्लों की बकरियों के अपने क्षेत्रों में बकरों के मातृ फार्म स्थापना।
7. बकरी फार्मो पर इनके भोजन-चारे पर 60 प्रतिशत से अधिक आने वाले व्यय को प्रौद्योगिक नवाचरों से घटाना।
8. चराई के संसाधनों (चारागाहों) की कमी, अनियंत्रित चराई तथा उच्च संग्रहण (स्टाकिंग) दर पर नियंत्रण
9. परम्परागत तथा वाणिज्यिक फार्मिंग के अन्तर्गत विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों ,फार्मिंग व्यवस्थाओंके लिए अनुकूल कम लागत के बकरियों के आश्रय स्थल तथा आवास का विकास
10. बकरियों के महत्त्वपूर्ण रोगों तथा प्रभावी स्वास्थ्य सेवाओं निगरानी तथा अंकन।
11. बकरी पालकों के लिए सामान्य प्रक्रिया वाले संस्थागत वित्त संस्थान।
12. उत्पादन, उत्पादों तथा उप-उत्पादों को बाजार से जोड़ना।

इसलिए वर्तमान बकरी उत्पादन व्यवस्था को सूझबूझ से भोजन-चारे की लागत में कमी, बकरी उत्पादों का मूल्य वर्द्धन, बकरी की क्षमता को सतर्क विपणन के जरिए उत्पादकता तथा लाभप्रदता को बढ़ाने की प्रामाणिक सुधार आवश्यकता है। बकरी पालकों की लाभप्रदता मुख्य रूप से उस दर पर निर्भर करती है जिस दर पर और परिमाण में मुख्यतः व्यापक प्रबन्धन व्यवस्था अपनाये जाने के अर्द्धगहन और गहन प्रबन्धन में परिवर्तित होती है। बकरी की उत्पादकता बढ़ाने वाली तकनीकें हैं, किन्तु जागरुक तथा उन्हें अपनाने की दर लगातार कम बनी हुई है। बकरी पालकों की आय बढ़ाने के लिए कुछ पहल और रणनीति कृषकों, कुछ सरकारी स्तर पर तथा कुछ सरकार एवं कृषकों दोनों को अपनाने की आवश्यकता है जो निम्न में उल्लिखित है:-

उपाय

1. क्षेत्रीय प्रदर्शनों के माध्यमों से अर्द्धगहन या रणनीतिक पोषित प्रबन्धन को बढ़ावा देना

बकरी पालक (95%) अपनी बकरियों के पालन-पोषण पर अत्यधिक कम (शून्य) व्यय करते हुए पाँच वयस्क बकरियों से 12,500 रुपए औसत वार्षिक लाभ कमा लेते हैं। व्यापक से अर्द्ध-गहन और गहन प्रबन्धन में बदलने से पाँच बकरियाँ पालने वालों की आय दुगुनी और इससे अधिक उदाहरणार्थ लगभग 25,000 रुपए किया जा सकता है। टीकाकरण, कृमिनाशक, खनिज मिश्रण के पोषण तथा अधिक सामर्थ्य/क्षमता के बकरे से सहवास कराने पर आने वाली लागत को बकरी पालकों से वसूला जा सकता है। अनेक कृषक (50%) इस लागत को देने को तैयार हैं। एक बार इससे होने वाले लाभ की जानकारी बाकी किसानों तक पहुँच जाए तो वे भी इसके भुगतान को तत्पर हो जाएँगे। व्यापक/विस्तृत प्रबन्धन के अन्तर्गत एक वयस्क बकरी से 3280 रुपया लाभ प्राप्त होता है, जबकि रणनीति पोषण (भोजनादि) कराने से इसे 6493 रुपया तक हो गया। रणनीतिक पोषण कराने से बकरी के शरीर का वजन (40% अधिक) बढ़ने, दुग्ध उत्पादन में वृद्धि (80%) बढ़ोत्तरी, उत्तरजीवीतता में वृद्धि (50%), मेमने पैदा होने (एकाधिक) की दर में वृद्धि (50%), शुद्ध नस्ल (20%)/ प्रीमियम मूल्य में बढ़ोत्तरी इत्यादि के कारण लाभ में वृद्धि होती है।

तालिका - 4

गहन तथा रणनीतिक प्रबन्धन के अन्तर्गत बरबरी बकरियों की उत्पादकता और लाभ की अभिवृद्धि अध्ययन

लक्षण	गहन प्रबन्ध में बकरी की कार्यकुशलता	रणनीतिक हस्तक्षेप से बकरी की कार्यकुशलता
मेमनों की मृत्युदर	25 प्रतिशत	8 प्रतिशत
वयस्क बकरी की मृत्युदर	15 प्रतिशत	5 प्रतिशत
दूध देने का समय	65 दिन	110 दिन
दुग्ध उत्पादन	40 लीटर	65 लीटर
एक वर्ष में शरीर का वजन	16 किलो ग्राम	22 किलो ग्राम
मेमनों को जन्म देने का अन्तराल (के.आई.)	12 माह	8 माह
पहली बार मेमने जनने की उम्र (एएफसी)	18 माह	14 माह
बहुजनन (मल्टीपिल बर्थ)	40 प्रतिशत	65 प्रतिशत
सबसे पहले मेमने जनने (एएफसी) तथा मेमने जनने का अन्तराल कम (घटने)और पाँच बकरियों के अधिक (मल्टीपिल बर्थ) के कारण मेमनों की संख्या में वृद्धि/वर्ष	6 मेमने	9 मेमने

व्यापक (विस्तृत) प्रबन्धन तथा 7 प्रतिशत के साथ रणनीतिक प्रबन्धन में औसत 5 बकरियों के समूह(रेवड़)तथा मेमनों 25 प्रतिशत मृत्युदर मानते हुए अतिरिक्त मेमनों की संख्या/ वर्ष	07	11
(शरीर का वजन, दूध, दूध का उत्पादन, मेमने की दर, पहला मेमनों का जनने की उम्र, मेमने जनने का अन्तराल कम होने से बचत) उत्पादकता और उत्तरजीविता में बढ़ोत्तरी » विक्रय के लिए मेमनों की संख्या 1 से 7 की वृद्धि » बकरी के वजन में 16 किलो ग्राम से 24 किलो ग्राम में बढ़ोत्तरी » अतिरिक्त दूध (बढ़ा हुआ दूध) 25 किलो ग्राम प्रति 25 रुपए » वयस्क बकरी की उत्तरजीवितता » पहला मेमना जनने की उम्र (एएफसी), मेमने जनने के अन्तराल (के.आई.) में कमी के कारण पोषण तथा श्रम लागत में कमी	₹ 3000	₹ 5000
अतिरिक्त दूध /वयस्क बकरी /वर्ष से आय	शून्य	625
बकरी से प्रति दिन 1रुपए की खाद	4300	5840
विस्तृत प्रबन्धन व्यवस्था में बकरा बेचने से होने वाली आय	35000	
रणनीतिक हस्तक्षेप व्यवस्था (एसआईएम) के तहत बढ़े वजन (6किलोग्राम)के बकरे के बेचने से हुई आय		66000
वयस्क बकरी की उत्तरजीवितता (0.6)		3000
पहला मेमना जनने की उम्र, मेमना जनने का अन्तराल में कमी के कारण पोषण तथा श्रम की बचत		5000
5 वयस्क बकरियों के समूह की बुक वैल्यू (पुस्तक मूल्य)	25000	3000
व्यापक (विस्तृत) प्रबन्धन व्यवस्था में (श्रम, स्वास्थ्य इत्यादि) में 5 वयस्क बकरियों के साथ 7 मेमनों)1550 रुपए बकरी/वर्ष लागत/बकरी/वर्ष		
रणनीतिक प्रबन्धन में बकरी (पोषण, स्वास्थ्य,आवास)पर प्रति बकरी अतिरिक्त लागत	18600	48000
5 वयस्क बकरियों /वर्ष के समूह शुद्ध लाभ	16400 रुपए	32465

2. उच्च सम्भाव्यता (क्षमता) की शुद्ध प्रजाति के बकरों की निरन्तर आपूर्ति

बकरी आधारित ग्रामीण विकास के साथ प्रजनन कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता देते वर्तमान कृषि-जलवायु परिस्थितियों गैर परम्परागत खाद्य तथा चारे के लिए ऐसी प्रजातियों (नस्लों) का चयन किया जाना चाहिए, जो उसमें अच्छी तरह से रह सकें।बकरी पालकों को सुधारी प्रजाति, स्थानीय गैर निक्षेप बकरियों को पालने के लिए प्रोत्सहित किया जाए,जो विशेष कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हों। विशिष्ट शुद्ध प्रजाति के बकरों के माध्यम से रोग निरोधी बकरियों के उन्नयन को गम्भीरता से लागू किया जाए। बकरियों की अनुवंशिक सम्भाव्य (क्षमता) में सुधार के लिए बकरी पालकों को प्रजनन कराने के लिए सभी महत्वपूर्ण तथा उच्च क्षमता वाली वाली प्रजाति के बकरों की निरन्तर आपूर्ति हेतु बेहतर नस्ल के बकरी के बच्चों के पालने के उनके यहाँ आवासों की स्थापना की जाए। अच्छी नस्ल के बकरों से 40 से 75 प्रतिशत उत्पादन बढ़ा और उस उच्च नस्ल के कारण (प्रीमियम रूप में) ₹25 से 40 अधिक मूल्य प्राप्त हुआ।

3. रोग प्रतिरोधक उपायों का प्रचार (बकरी स्थास्थ्य कलैण्डर)

बकरी पालक (75 प्रतिशत से अधिक) न तो जागरूक है और न ही पीपीआर, बकरी की चेचक (पॉक्स), इण्टरोंटोक्सेमिया जैसी बीमारियों की रोकथाम के लिए टीकाकरण को भी नहीं अपनाते, जो कि बहुत अधिक आर्थिक क्षति (30 से 60% मृत्युदर) पहुँचाते

हैं। अध्ययन में यह पाया गया कि बकरियों के टीकाकरण तथा कृमियों के नष्ट करने से उनकी मृत्यु दर को (10%) कम किया जा सकता है। इस कारण पाँच बकरियों की एक इकाई पर 3500 रुपए से 4500 रुपए वार्षिक तक आय बढ़ जाती है,जबकि इस इकाई पर केवल 300 रुपए वार्षिक खर्च आता है।

4. बंजर भूमि तथा सामुदायिक चारागाहों का सुधार और उनका न्यायपूर्ण उपयोग

परम्परागत भोजन तथा चारे के फसलों की उत्पादकता बढ़ाकर गाँवों में भोजन की आपूर्ति को बढ़ाया जा सकता है।इस दोहरे उद्देश्य को पूरा करने हेतु अन्तर -फसल,मनुष्यों के लिए खाद्यान्न तथा पशुओं के लिए चारा वाली अल्पवाधि और तेजी से बढ़ने वाली दलहनी फसलें उगाने को प्रोत्साहित करना चाहिए। किसानों को मानसून में उपलब्ध चारे के प्रसंस्करण तथा भण्डारण और उसकी पौष्टिकता में बढ़ोत्तरी के बारे में प्रशिक्षित करना चाहिए, जिससे चारे की कमी के समय उसकी अनुपलब्धता न हो। अक्रमित चारागाहों तथा तथा सीपीआर को उत्पादक वनचारागाह में परिवर्तित करना चाहिए। बाँधों (पुश्तों) की भूमि में सूखा सहिष्णु (कम नमी) में उगने वाली घासों, झाड़ियों तथा पत्तियों के चारे के रूप में उपयोग आने वाले वृक्ष लगाने, प्राकृतिक मैदानों में बहुवर्षीय घासें (1.0टन से 4.0टन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष तक वृद्धि), फसलों के बीच दलहनी फसलों को बढ़ावा देना चाहिए और प्राकृतिक स्रोतो का न्यायपूर्ण तरीके से उपयोग किया जाना चाहिए। किसानों में कृषि-वानिकी का लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।

5. प्रसार (विस्तार) सेवाओं को सुदृढ़ किया जाना

बकरी पालने वालों को बेहतर आवास, क्रय के गुणवत्तापूर्ण पशु, मूल्यवर्धित उत्पाद इत्यादि में तकनीकी उपयोग के लिए ऋण(पूँजी)की उपलब्धता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह बकरी पालकों बकरी को शून्य लागत से अर्द्ध गहन प्रबन्धन तक पहुँचाने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

6. बेहतर प्रबन्धन पद्धतियों के पैकेज को प्रोत्साहन तथा लोक प्रचार

बकरी पालकों को उन्नत प्रबन्धन के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए जैसे कि प्रजनन कैलेण्डर (बकरियों से अधिक उत्पादन तथा लाभ पाने के लिए अधिकतम जीवित बच्चे/मेमने) बनाने होंगे इसके लिए प्रजनन का मौसम(ऋतु) तथा महीना, प्रथम प्रजनन के समय अनुकूलतम उम्र और वजन और बकरी के स्वास्थ्य कैलेण्डर ,पोषण की नीति के तहत (समय पर कोलोस्ट्रोम देने), अग्रिम गर्भावस्था में सहायक सघन खुराक, दूध देने के शुरू के 60-90 दिनों, मेमनों के विकास 3-9 महीनों तक,लिंग,उम्र, उत्पादकता के अनुसार पोषण तथा चारा देन काप्रभावी उपयोग करने के साथ ही बेहतर विपणन (स्मार्ट मार्केटिंग) तथा मूल्यवर्द्धित उत्पादों की बेहतर विपणन (स्मार्ट मार्केटिंग) किया जाना जरूरी है। बकरियों के रहने की जगह पर विशेष रूप से मेमनों की वृद्धि के समय बकरियों की अधिक संख्या रखने से बचना। बकरियों के आवास के फर्श के कूड़े-कचरे की नियमित रूप में सफाई करते रहने के साथ सूरज की पर्याप्त रोशनी से सूखा (शुष्क) रखा जाना चाहिए। साल में अप्रैल-मई माह में एक बार में पुरानी तथा कठोर मिट्टी की पर्त हटा कर उसकी जगह नयी मिट्टी में 10 किलोग्राम प्रति तीन घन मीटर मिट्टी मिलाकर बिछा देनी चाहिए। बकरियों के रहने की जगह (शैड) में खुली तथा ढका स्थान होना चाहिए। सामान्यतः खुला स्थान ढकी जगह से दोगुना होना चाहिए। ढके स्थान का उपयोग मुख्य रूप से पशुओं को प्रतिकूल (आँधी-बरसात,खराब) मौसम से बचाने के लिए किया जाता है। 0-3,3-6,6-12 माह के मेमनों, वयस्क बकरियों, प्रजनन योग्य बकरों के लिए खुले फर्श (ढका स्थान दो वर्ग मीटर) की तथा गर्भवती और दूध देने वाली बकरियों को क्रमश: 0.20-0.25, 0.30-50, 0.75-100 तथा 1.5-2.0 वर्गमी. की जगह चाहिए। सन् 2012-2013 में सूखा बहुल क्षेत्र बुन्देलखण्ड में किये गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि बकरी पालन की उचित प्रबन्धन पद्धति अपनाने से एक किसान 5 बकरियों की

इकाई से साल में 18,348 रुपए कमा सकता है। कृषि क्षेत्र में बकरी आधारित हस्तक्षेप से 5बकरियों की इकाई से साल में 182 दिन का रोजगार मिल सकता है।

तालिका-5 बकरी पालकों की बेहतर प्रबन्धन व्यवस्थाओं से आय पर प्रभाव

मानक	पहले	बाद में
व्यस्क बकरी के बाड़े का आकार	5	5
एक से अधिक जन्म (%)	20	45
शेष बकरी (%)	74.5	90
एक वर्ष के बच्चे उपलब्ध हैं	4.2	6.5
शारीरिक वजन 12 माह में (किलो ग्राम)	16.6	24.0
बच्चों की बिक्री से आय 160 रू./ किलोग्राम	10458	25056
कुल दुग्ध उत्पादन/बकरी/वर्ष	49	83.5
अधिशेष दुग्ध उत्पादन (1) (बिक्री/ खपत)	3	37.5
20 रूपये प्रति ली. दूध से आय	बच्चों के लिए	3750
कुल सकल आय (रूपयें में)	10458	28806
प्रतिवर्ष संचालन लागत	2092/ बकरी	5761/ बकरी
कुल सकल आय (रूपयें में) प्रति वर्ष	6758	23706
अतिरिक्त आय (रूपयें में)	.	18348
अतिरिक्त आय/बकरी (रूपयें में)	.	3670
कुल आय (रूपयें में)	1352	4741

7. तकनीकी हस्तान्तरण के लिए बकरी पालकों के समूहों, एसएचजी सहकारी समितियों का गठन एवं प्रभावी बनाना

ऐसे समूहों को समय-समय पर साख (ऋण) प्राप्ति की जानकारी तथा प्रोत्साहन को सशक्त करना चाहिए ।

8. बकरियों के कम लागत वाले आवासों के लिए प्रादर्श (माडल) और तकनीकी का विकास

अधिकांश बकरी पालकों के निर्धन होने तथा बकरी रखने के लिए जगह की कमी और उनके आवास बनाने की सामग्री अधिक महँगी होने को देखते हुए बहुस्तरीय एवं सस्ते आवास बनाने की शीघ्र आवश्यकता है।

9. बकरी के मूल्यवर्द्धित उत्पादों से आय तथा आहार/पोषण में वृद्धि

जीविका/रोजगार उपलब्ध कराने तथा आहार सुनिश्चित करने पोषणिक सुरक्षा देने हेतु पशुधन उत्पादन को स्थायित्व देना,जो पशुओं के उत्पादों के प्रभावी निर्भर होता है। मूल्यवर्द्धित उत्पादों की बहुत अधिक माँग है।बकरी के उत्पादों का प्रसंस्करण से उसके उत्पादों का मूल्यवर्द्धन होगा। इससे बकरी के दूध तथा माँस की माँग में स्थायित्व आएगा। इन उत्पादों के कुशल विपणन से किसान उचित आय प्राप्त कर पायेंगे। ऐसे मूल्यवर्द्धित पदार्थों के स्थायित्व, सुधरे तकनीक कार्यों, बेहतर संवेदी गुणवत्ता या यहाँ तक कि सुविधाजनक के तरीके से प्राप्त किये जा सकते हैं।

10. विभिन्न नस्लों के साथ बकरी आधारित व्यवसाय मॉडल का लोक प्रसार

हाल में अनेक शिक्षित युवाओं ने अर्द्ध गहन या गहन पबन्धन वाले बकरी फार्म स्थपित किये हैं। प्रारम्भ में कुछ समस्याएँ आने के बाद भी नियमित अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र (बिहार, बंगाल, झारखण्ड के बकरी पालकों द्वारा बकरी की उत्तर भारतीय नस्लों जैसे बरबरी,जमुनापारी तथा सिरोही) को पालना शुरू किया है। कुछ जानकारों से यह संकेत मिला है कि पूर्वी क्षेत्र की उष्ण-आर्द्र जलवायु में उक्त प्रजाति के बकरियों की दूध/माँस की क्षमता में 35% तक कमी आ जाती है। इसलिए बकरी पालकों को सुझाव/सलाह यह है कि अच्छी खुराक देते हुए ब्लैक बंगाल नस्ल की बकरियाँ पालें। सारिणी -2 में व्यावसायिक स्तर पर बकरी पालने वालो से मिले आँकड़ों को विभिन्न नस्ल की बकरियों को अपने-अपने इलाकों में पालने पर उनसे प्राप्त शुद्ध लाभ को दर्शाया गया है।

11. प्रतिकूल परिस्थिति क्षेत्रों के लिए बकरी आधारित समन्वित आजीविका माडल्स का निर्माण एवं प्रसार

यह आजीविका मॉडल यह दर्शाता है कि भूमिहीन/सीमान्त परिवार 15 वयस्क बकरियों तथा 25 मुर्गियाँ पालने से 82,727रुपए प्रतिवर्ष लाभ हो सकता है। इसी तरह एक भूमिहीन/सीमान्त/लघु परिवार तथा एक हेक्टेयर कम वर्षा वाली भूमि 10 वयस्क बकरियाँ, 2 गायों तथा 50 मुर्गियाँ पालकर ₹100634 प्रति वर्ष कमा सकता

है। सीमान्त, लघु तथा मध्यम किसान 5 वयस्क बकरियाँ 2 भैंसों, 2 गायों तथा 2 हेक्टेयर कम वर्षा वाली भूमि के माध्यम से ₹119000 हर साल कमाई कर सकते हैं। वहीं, एक अर्द्ध-मध्यम, मध्यम तथा बड़ा किसान 10 बकरियों, 2 भैंसों, 2 गायों तथा 2 हेक्टेयर अर्द्ध-सिंचित भूमि के जरिए ₹1,19,000 आय के रूप में अर्जित कर सकते हैं। इन संस्तुतियों को सूखा बहुल बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बड़ी संख्या में किसानों ने अपनाया है।

तालिका - 6 बकरी आधारित समन्वित आजीविका प्रादर्श (मॉडल):

मॉडल	यूनिट	औसत आय (₹)	घरेलू श्रेणी के लिए उपयुक्तता	प्रयोग के समय आने वाले परिवारों की संख्या
बकरी+मुर्गी पालन	15 व्यस्क मादा+25 चूजा	₹82727 (71115 + 11612)	भूमिहीन सीमांत	64
बकरी + गाय + मुर्गी पालन फसल (वर्षा चारा)	10 व्यस्क मादा + 2 गाय + 50 चूजा + 1 हेक्टेअर	₹100634 (47410 + 22000 + 23224 + 8000)	भूमिहीन सीमांत लघु	142
बकरी भैंस + गाय + फसल (अर्द्ध सिंचाई)	5 व्यस्क मादा + 2 भैंस + 2 गाय + 2 हेक्टेअर	₹109705 (23705 + 34000 + 22000 + 30000)	सीमांत लघु मध्यम बड़ा	80
बकरी + भैंस + गाय + फसल (अर्द्ध सिंचाई)	10 व्यस्क मादा + 2 भैंस + 2 गाय + 2 हेक्टेअर	₹119000 (47410 + 32000 + 22000 + 30000)	अर्द्ध मध्यम मध्यम बड़ा	56

निष्कर्ष

भारत में बकरियों की मृत्यु दर बहुत अधिक (35-50%) तथा उत्पादकता कम (उनकी क्षमता का 75-100%) है, क्योंकि उन्हें (85% से कम बकरियों) अपने देश में वांछित आहार से कम तथा दूसरी सुविधाएँ भी आवश्यकता से कम दी जाती है। अधिकांश बकरी पालक (शून्य लागत के साथ) वयस्क बकरियाँ पालकर 2000 रुपए से लेकर 3000 रुपए शुद्ध आय के साथ औसत 2500 रुपए वार्षिक कमा सकते हैं। लाभ का अनुपातः लागत मुख्यतः 1.5 से लेकर 2.1 है। हालाँकि विवेचित आहार/पोषण, उन्नत बेहतर क्षमता की बकरियों,सुधरी/उन्नत प्रबन्ध पद्धतियाँ तथा अच्छी विपणन तरीके अपनाने से बकरी की उत्पादकता को 90% से लेकर 160% तक बढ़ाया जा सकता है। बकरियों से सालाना कुल आय तथा शुद्ध आय में बढ़ोत्तरी क्रमशः 7500 रुपए से लेकर 10000 रुपए और 5000 रुपए से लेकर 7500 रुपए हो सकती है। एक वयस्क बकरी और उसके मेमने पालने/रखरखाव आदि पर 2500-3500 रुपए व्यय आएगा। इस तरह बकरी पालन की उन्नत प्रबन्ध पद्धतियाँ कम लागत वाले नवोन्मेष तकनीकियाँ तथा उसके बेहतर उत्पादों के विपणन से भारत में बकरी पालकों की एक साल में आय को दुगुना किया जा सकता है।

गर्भित पशु की देखभाल व इस दौरान होने वाले प्रमुख रोगों से बचाव

संजय कुमार मिश्र[1] एवं अतुल सक्सेना[2]

[1]पशु चिकित्सा अधिकारी, चौमुहाँ, मथुरा

[2]आचार्य, उ०प्र० पं० दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, मथुरा।

प्रसव किसी भी मादा पशु के लिए एक कठिन प्रक्रिया है। अतः इसमें कोई बाधा न आये इसके लिए कुछ आवश्यक बातों पर ध्यान रख कर प्रसव में होने वाली परेशानियों से बचा जा सकता है।

ब्याने से कुछ समय पूर्व गाय/भैंस कुछ बाहरी लक्षण जैसे पुट्ठों का टूटना, थनों में धार उतरना इत्यादि प्रदर्शित करती है। यदि कोई गाय/भैंस पुट्ठे तोड लाये तो ऐसे पशु को हमें अन्य पशुओं से अलग बाँधकर रखना चाहिये, उसे समुचित विछावन दें। जहाँ पशु बँधा हो वह स्थान स्वच्छ हो, किसी प्रकार के कृषि यन्त्र इत्यादि न हो। आमतौर पर इस प्रकार के लक्षण प्रदर्शित होने के 18-24 घण्टे में पशु ब्या जाता है परन्तु कुछ पशु इससे ज्यादा समय ले सकते हैं।

गाय/भैंसों में प्रसव की क्रिया तीन चरणों में पूर्ण होती है। प्रथम चरण में पशु की प्रसव के दर्द अधिक होते हैं। इस दर्द के कारण पशु बैचेनी महसूस करता है व समय-समय पर उठता बैठता रहता है। इस दर्द के बाद, बच्चे की पानी से भरी थैली योनि द्वार पर आ जाती है वह कुछ समय पश्चात् फट जाती है।

यदि कोई थैली अथवा द्रव अगले एक घण्टे तक नहीं आता है तो तुरन्त योनी द्वार के रास्ते परीक्षण करना चाहिए। अधिक दर्द अथवा दर्द के उपरान्त सामान्य बैठ जाना चिन्ता का विषय हो सकता है। सामान्यतः गर्भाशय में अण्टा लगने से अथवा गर्भाशय ग्रीवा का मुँह पूरा न खुलने की समस्या हो सकती है जिन्हें समय पर उपचार कर ठीक किया जा सकता है। पड़िया जो प्रथम बार प्रसव क्रिया से गुजरती है अन्य ब्याहे पशु की अपेक्षा अधिक समय लेती है। अतः पडिया की प्रथम चरण की अवधि अपेक्षाकृत अधिक होगी।

प्रसव के दूसरे चरण में दर्द अपेक्षाकृत अधिक अन्तराल पर आते हैं परन्तु दर्द के आयाम बहुत अधिक होते हैं। इस चरण में योनी द्वार से दूसरी थैली प्रकट होती है जिसमें बच्चे के पैर आते हुए दिखाई देते हैं। कुछ समय पश्चात् अधिक जोर के दर्द बनने से पशु बैठ जाता है। यह अवस्था तब आती है जब पशु बच्चे के सर को योनिद्वार से निकालता है। इसके पश्चात् बच्चे का शरीर आराम से आता है व पुनः एक बार अधिक दर्द की जरूरत बच्चे के पिछले भाग को योनिद्वार से निकालने पर लगती है।

यदि प्रसव के दूसरे चरण के दौरान अधिक दर्द होते हुए भी बच्चे के बाहर आने में कोई प्रगति नहीं होती है तो तुरन्त योनिद्वार के रास्ते परीक्षण करना चाहिए। यह लक्षण बच्चे के फँसने को दर्शाते हैं। समय पर उपचार बच्चे को जीवित प्राप्त करने व आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद रहता है।

प्रसव के दौरान रक्त का स्राव, गर्भाशय का रगड़ कर फटना, प्रोलेप्स, पिछले पैर से न उठ पाना (लकवा) इत्यादि कुछ समस्याएँ हैं जो आ सकती हैं व जिनसे कि सूझ-बूझ से निपटा जा सकता है। रक्त का स्राव ऐसे प्रसव में जहाँ सहायता की जरूरत होती है अक्सर देखने को मिलता है। यह गर्भाशय की गाँठ (कारन्कल) के फटने के कारण अथवा बच्चे के पैर से रगड़ जाने के कारण हो सकती है। परन्तु इससे पशु के जीवन को कोई खतरा नहीं होता है। कभी-कभी जिन्दा बच्चे को निकालते वक्त नार के टूट जाने से भी रक्त का स्राव होता है जो कि कुछ देर बाद रूक जाता है।

असामान्य प्रसव में कभी-कभी बच्चे के पैर अथवा कम जगह होने पर जबरदस्ती बच्चे को खींचने से गर्भाशय फट सकता है। ऐसे में रक्तस्राव किसी बड़ी नाड़ी के कारण हो जाता है जिससे पशु की मृत्यु शीघ्र ही हो सकती है। कभी-कभी ऐसी स्थिति बच्चे दानी के निकलने के उपरान्त उसे सही जगह बैठाने के प्रयास में भी हो सकती है।

मादा जनन अंगों के प्रसव के दौरान रगड़ खाने से उत्पन्न घाव सूजन के कारण, पशु को ऐठन (दर्द) बनी रह सकती है। प्रशामक मल्हम व प्रतिजैविक औषधि के इस्तेमाल से बचाव किया जा

सकता है। साथ ही असामान्य प्रसव के दौरान बच्चे को खींचते वक्त सावधानी स्वरूप बच्चेदानी को अच्छी तरह किसी लूब्रीकैन्ट जैसे (सरसों का तेल, पैराफीन इत्यादि) से लेप कर ही निकाले। जगह कम होने की दशा में फिटोटॉमी अथवा खिंचाव के नियमों को अपनायें।

प्रोलेप्स

प्रसव से पूर्व मादा की जनन अंग (गर्भाशय ग्रीवा) व प्रसव के तुरन्त बाद बच्चेदानी का बाहर आना भी प्रायः देखा जाता रहा है। यह अवस्था जनन अंग की मांसपेशियों के शिथिल पड़ने के कारण उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी रूके जैर को गिराने में मादा द्वारा अत्यधिक जोर लगाने से भी बच्चेदानी बाहर निकल आती है। यदि किसी मादा के प्रसव से पूर्व बेली (प्रोलप्स) की समस्या रहती है तो ऐसे पशु के प्रसव को पशु चिकित्सक की देख-रेख में करवाना चाहिए। प्रसव उपरान्त हलकी गेडी (ट्रस) का इस्तेमाल करें। कैल्शियम का सेवन प्रसव से पूर्व व प्रसव के बाद भी जारी रखें। यदि प्रोलेप्स हो भी जाये तो पशु को खुली जगह जहाँ किसी प्रकार के कृषि यंत्र इत्यादि नहीं हो पर रखें। प्रोलप्स को स्वच्छ गीले कपड़े से ढकें, माँसाहारी पशु से रक्षा करें।

प्रोलेप्स को सही स्थान पर बैठाते वक्त बच्चेदानी का वह भाग जो योनीद्वार के नजदीक हो उसे पहले बैठायें व अन्त में पूरी बच्चेदानी को बन्द मुट्ठी की सहायता से अन्दर समायोजित करें। यदि प्रोलप्स हुए ज्यादा समय हो गया हो तो मूत्र थैली को कैथेटर (पतली नली) की सहायता से खाली करें। ठण्डे पानी से प्रोलेप्स को 10-15 मिनट तक भिगोकर रखें। हो सके तो बर्फ का प्रयोग करें।

प्रसव के उपरान्त खड़े न हो पाना (पोस्ट पारचुरियन्ट पैरालाइसिस)

जब कभी भी बच्चे का आकार बड़ा हो व उसे सामान्य से अधिक जोर लगाकर निकाला जाये तो माँ की नसों के बच्चे व कूल्हे की हड्डी में आने से नुकसान पहुँचता है जिसके कारण प्रसव उपरान्त माँ खड़ी नहीं हों पाती है। अतः अधिक बड़े बच्चे को योनी द्वार के रास्ते निकालते वक्त उसे कूल्हे के अधिक माप वाली जगह का इस्तेमाल कर निकालें। मृत बच्चे के होने पर उसे काट कर निकालें या फिर सीजेरियन आपरेशन की मदद लें।

अबोमेसम का व्यवरतन

अधिक दाना खिलाने से अधिक वोलेटाइल फैटी एसिड का निर्माण होता है जो शोषित न होने की स्थिति में अबोमेसम में आ जाते हैं व माँसपेशियों को प्रभावित करते हैं तथा अबोमेसम की क्रमाकुंचन गति को प्रभावित करते हैं। गति प्रभावित होने से अधिक गैस बनती है। गैस बनना व अबोमेसम की गति में कमी होना (एटोनी) अबोमेसम को अपने स्थान से हटने को मजबूर करते हैं। पशु का खाना-पीना कम होता है व दूध का बनना रूकता है। सर्जरी की विधियों द्वारा इसे ठीक किया जा सकता है।

चपापचयी रोग (मेटाबोलिक डिसऑर्डर)

मिल्क फीवरः- दूध के बनाने में अत्यधिक कैल्शियम की जरूरत होती है। जब इसकी आपूर्ति रोजाना में पूरी नहीं होती है तो यह खून में कैल्शियम की मात्रा की कमी कर दर्शाता है। इसके कारण पशु सुस्त बना रहता है व कम खाना खाता है। गर्दन एक तरफ घूमाकर बैठता है। चलने में लड़खड़ाता है। शरीर के कुछ हिस्से (जैसे कान, थन, पैर इत्यादि) ठण्डे रहते हैं। कैल्शियम को देने से रोग की रोकथाम की जाती है। संतुलित आहार ब्याने से पहले देने से रोग से बचा जा सकता है।

किटोसीसः- अधिक मात्रा में किटोन बाडी का शरीर में उत्पादन से पशु में स्नायुविक लक्षण आ जाते हैं। पशु खाना छोड़ देता है व सुस्त बैठा रहता है। संतुलित आहार से इस रोग से बचा जा सकता है। ब्याने से पूर्व व ब्याने के समय होने वाले इन रोगों से गाय/भैंस की दुग्ध उत्पाद शक्ति व प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ब्याने के बाद होने वाले प्रमुख रोग

जैर का रूकनाः- गाय/भैसों में जैर का रूकना एक प्रमुख रोग है। साधारणतः पशु अपने जैर को ब्याने के बाद 6-12 घण्टे तक गिरा देता है। यदि पशु 24 घण्टे तक भी जैर न गिरा पाये तो उसे जैर का रूकना समझना चाहिए। बच्चा फँसने, जुड़वा बच्चे देने, समय से पूर्व बच्चा देने व ऐसे पशु जिनमें पूर्व में भी जैर रूका हो, में जैर रूकने की संभावना बहुत अधिक होती है।

जैर के रूकने की स्थिति में जैर को निकलवाने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। यदि खींचकर जैर निकलवाने पर जैर आसानी से न

छूटे तो इसे और समय तक पड़े रखना चाहिए। ऐसा करने पर जैर कुछ समय बाद स्वयं सड़कर बच्चे दानी की गाठों से छूट जायेगा। इससे बच्चेदानी को जख्म व अन्यत्र रक्त स्राव से बचा जा सकता है। कुछ जरूरी बातें जैसे बच्चे को दूध पिलायें, दूध निकालें, जगह को साफ रखें व कुत्ते इत्यादि से जैर की सुरक्षा करना एक उत्तम उपाय है। जैर की सफाई में अधिक मात्रा में इरीटेंट औषधि से डूसिंग इत्यादि को इस्तेमाल में नहीं लाना चाहिए। सम्पूर्ण इलाज स्वरूप टेट्रासाइक्लिन प्रतिजैविक औषधि का अन्तर्पेशी बेध व गर्भाशय में प्रयोग करना चाहिए।

मैट्राईटिस - पायोमेट्रा

असामान्य प्रसव, बच्चा फँसने, जैर रूकने, गन्दे वातावरण में बच्चे को जन्म देने के उपरान्त समस्या मिलती है। ब्याने के 15-20 दिनों में इसे देखा जा सकता है। सफेद-पतले बदबूदार द्रव्य योनि द्वार से निकलता हुआ गर्भाशय शोथ/मेट्राईटिस रोग कहलाता है। यदि यही द्रव्य गाढ़ा रहे व बच्चेदानी के मुख को बन्द रखे तो इसे पायोमेट्रा कहते हैं। पहली अवस्था में गर्भाशय के अन्दर अन्तर्पेशी बेध द्वार प्रतिजैविक औषधि का प्रयोग 3 से 5 दिन करना समुचित उपाय है। वहीं दूसरी अवस्था में प्रोसटाग्लैनडिन नामक दवा का प्रयोग व तत्पश्चात् प्रतिजैविक औषधि का प्रयोग एक उत्तम इलाज है।

हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" के नवम अंक (वर्ष 2018) के पुरस्कृत लेख

पशुधन प्रकाश पत्रिका में प्रकशित सर्व-श्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा प्रत्येक वर्ष पुरस्कृत किया जाता है। सर्व-श्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग-अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है। पशुधन प्रकाश" के नवम अंक (वर्ष 2018) के पुरस्कृत लेख निम्नलिखित हैं:

प्रथम	:	**गौशालाओं के माध्यम से गाय की नस्लों का संरक्षण एवं सतत विकास**
₹ 3000/- नकद		अनिल कुमार मिश्र, राकेश पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह, के.एन.राजा एवं आर्जव शर्मा
एवं प्रशस्ति पत्र		भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
द्वितीय	:	**भारवाहक अश्वजातीय पशु : एक उपेक्षित आनुवंशिक संसाधन**
₹ 2000/- नकद		हिमानी शर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम.एस. टांटिया
एवं प्रशस्ति पत्र	:	भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
तृतीय	:	**किसानों की आय दुगुनी करने का लक्ष्य: पशुधन की भूमिका**
₹ 1500/- नकद		सत्येन्द्र पाल सिंह एवं रश्मि सिंह
एवं प्रशस्ति पत्र	:	राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, मुरैना

समुचित पशु आहार प्रबन्धन का दुग्ध उत्पादन में महत्व

संजय कुमार मिश्र[1] एवं सर्वजीत यादव[2]

[1]पशु चिकित्सा अधिकारी, चौमुहाँ, मथुरा।

[2]निदेशक प्रसार, उ॰प्र॰पं॰ दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, मथुरा।

संतुलित पशु आहार से दुग्ध उत्पादन बढ़ता है तथा उत्पादन की लागत घटती है।

जहाँ अच्छी नस्ल का पशुधन ग्रामीण समृद्धि का प्रतीक है, वहीं संतुलित पशु आहार दुग्ध उत्पादन बढ़ाता है तथा उत्पादन की लागत को कम करता है।

समुचित आहार के अभाव में उत्तम नस्ल के पशु से अधिक दूध प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसलिए पशुपालक को संतुलित पशु आहार घर पर ही तैयार करने की विधि का ज्ञान होना आवश्यक है।

निम्न अवयवों/घटकों को मिलाकर किसान घर पर ही संतुलित पशु आहार तैयार कर सकते हैं।

1.	खल बिनौला, तिल्ली, अलसी	-	20%
2.	खल सरसों	-	10%
3.	दलियाः जौ/गेहूँ/ज्वार/मक्का/ बाजरा/चापड़ा	-	30%
4.	चावल की पालिश	-	20%
5.	चूरीः चरा/ग्वार/उड़द/मूँग/बढ़ली	-	17%
6.	खनिज मिश्रण	-	02%
7.	नमक	-	01%

संतुलित पशु आहार की मात्रा दुग्ध उत्पादन के अनुसार कम-ज्यादा करते रहना चाहिए। भैंस को प्रति दो किलो दुग्ध उत्पादन पर 1 किलो दाना एवं गाय को प्रति 3 किलो दुग्ध उत्पादन पर 1 किलो दाना देना चाहिए।

प्रतिदिन 5 ली॰ दूध देने वाली गाय के लिए -

2.5 किलोग्राम पशु आहार (दूध के लिए) $ 2 किलो (स्वस्थ रहने के लिए) = 4.5 किलो प्रतिदिन

प्रतिदिन 6 ली॰ दूध देने वाली गाय के लिए -

3 किलोग्राम पशु आहार (दूध के लिए) $ 2 किलो (स्वस्थ रहने के लिए) = 5 किलो प्रतिदिन

गर्भावस्था के अंतिम दो माह में गाय/भेंस के लिए -

1 किलोग्राम संतुलित पशु आहार व 1 किलो खली $ 2 किलो (स्वस्थ रहने के लिए)

= 3 किलो प्रतिदिन संतुलित पशु आहार $ 1 किलो खली की आवश्यकता होती है।

- दाने को खिलाने से आधा घंटा पूर्व पानी में भिगोये।
- वर्ष भर हरे चारे का उपयोग करें एवं मोटे चारे की कुट्टी काटकर खिलायें।
- पशुशाला में स्वच्छ व साफ पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहे।
- संतुलित आहार प्रजनन शक्ति बढ़ाता है और दुग्ध उत्पादन व फैट में वृद्धि भी करता है।
- बछड़े/बछियों को 1 से 1.5 किलो संतुलित पशु आहार प्रतिदिन देना चाहिए।
- दुधार, पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए 2 किलो पशु आहार और प्रति लीटर उत्पादित दूध के लिए गाय को 400 ग्राम तथा भैंस को 500 ग्राम संतुलित पशु आहार खिलाना चाहिए।
- ब्याने वाली गायों/भैसों को 1 किलो पशु आहार तथा 1 किलो उच्च गुणवत्ता की खली, गर्भावस्था के अंतिम 2 महीने में अतिरिक्त देना चाहिए।
- व्यस्क पशु को 50 ग्राम एवं बछड़ों को 25 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन अवश्य दें।
- पशुओं को नमक उनकी इच्छानुसार नियमित दें।

- बछड़ों को प्रारम्भ से ही नमक चाटना एवं पेट के कीड़े (अंत कृमिनाशक) मारने की औषधि अवश्य दें।
- ग्याभिन पशुओं को ब्याने के दो माह पूर्व से ही दो किलो दाना देना प्रारम्भ करें।
- असंतुलित पशु आहार न केवल पशुओं की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है बल्कि दुग्ध उत्पादन से होने वाली आय को भी प्रभावित करता है।
- डेयरी उद्योग की सफलता की नींव बछिया/पड़िया के पालन पोषण पर ही निर्भर है। इसलिए छोटे बच्चों का प्रारम्भ से ही आयु वर्ग एवं दुग्ध उत्पादन के अनुसार समुचित आहार देना चाहिए।

कम दुग्ध उत्पादन के प्रमुख कारण एवं उनका निवारण -

समस्या- पीक दुग्ध उत्पादन का कम (4-6 ली०) होना - पीक दुग्ध उत्पादनः ब्याने के बाद प्रथम 30-45 दिनों में किसी भी एक दिन का अधिकतम दुग्ध उत्पादन पीक उत्पादन कहलाता है।

कारण- ब्याने के पूर्व दाना नहीं खिलाना

नमक एवं खनिज मिश्रण नहीं खिलाना

मादा पशुओं की प्रारम्भ से ही सुचारू रूप से देखभाल नहीं करना।

निवारण-गाय/भैंस को ब्याने के दो माह पूर्व से ही प्रतिदिन 2 से 4 किलो दाना एवं 20 ग्राम सतावरी देना प्रारम्भ करें।

25-50 ग्राम खनिज मिश्रण एवं 30 ग्राम नमक नियमित रूप से खिलायें।

दूध बराबर समय अंतराल पर तेजी से व पूरा निकालें।

समस्या- एक ब्यांत में कम समय (6-7 माह) तक ही दूध देना।

कारण- केवल खल, चूरी या दलिया ही खिलाना वह भी कम मात्रा में।

पशु आहार खिलाने में अनियमितता।

नमक एवं खनिज मिश्रण नहीं खिलाना।

निवारण-संतुलित पशु आहार उचित मात्रा में खिलावें।

खनिज मिश्रण एवं नमक नियमित देवें।

ब्याने के दस दिन बाद एवं फरवरी, जून व अक्टूबर में पेट के कीड़े मारने की औषधि दें।

वर्ष भर हरे चारे एवं पीने के स्वच्छ पानी का प्रबन्ध रखें।

पशु शाला स्वच्छ, हवादार व सूखी रखें।

समस्या- दो ब्यांत के बीच का अंतराल अधिक (18 से 24 माह) होना।

विशेषः- पीक दुग्ध उत्पादन में एक लीटर की वृद्धि से पूरे ब्यांतकाल में 210 लीटर दूध उत्पादन बढ़ जाता है।

कारण- गाय/भैंस का समय पर गर्मी/ऋतु में नहीं आना।

बार-2 ग्याभिन करवाने पर भी ग्याभिन न होना (फिरावट की समस्या)

गाँवों में उच्च गुणवत्ता युक्त साँडो की कमी।

निवारण-गाय/भैंस को ब्याने के बाद 2-3 माह में गर्भित करायें।

गॉव में उच्च गुणवत्ता युक्त साँड रखें।

खनिज मिश्रण (50 ग्राम) एवं नमक (50 ग्राम) नियमित रूप से खिलावें।

कृत्रिम गर्भाधान/ओवसिंच प्रोटोकाल की सुविधा पशुपालक के द्वार पर उपलब्ध कराना।

बछड़े-बछड़ियों/पड्डे-पड्यिों की प्रारम्भ से ही समुचित देखभाल करना।

बकरी पालनः एक बहुउद्देश्यीय व्यवसाय

पल्लवी सिंह एवं रवि रंजन

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं कृषि वर्ष में अधिकाधिक 180 दिन का रोजगार प्रदान कर सकती है। अतएव आधुनिक परिदृश्य में ग्रामीण जनसंख्या पूर्णतः कृषि पर निर्भर न रहते हुए पशुपालन को भी एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में अपना रही है। गाय एवं भैंस की तुलना में बकरी पालन गरीब किसानों के मध्य अधिक लोकप्रिय है। बकरियाँ पशुधन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं तथा ग्रामीण गरीबों की सामाजिक आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसका प्रमुख कारण है गाय भैंस जैसे बड़े मवेशियों की तुलना में बकरी पालन व्यावसाय के लिए कम स्थान एवं संसाधनों की आवश्यकता, सरल प्रबन्धन, कम लागत मूल्य के साथ अधिक लाभ, बहु प्रसवताए शीघ्र प्रजनन योग्य होने की क्षमता, विस्तृत प्रजनन काल, अनेक रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता एवं वर्ष भर विक्रय सुविधा। बकरी कम लागत वाले रखरखाव के साथ मरूस्थलीय क्षेत्रों तथा उच्च तनाव की स्थितियों के लिए एक आदर्श पशु है क्योकि बकरियाँ उन झाड़ियों को खाती हैं जिन्हें अन्य पशु खाना पसन्द नहीं करते। भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में कुल 34 नस्ल की बकरियाँ पायी जाती हैं। भारत में बकरियों की कुल संख्या 13.517 करोड है जो कि विश्व की कुल बकरियों की संख्या का 13 प्रतिशत है।

बकरी पालन

बकरी पालक व्यवसायिक बकरी फार्म द्वारा अपनी आजीविका को बढ़ा सकते हैं। व्यवसायिक बकरी फार्म खोलने के लिए सर्वप्रथम ध्यान रखने योग्य बात है क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप नस्ल का चुनाव। तालिका 1 में भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में पायी जाने वाली बकरी की नस्लों का विवरण प्रस्तुत है।

तालिका 1: भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में पायी जाने वाली बकरी की नस्लों का विवरण

क्रम संख्या	जलवायु क्षेत्र	प्रजाति	उद्देश्य
1	उत्तरी ठण्डा क्षेत्र	गद्दी, चेगु, चांगथांगी	माँस व रेशा
2	उत्तरी-पश्चिमी शुष्क क्षेत्र	पंतजा, जमुनापारी, बीटल, जखराना, कच्छी, मारवाड़ी, बरबरी, मेहसाणा, झालावाडी, गोहिलावाडी, सुरती	दूध व माँस
3	दक्षिणी क्षेत्र	संगमनेरी, ओस्मानाबादी, कन्नी अडू, मालाबारी, कोडी अडू, बेरारी, कोंकण कन्याल, अट्टा पैडी, सलेम ब्लैक	माँस व दूध
4	दक्षिणी तटीय क्षेत्र	गंजाम, ब्लैक बंगाल, टेरेसा	माँस
5	उत्तरी पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र	सुमी-नी	माँस व रेशा

क्षेत्र की जलवायु तथा उत्पादकता उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उचित नस्ल का चुनाव करना चाहिए। उत्पादकता उद्देश्य से तात्पर्य है कि माँस तथा दूध के लिए उचित नस्ल का चयन। भारत में प्रमुख रूप से माँस तथा दूध के लिए पाली जाने वाली बकरी की विभिन्न नस्लों का विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

बकरी पालक को अपने उत्पादकता उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उच्च गुणवत्ता की 40-50 बकरियों से फार्म की शुरुआत करनी चाहिए। सामान्यतः 8-10 मादा बकरियों के लिए 1 नर प्रजनन के लिए उपयुक्त रहता है अर्थात् 50 बकरियों के लिए 5 नर बकरे पर्याप्त रहते हैं। अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए नर बकरों का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए। नर की गुणवत्ता का निर्धारण उसके 6 माह के शारीरिक भार तथा उसकी माँ की 90 दिन की दुग्ध मात्रा के आधार पर किया जाता है। शारीरिक भार एवं दूध देने की क्षमता को बढ़ाने के लिए उच्च क्षमता बाले नर एवं मादा को प्रजनन के लिए प्रयोग करना चाहिए। बकरी पालन में ध्यान रखने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य:-

1. क्षेत्र की जलवायु एवं भौगोलिक दृष्टि के अनुरुप उचित नस्ल का चुनाव।
2. उत्पादकता उद्देश्य के अनुरुप उच्च उत्पादन क्षमता के नर एवं मादा का प्रजनन के लिए चयन।
3. साफ सुथरे एवं पर्याप्त जगह के बाड़े की व्यवस्था।
4. समय-समय पर टीकाकरण की उचित व्यवस्था।
5. बकरी पालन का प्रशिक्षण प्राप्त करके वैज्ञानिक विधियों द्वारा व्यवसाय को उन्नत करना।
6. पर्याप्त हरे चारे एवं दाने की व्यवस्था।

बकरी पोषण

बकरियों के लिए खान-पान की उचित व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बकरियों को उनकी दैहिक अवस्थाओं के आधार पर वर्गीकृत करके अलग-अलग बाड़ों में रखना चाहिए तथा उनके खान-पान की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक या कम खिलाना दोनों ही परिस्थितियाँ बकरी पालन के लिए लाभदायक नहीं है। उदाहरण के लिए:-

- नवजात मेमनों को पैदा होने के उपरान्त सर्वप्रथम खीस पिलाना नितान्त आवश्यक है।
- तदुपरान्त प्रतिदिन 2-3 बार दूध पिलायें।
- पैदा होने के 2 सप्ताह बाद अच्छी गुणवत्ता वाले दलहनी चारे का भूसा एवं दाने का मिश्रण देना प्रारम्भ करना चाहिए।
- तीन महीने की उम्र के बाद बच्चों को माँ का दूध पिलाना बन्द कर दें तथा उच्च शारीरिक वृद्धि हेतु हरे दलहनी चारे एवं भूसे के अतिरिक्त उत्तम गुणवत्ता वाले दाने का मिश्रण दें।

माँस की दृष्टि से पाले जाने वाले नर बकरों का वजन अधिक होना चाहिए तभी बाजार में उनकी अच्छी कीमत प्राप्त होती है। इसके लिए दलहनी चारे के भूसे के साथ-साथ 200-300 ग्राम अनाज जिसमें दलहनी चारे के भूसे के 1.5 प्रतिशत खनिज लवण मिले हों बकरों को प्रतिदिन दें। इस प्रकार के आहार से बकरों के शारीरिक भार में वृद्धि के साथ-साथ उनकी चमक में भी वृद्धि होती है। प्रजनन हेतु पाले जाने वाले बकरों के लिए आहार की व्यवस्था करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें शारीरिक रक्षा के अतिरिक्त आवश्यक मात्रा में उत्पादन आहार भी मिलता रहे। प्रजनक बकरों के आहार में हरा चारा, दलहनी भूसा, 200-250 ग्राम दाना मिश्रण के अतिरिक्त 400-500 ग्राम दाना मिश्रण प्रतिदिन देना चाहिए। शुष्क बकरियों को जिनसे दूध उत्पादन नहीं हो रहा है एवं जिनके ब्याने में लगभग दो महीने से अधिक समय बाकी है। प्रतिदिन लगभग 500 ग्राम दलहनी या 1.0 किलो ग्राम अदलहनी हरा चारा, 500-600 ग्राम दलहनी भूसा तथा लगभग 100 ग्राम दाना मिश्रण की आवश्यकता होती है। दूध देने वाली बकरियों को लगभग 1 किलो ग्राम दलहनी हरा चारा अवश्य दें। हरा चारा उपलब्ध ना होने की स्थिति में उन्हें दलहनी भूसा खिलायें। इसके अतिरिक्त 400 ग्राम दाना प्रतिदिन प्रति बकरी अवश्य खिलायें जिससे उनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता तथा स्वास्थ्य उत्तम रहे। गर्भित बकरियों को गर्भावस्था के अन्तिम चरण में प्रतिदिन 300-400 ग्राम अतिरिक्त दाना देना चाहिए जिससे नवजात मेमनों का जन्म के समय वजन ठीक रहे तथा बकरी की दुग्ध उत्पादन क्षमता भी उत्तम रहे।

बकरी स्वास्थ्य

बकरी पालन में उत्पादकता को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा कारक है, बकरियों का स्वास्थ्य प्रबन्धन। बकरी पालकों को बकरियों के विभिन्न रोगों के कारण अत्यधिक आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। बकरियों में संक्रामक रोगों से बचाव के तरीके अपनाकर तथा उनकी उचित देखभाल करके इस व्यवसाय से अधिक आय अर्जित की जा सकती है। रोग उपचार की अपेक्षा पशुओं को रोगों से बचाना अधिक श्रेयस्कर रहता है। बकरियों को प्लेग (पी.पी.आर.), चेचक, मुँहपका, खुरपका (एफ.एम.डी.), मौहा (कण्टेजियस ऐक्थाइमा), थनैला (मैस्टाइटिस), टिटनेस आदि रोगों से बचाने के लिए समय-समय पर टीकाकरण करना चाहिए। बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखने का प्रबन्ध करना चाहिए।

बकरी स्वास्थ्य कैलेण्डर

बकरी प्रजनन

बकरी पालन की सफलता मुख्य रूप से उत्तम प्रजनन पर निर्भर करती है। बकरियों में गर्भाधान करने की क्षमता एक निश्चित आयु के पश्चात् ही प्राप्त होती है जो कि अलग-अलग नस्ल के लिए अलग-अलग होती है। बकरियों की प्रजनन क्षमता उम्र बढ़ने के साथ बढ़ती है जो कि 2 से 5 वर्ष की आयु में अधिकतम होती है तथा फिर धीरे-धीरे घटने लगती है। साधारणतः बकरियों में प्रजनन क्षमता 7 वर्ष की आयु तक बनी रहती है। भारतीय बकरियाँ लगभग वर्ष भर ऋतु में आती रहती हैं। इस कारण इनकी प्रजनन प्रक्रिया वर्ष भर चलती रहती है। तथापि प्रजनन काल का समायोजन इस प्रकार करना

चाहिए कि जन्म लेने वाले मेमनों के स्वास्थ्य के लिए मौसम अनुकूल रहे। इसके लिए बकरियों को प्रत्येक वर्ष दो बार अप्रैल-जून (ग्रीष्म ऋतु) तथा सितम्बर-नवम्बर (शीत..ऋतु) में गाभिन कराना चाहिए। इन महीनों में गांभिन करायी गयीं बकरियाँ क्रमशः अक्टूबर-नवम्बर तथा फरवरी-मार्च महीनों में ब्याती हैं जो नवजात मेमनों और माँ दोनों के स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन एवं शरीर भार वृद्धि की दृष्टि से उत्तम होते हैं।

प्रजनन हेतु मादा बकरी तथा बकरे का चयन निम्न गुणों के आधार पर करना चाहिए-

1. कम आयु में प्रजनन योग्य होने की क्षमता
2. अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता
3. अधिक दुग्धकाल व कम शुष्क काल
4. शारीरिक वृद्धि

बकरी पालक परम्परागत प्रजनन पद्धतियों के अतिरिक्त आधुनिक जनन तकनीकों को अपनाकर उत्पादन में गुणात्मक सुधार ला सकते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान तकनीक द्वारा अच्छी नस्ल के बकरे के वीर्य का उपयोग करके एक साथ अधिक संख्या में मादा बकरियों को गाभिन कराया जा सकता है। प्राकृतिक गर्भाधान की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक अधिक लाभप्रद है। प्राकृतिक गर्भाधान में एक बार में एक बकरा सिर्फ एक बकरी को ही गाभिन कर सकता है वहीं कृत्रिम गर्भाधान विधि से एक बकरा एक बार में 20 से 25 बकरियों को गाभिन कर सकता है। 'केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान' में कृत्रिम गर्भाधान की सफलता नर ताजे तनु वीर्य के लिए 60 से 70 प्रतिशत तथा हिमीकृत वीर्य के लिए 40 से 50 प्रतिशत तक रही है। कृत्रिम गर्भाधान तकनीक का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके द्वारा केवल अच्छी नस्ल के बकरों से प्राप्त वीर्य का परीक्षण करके उन्हें ही प्रजनन के लिए प्रयोग किया जाता है। साथ ही अनेक रोग जो नैसर्गिक समागम द्वारा एक पशु से दूसरे पशु में स्थानान्तरित होते हैं उनकी रोकथाम भी होती है।

ऋतुकाल समकालीकरण

बकरियों में ऋतुकाल का कृत्रिम तरीके से समकालीकरण करके बकरी पालक अनेक लाभ प्राप्त कर सकते हैं जैसे- बकरियों से एक साथ बच्चे प्राप्त करना, मौसम की अनुकूलता के अनुसार बच्चे पैदा करना, त्योहारों जैसे-ईद, बकरीद, काली पूजा इत्यादि पर बिक्री हेतु बकरियों के समूह तैयार करना आदि। बकरियों में ऋतुकाल का समकालीकरण मुख्य रूप से प्रोस्टाग्लेंडिन (प्रोजेस्ट्रान) द्वारा किया जाता है। इसके लिए प्रोस्टाग्लेंडिन (ल्यूटालेज, टायापौस्ट्र या इलिरैन) इंजेक्शन की दो खुराक (7.5 मि.ग्रा. प्रति वयस्क बकरी) 11 दिन के अन्तराल पर अन्तः माँसपेशी मार्ग से लगायी जाती हैं। इस प्रकार प्रोस्टाग्लेंडिन देने के 24-48 घण्टे में अधिकांश बकरियाँ ऋतु में आ जाती हैं।

बकरी माँस

विश्व की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के पोषण स्तर को पूरा करने के लिए माँस एक उत्तम विकल्प है। बकरी माँस किसी भी धार्मिक विचारधारा हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई इत्यादि से स्वतंत्र है अर्थात् बकरे के माँस को सभी धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों द्वारा खाने में प्रयोग में लाया जाता है। किसी तरह की धार्मिक पाबन्दी न होने के कारण बकरे का माँस भारत में अन्य माँस की तुलना में अधिक लोकप्रिय है। बकरी का माँस स्वास्थ्य जागरूक उपभोक्तों के लिए आदर्श है। बकरे के माँस में अन्य पशुओं के माँस की तुलना में वसा, लौह (आयरन), प्रोटीन तथा विटामिन अधिक पाया जाता है।

तालिका 2: बकरी माँस का तत्त्व संगठन (100 ग्राम माँस में)

क्रम संख्या	पोषक तत्त्व	संगठन
1	कैलौरी	122
2	वसा (ग्राम)	2.6
3	संतृप्त वसा(ग्राम)	0.79
4	प्रोटीन(ग्राम)	2.3
5	कोलेस्ट्रोल (ग्राम)	63.8

बकरी के माँस में अधिक पोटेशियम तथा कम सोडियम पाया जाता है इसलिए यह रक्त चाप को नियन्त्रित करता है तथा वृक्क सम्बन्धी रोगों से रक्षा करता है। बकरी के माँस में कैल्सियम तथा फॉस्फोरस का स्तर अधिक होने के कारण यह अस्थियों के लिए भी लाभप्रद होता है। बकरी माँस का सेवन हृदय रोगों के जोखिम को कम करता है। बकरियाँ जुगाली करने वाले पशुओं की श्रेणी में आती हैं इसलिए इनका माँस संयुक्त लिनोलिक अम्ल का उत्तम स्रोत है। संयुक्त लिनोलिक अम्ल एक प्रकार का वसा अम्ल है जो कि कैंसर के विरूद्ध अत्यन्त प्रभावी है। बकरे के माँस में आयरन का प्रतिशत अधिक पाया जाता है (3 मिग्रा आयरन/100 ग्राम बकरी माँस) इसलिए यह गर्भवती महिलाओं के लिए उत्तम है। यह गर्भवती महिलाओं के रक्त में हीमोग्लोबिन स्तर को उच्च रखता है तथा माता एवं गर्भस्थ शिशु दोनों की एनीमिया रोग से रक्षा करता है। गर्भावस्था के दौरान आहार में बकरी के माँस का समावेश करने से शिशु में तंत्रिका ट्यूब दोष जैसे जन्म दोषों का खतरा कम हो जाता है। बकरे के माँस में विटामिन बी 12 का उच्च प्रतिशत होने के कारण यह त्वचा के लिए भी लाभदायक होता है। बकरी माँस ओमेगा 3 वसा अम्लों का उत्तम स्रोत है साथ ही यह नयी कोशिकाओं की निर्माण प्रक्रिया को बढ़ाता है तथा उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है।

बकरी दुग्ध

बकरी का दूध अनेक औषधीय गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त लाभदायक है। बकरी के दूध में कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, लौह तत्त्व, फॉस्फोरस, पोटेशियम तथा अन्य खनिज बहुतायत में पाये जाते हैं। बकरी के दूध के वसा कण आकार में छोटे होने के कारण सरलता से पच जाते हैं। इसीलिए बकरी का दूध माँ के दूध के समान ही नवजात के लिए लाभकारी होता है। यदि किसी कारण से नवजात को माँ का दूध नहीं मिल पाता है तो उसे बकरी का दूध पिलाया जाता है। बकरी का दूध गरीब ग्रामीणों के लिए पोषण का प्रमुख स्रोत है। इसी कारणवश बकरी के 'गरीब की गाय' होने की कहावत पूर्णतः चरितार्थ होती है। बकरी, गाय एवं मनुष्य के दूध के संगठन का तुलनात्मक अध्ययन तालिका 3 में दर्शाया गया है।

तालिका 3: बकरी, गाय एवं मनुष्य के दूध के संगठन का तुलनात्मक अध्ययन(प्रति 100 ग्राम दूध में)

क्र सं	पोषक तत्त्व	बकरी	गाय	मनुष्य
1	सम्पूर्ण ठोस (ग्राम)	12.2	12.3	12.3
2	वसा (%)	4.0-4.5	3.8	4.1
3	प्रोटीन (%)	3.2	3.3	1.3
4	लैक्टोज (%)	4.6	4.7	7.2
5	भस्म (%)	0.8	0.7	0.2
6	जल (%)	87.5	87.7	86.7
7	जल (%)	70	69	68

बकरी के दूध में डेंगू व चिकनगुनिया जैसे रोगों से लड़ने की अद्भुत क्षमता पायी जाती है। बकरी का दूध मधुमेह, क्षय रोग और कैंसर जैसे रोगों को दूर करने में भी मदद करता है। बकरी के दूध में प्रति जैविक गुण भी पाये जाते हैं जो शरीर में किसी भी प्रकार की जलन और सूजन से राहत दिलाने में मदद करते हैं (सिंह एवं सहयोगी 2017) । बकरी का दूध शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में अत्यन्त गुणकारी है क्योंकि इसमें सेलेनियम नामक खनिज की भरपूर मात्रा पायी जाती है। बकरी के दूध में उपस्थित लैक्टोपरऑक्सीडेज प्रोटीन के कारण यह हैजा, निमोनिया एवं भोजन विषाक्तता जैसी बीमारियाँ उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं के विरुद्ध अत्यन्त प्रभावकारी है। बकरी का दूध कैंसर, हृदय सम्बन्धी रोगों, कुअवशोषण सम्बन्धी विकारों से बचाव करता है (अल्फ्रेज़ एवं सहयोगी 2017) ।

बकरी उत्पादों का गुण संवर्द्धन

बकरी के दूध के स्वास्थ्यप्रद लाभों को देखते हुए इसकी लोकप्रियता बहुत कम है। अतएव इससे उपभोक्ता उन्मुखी गुण संवर्द्धक उत्पाद बनाया जाना आवश्यक हो गया है। उचित प्रचार-प्रसार द्वारा इन्हें स्वास्थ्यवर्द्धक भोज्य पदार्थों के रूप में बेचने के अच्छे अवसर हैं। इसके लिए बकरी पालक बकरी के दूध का पाश्चुरीकरण करके,

रोगाणुनाशन करके तथा आकर्षक डिब्बाबन्दी करके उसकी बिक्री को बढ़ा सकते हैं। बकरी पालक बकरी के दूध से कई प्रकार के उत्पाद जैसे - दही, मक्खन, घी, पनीर, श्रीखण्ड, मट्ठा, आइसक्रीम इत्यादि बनाकर तथा उनकी डिब्बाबन्दी करके अपनी आय बढ़ा सकते हैं। बकरी के दूध का पाउडर बनाकर विदेशों में निर्यात किया जा सकता है। बकरी के दूध का पी एच स्तर मानव त्वचा के समान होने के कारण इसका उपयोग अनेक सौन्दर्य उत्पाद जैसे- साबुन, क्रीम, लोशन, शैम्पू, डिटर्जेण्ट, लिपस्टिक इत्यादि बनाने में भी किया जाता है।

उपभोक्ताओं द्वारा बकरी के माँस को वरीयता दी जाती है क्योंकि अन्य माँस की तरह बकरियों का माँस किसी प्रकार की धार्मिक भावनाओं से नहीं जुड़ा है। बकरी का माँस उसमें उपस्थित पोषक तत्त्वों के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय है। आधुनिक समय में जीवन शैली में परिवर्तन, प्रति व्यक्ति औसत आय में बढ़ोत्तरी, बढ़ते शहरीकरण, उपभोक्ता जागरूकता एवं नौकरी में महिलाओं की संख्या बढ़ने से खाने हेतु तैयार गर्भ माँस उत्पादों की माँग बढ़ रही है। अतः गर्म कर तुरन्त खाने योग्य माँस उत्पाद जैसे- सोसेज, नगेट्स, पेटीज आदि केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान द्वारा तैयार किये जाते हैं। केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान द्वारा अनेक अन्य प्रकार के माँस उत्पाद जैसे- अचार, समोसे, कबाब, टिक्का, कोरमा, करी, कोफ्ता आदि भी तैयार किये जाते हैं। बकरी पालक दूध, माँस तथा उनसे बने उत्पादों का मूल्य सम्वर्द्धन करके अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

माँस एवं दूध के अतिरिक्त अन्य उत्पादों द्वारा भी बकरी पालक अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। जैसे बकरी की खाल विभिन्न प्रकार के चमड़े के सामान, जूते, पर्स इत्यादि बनाने में उपयोगी है। बकरियों की हड्डियों का चूरा, जिलेटिन, पशुओं के दाने व उर्वरक के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। बकरी के गोबर (लेड़ी/मैंगनी) को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। बकरियों की पहाड़ी प्रजातियों जैसे- चेगु, चांगथांगी, पशमीना आदि से ऊन प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार बकरी पालन एक बहुद्देशीय व्यवसाय है जिसे अपनाकर तथा वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके गरीब किसान अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

साराँश

बकरी पालक परम्परागत विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। पशुओं की आनुवांशिक क्षमता, प्रबंधन प्रणाली तथा विपणन रणनीति के आधार पर प्रति बकरी प्रति वर्ष 2500 रूपये से लेकर 8400 रूपये तक शुद्ध आय प्राप्त की जा सकती है। सरकार द्वारा चलायी जाने वाली विभिन्न वित्त योजनाओं का लाभ उठाकर बकरी पालक अपने व्यवसाय को सुदृढ़ कर सकते हैं। वर्ष भर विक्रय सुविधा की दृष्टि से बकरी एक उत्तम पशु है। बकरी का माँस एवं दूध वर्ष भर माँग में रहता है। साथ ही विशेष अवसरों जैसे- ईद, लोहड़ी, काली पूजा आदि पर बकरियों की माँग देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी बढ़ जाती है। बकरी पालक उचित रणनीतिक प्रबन्धन एवं विपणन तकनीकों को अपनाकर इन अवसरों का लाभ उठा सकते हैं तथा इस व्यवसाय के माध्यम से अपनी आय को दोगुना कर सकते हैं। वर्तमान में व्यवसायिक बकरी पालन कृषि विकास के महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरा है। बकरी पालन में महिलायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं अतएव बकरी पालन का उपयोग ग्रामीण महिला सशक्तीकरण के लिए भी किया जा सकता है। इन्हीं कारणों से बकरी पशुधन की सबसे समावेशी प्रजातियों में से एक बन गयी है।

संदर्भ

गुंजन महेन्द्रू, पी.के.शर्मा, वी.के.गर्ग, ए.के.सिंह, एस.सी.मंडल। रोल ऑफ गोट मिल्क एंड मिल्क प्रोडक्ट्स इन डेंगू फीवर। जर्नल ऑफ फार्मास्यूटिकल एंड बायोमेडिकल साइंसेज। 2011, 8(06): 1-5.

एन.एच.केसी। गोट मीट इन ह्यूमन न्यूट्रीशन। फिफ्थ इन्टरनेशनल कॉन्फ्रेन्स ऑन गोट्स। 1992, 583-598.

एम.के.सिंह, ए.के.वर्मा, एस.के.सिंह। करन्ट स्टेटस एंड पोटेन्शियल रोल ऑफ गोट्स। इन्डियन फार्मिंग। 2017, 67(10): 32-37.

एम.जे.अल्फेरेज, बारीओन्यूवो एम, आई.लोपेज अलियागा, एम.आर. सेन्ज सेम्पेलायो, एफ.लिस्बोना, जे.सी.रोबल्स, एम.एस. केम्पोस। डाइजेस्टिव यूटिलाइजेशन ऑफ गोट एंड काऊ मिल्क फैट इन मेलएबजॉर्पशन सिन्ड्रोम। जर्नल ऑफ डेयरी रिसर्च। 2001, 68(3): 451-61.

गाय तथा भैसों की प्रमुख नस्लें तथा उनकी पहचान

दुर्गा शंकर गोस्वामी एवं जगदीश प्रसाद तेतरवाल

कृषि अनुसंधान केन्द्र (कृषि विश्वविद्यालय) उम्मेदगंज, कोटा-324001 (राजस्थान)

भारत समृद्ध जैव-विविधता युक्त बड़ी देशी गौजातीय आबादी वाला देश है। यहाँ गाय की 43 तथा भैसों की 15 भलीभाँति परिभाषित नस्लें हैं। कठोर जलवायु परिस्थितियों में अपने अनुकूलन के कारण जीवित रहना, खराब गुंणवत्ता वाले आहार एवं चारे पर उत्पादन की योग्यता, रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता इत्यादि गुणों के कारण कई पीढ़ियों में इन नस्लों का विकास हुआ है। भारत में विश्व की लगभग 15-16 प्रतिशत गायें तथा 57 प्रतिशत भैसें पाई जाती है। गाय तथा भैंसों की प्रमुख नस्लों की पहचान तथा उनकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैः-

(अ.) गायों की नस्लों को इनके प्रयोजन के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता हैः-

1. **दूध प्रयोजनी नस्लेः-** इस वर्ग में उन नस्लों शामिल किया जाता है जो दूध अधिक मात्रा में देती है परन्तु इनके नर खेती के लिए कार्यरत नहीं होते है जैसे - साहीवाल, सिन्धी, गिर और दियोनी।
2. **द्विप्रयोजनी नस्लेंः-** इस वर्ग में उन नस्लों को शामिल किया जाता है जो दूध की मात्रा मध्यम तथा बैल कृषि कार्य के लिए अच्छे होते हैं जैसे द्विकाजी नस्लें हरियाणा, थारपारकर, कॉकरेज एवं अंगोल।
3. **भारवाही या कृर्षणीयः-** इस वर्ग में उन नस्लों को शामिल किया जाता है जिनका दूध उत्पादन बिलकुल कम होता है परन्तु इनके बछड़े खेती के लिए पूर्णतया निपूर्ण होते है जैसे हिसार, अमृत महल, डांगी, मेवाती या कोसी निमाड़ी।

(ब.) भैसों की नस्लों को उनके आकार के अनुसार निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. भारी श्रेणी - मुर्रा, जाफराबादी एवं नीली रावी
2. मध्यम श्रेणी - मेहसाना, भदावरी एवं नागपुरी
3. हल्की श्रेणी - सूरती

भारतीय दुधारू गायों की नस्लों की प्रमुख विशेशताएँ तथा पहचान

नस्ल	मूल स्थान एंव वितरण फैलाव	शारिरीक विशेषताएँ	औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्ंयात (पंजीकरण के लिए भी)	प्रथम बार ब्याने पर आयु	शरीर का वजन (किग्रा)	अन्य गुण तथा रंग
दुधारू नस्लें साहीवाल दूसरा उपनाम लोला तथा मोन्ट गोमरी	मोन्टगोमरी - जिला (पाकिस्तान में) पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार	गहरा लाल से कत्थई, सीम छोटे व मोटे (करीब 4") भारी शरीर व त्वचा ढीली के कारण लोला उपनाम, मूतान लटकता हुआ, गलकम्बल विकसित, माथा व नथुना चैड़ा, भारी व छोटी टांगे, वक्ष स्थल चैड़ा, दुग्ध शिरा व अयन विकसित तथा देखने में आलसी पशु उभरा हुआ माथा इस नस्ल की मुख्य पहचान है।	2200 से 2500 कि.ग्रा.	3.5 वर्ष	गाय-400 सांड-490	सफेद रंग के धब्बे माथे पर
सिन्धी	करांची तथा सिन्ध प्रान्त (पाकिस्तान में)	श्रंग लाल रंग, सींग छोटे व मोटे तथा गुटठल, मध्यम आकार, सुडौल बदन, माथा चैड़ा व समतल, अयन विकसित तथा मुतान लटका हुआ	1800 लीटर	3.0-3.5 वर्ष	गाय-400 सांड-480	सफेद रंग के धब्बे माथे पर अन्य जगह

गिर दूसरा नाम काठियावाड़ी एवं देसान भी कहते हैं।	गुजरात में काठियावाड़ जिला इसका उद्गम स्थान है तथा सोराष्ट्र एवं राजस्थान के आसपास के जिले	श्रंग लाल या काला व सफेद रंग के धब्बे, या हल्का सफेद शरीर पर लाल या काले रंग के धब्बे, थूथन काले रंग का, भारी-भरकम ललाट, वक्र सींग, सींग लम्बे मोटे तथा कुण्डलाकार, कूल्हे की हड्डी उभरी हुई, गलकम्बल पतला एवं कम सलवटों वाला, अधर वक्ष विकसित, अयन मघ्यम रूप से विकसित तथा पीछे तक फैला हुआ । कान लम्बे व पत्तीनुमा मुड़े हुए इस नस्ल की मुख्य पहचान होती है।	1200-1800 कि.ग्रा.	4 वर्ष	गाय-386 सांड-546	सीधे सींग, चैड़ा माथा, सीधे, छोटे कान, लाल रंग। राजस्थान में यह भीलवाड़ा एवं अजमेर जिले में पायी जाती है।
दियोनी (बम्बई नस्ल)	आंध्र प्रदेश का हैदराबाद जिला (उत्तर पश्चिम क्षेत्र)	काला या लाल रंग शरीर पर सफेद धब्बों के साथ, गिर के लक्षणों के समान कान लटके हुए, चेहरा पतला, सींग कुण्डलाकार, चैड़ी छाती, गलकम्बल विकसित, मुतान बड़ा व लटका हुआ, पूृछ लम्बी, मजबूत पैर, पसलियाँ फैली हुई, सुदृढ़ शरीर तथा अयन सामान्य व सुडौल।	1700 लीटर	4 से 4.5 वर्ष	गाय-350 सांड-550	सीधे सींग, चैड़ा माथा तथा छोटे कान,

दूध तथा भारवाही (द्विकाजी) भारतीय गाय की नस्लें

नस्ल	मूल स्थान एंव वितरण फैलाव	शारिरीक विशेषताएँ	औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्ंयात (पंजीकरण के लिए भी)	प्रथम बार ब्याने पर आयु	शरीर का वजन (किग्रा)	अन्य गुण तथा रंग
द्विकाजी नस्लें हरियाणा	रोहतक, हिसार, गुड़गाँव करनाल, दिल्ली आदि	आमतौर पर सफेद, सिर व गर्दन पर हल्का धूसर रंग, शरीर रचना सुडौल व सुदृढ़, सिर ऊँचा चेहरा लम्बा व पतला, माथा सँकरा व चपटा, आँखे बड़ी, कान छोटे व लटके हुए, सींग लम्बे व पतले और अन्दर की ओर मुड़े हुए, पतली त्वचा, मुतान छोटा व सटा हुआ, गर्दन लम्बी व पतली, पैर लम्बे, पूंछ टखनों तक लटकी हुई, अयन विकसित, दुग्ध शिराऐं भली भांति विकसित तथा पूंछ का छोर काला।	1000-1200 कि.ग्रा.	4-4.5 वर्ष	गाय-344 सांड-490	ढलवा, ढीला मुतान, मोटी पूंछ संफेद या धूसर रंग के अलावा अन्य रंग, पूंछ की छोर पर सफेद रंग के बाल, खुरों तक पूंछ।

थारपारकर	पाकिस्तान का सिन्ध प्रान्त का थारपारकर जिला तथा गुजरात में कच्छ का रण क्षेत्र	प्रायः रंग सफेद और भूरा (धूसर), मध्यम आकार, ललाट चैड़ा, नथुने चैड़े, कान लम्बें, गर्दन पतली, गलकम्बल विकसित एवं सिलवटों वाली, त्वचा पतली, कमर, छोटी मुतान, सामान्यकार व लटका हुआ, टांगे छोटी मजबूत शरीर, पूंछ पतली, अयन पूर्ण विकसित, दुग्ध शिरायें स्पष्ट तथा पूंछ का छोर काला।	1500-2000 लीटर	3.5-4.0 वर्ष	गाय-400 सांड-480	अधिक उभरा माथा, सींगों की मोटाई 10 से 12 सेमी. तथा लंबाई 12 से 23 सेमी.
कांकरेज	कच्छ का रण क्षेत्र	रंग चमकीला सलेटी भूरा, सिर भारी, चैड़ा माथा, नाक का ऊपरी भाग उठा हुआ, बड़ी आँखें, ऊपरी भाग पर सलवटें व कालापन लिए हुए, पैर के कोरोनेट काले, गर्दन पतली व लम्बी, गलकम्बल विकसित व पतला, अधर वक्ष चैड़ा व मांसल, कूबड़ बड़ा तथा बांइ और झुका हुआ, टांगे लम्बी, सीधी व मजबूत, मुतान बड़ा व लटका हुआ, पूंछ लम्बी व गुच्छेदार, त्वचा सलेटी अयन-औसतन आकार का तथा सींग मोटे, भारी व मुडे हुए।	1200-1350 कि.ग्रा	4.0 वर्ष	गाय-480 सांड-540	लाल रंग का तथा रोमन नाक। ये गाय की सबसे भारी नस्ल है।
अंगोल	आंध्र प्रदेश में अंगोल जिला	सफेद रंग, सिर गर्दन व कूबड़ पर भूरे रंग के धब्बे, चेहरा लम्बा, ललाट चैड़ा, सींग छोटे, गर्दन छोटी, गलकम्बल मोटा, अयन मध्यम आकार का तथा पूंछ लम्बी।	1250-2150 कि.ग्रा.	4.0-4.5 वर्ष	गाय-480 सांड-560	लाल रंग के धब्बे, पूंछ की ओर सफेद तथा हल्के।

बोझा ढोने हेतु गाय की उत्तम नस्लें

नस्ल	मूल स्थान एंव वितरण फैलाव	शारिरीक विशेषताएँ	औसत दुग्ध उत्पादन प्रति ब्ंयात (पंजीकरण के लिए भी)	प्रथम बार ब्याने पर आयु	शरीर का वजन
हिसार	हिसार (हरियाणा)	हरियाणा जाति की तरह, सिर अपेक्षाकृत ज्यादा चैड़ा व मजबूत, सफेद रंग, लटके बड़े कान, मध्यम आकार के सींग, औसत अयन, मजबूत	700-900 कि.ग्रा.	3.5-4.0 वर्ष	गाय-310 सांड-440
अमृत महल	मैसूर जिला (कर्नाटक)	रंग धूसर (भूरा), शरीर गठा हुआ, पीठ सीधी, गलकम्बल विकसित, चेहरा, संकरा, माथा उभरा हुआ, सींग विशेष बनावट लिए तिरछे ऊपर की ओर, मुतान-छोटा, त्वचा खींची पतली पूंछ, सुन्दर टखनों से नीचे, तथा छोटा अयन	600 कि.ग्रा.	4.5-5.0 वर्ष	गाय-310 सांड-480

डांगी	महाराष्ट्र में अहमद नगर नासिक, थाने व कोलाबा	श्रंग काला व सफेद चित्तीदार, मध्यम आकार का शरीर, त्वचा तैलीय, सिर चैड़ा, माथा उठा हुआ, चेहरा लम्बा, कान छोटे, सींग मोटे लेकिन नुकीले नहीं, गर्दन छोटी, कमर सीधी, गलका सलवटदार लटकता हुआ, टांगे छोटी व मजबूत तथा अयन छोटा व ठोस।	550 से 700 लीटर	4.5 वर्ष	गाय-300 सांड-420
मेवाती या कोसी	राजस्थान के अलवर व भरतपुर जिलों में	हरियाणा जाति की तरह का रंग व लक्षण, मध्यम आकार का शरीर तथा मुतान लटका हुआ।	1000-1200 कि.ग्रा.	4.0 वर्ष	गाय-320 सांड-460
निमाड़ी	मध्य प्रदेश का इंदौर तथा निमाड़ क्षेत्र	श्रंग प्रायः लाल, मध्यम आकार, सुडौल शरीर, शरीर पर सफेद रंग के धब्बे, माथा उभरा, सीग पीछे की ओर, सीधी पीठ, टांगे पतली तथा गलका व सिलवटदार।	915 लीटर	4.0-4.5 वर्ष	गाय-300 सांड-420
नागौरी	राजस्थान में जोधपुर	सफेद या धूसर (भूरा) शरीर लम्बा व शक्तिशाली, माथा चपटा, सींग झुके हुए व नुकीले, सीधी कमर, चैड़ी छाती, त्वचा मुलायम, गलकम्बल व मुतान छोटा तथा अयन छोटा।	900-1000	3.5-4.0 वर्ष	गाय-300
कंगायाम	तमिलनाडु का कोयम्बटूर क्षेत्र	भूरा रंग या सफेद, मध्यम आकार, माथा उभरा हुआ, शरीर हल्का, त्वचा पतली, चेहरा लम्बा, गर्दन छोटी, गलकम्बल मांसल व सिलवटदार, छोटा मुतान तथा अयन भी छोटा।	700-800 कि.ग्रा.	4.0-4.5 वर्ष	गाय-400 कि.ग्रा.
कनकथा	उत्तर प्रदेश का बुन्देल खण्ड क्षेत्र	छोटा आकार, चैड़ा माथा, छोटा सिर, लम्बे सींग (30-45 सेमी.) विकसित गलकम्बल तथा छोटा मुतान।	2 से 2.5 लीटर प्रतिदिन	4 से 5 वर्ष	गाय-280 सांड-390
मालवी	मालवा (मध्य प्रदेश)	गहरा छोटा गठीला बदन, लोहे जैसा सलेटी, रंग, छोटे कान व सींग, छोटी गर्दन, सीधी कमर, मांसल पैर व छोटा मुतान व अयन।	900-1200 कि.ग्रा.	3.5 वर्ष	
हल्लीकर	कर्नाटक में हसन तथा टुमकुर जिला	औसत आकार, सलेटी रंग, लम्बा चेहरा, अभरा माथा, लम्बे सीधे सींग तथा छोटे कान।	-	4.0-4.5 वर्ष	-
गंगातीरी	उ.प्र. का गाजीपुर तथा वाराणसी क्षेत्र	सफेद रंग, सिर चैड़ा, चेहरा लम्बा, कान मध्यम, सींग छोटे व गोल, गर्दन सीधी, पूंछ पतली व काली एवं झब्बेदार, अयन विकसित तथा थन लम्बे।	1100 कि.ग्रा., 4 से 5 लीटर प्रतिदिन	4.0-4.5 वर्ष	गाय-350 सांड-500 कि.ग्रा.

सीरी	दार्जिलिंग व सिक्किम	भारी शरीरए छोटा सिरए चपटा माथाए मुतान सटा हुआ तथा विकसित गलकम्बल।	-	4.0-4.5 वर्ष	-
कृशणावेली	कृष्णा घाटी, कृष्णा नदी के निकट काली मिट्टी वाली जगह में	बड़ा आकारए उभरा माथाए छोटे सींगए बड़े लटके हुए कानए छोटी. मोटी गर्दनए छोटे पैरए मुलायम खुरए बैल की खेती के लिए उपयुक्त सफेद रंग या सलेटी	900-920 कि.ग्रा.	4.0-4.5 वर्ष	गाय-370 सांड-500
ग्वालो	छिन्दवाड़ा म0प्र0 में महाराष्ट्र में वरधा, तथा नागपुर जिला	मध्यम आकार, उभरा माथा, लम्बा चेहरा, छोटे और मोटे सींग, सीधी कमर, लटका हुआ मुतान तथा सफेद रंग।	1000 से 1200	4.0-4.5 वर्ष	गाय-300 सांड-400

गाय की विदेशी नस्लें तथा पहचान

नस्ल	मूल स्थान	शारिरीक विशेषताएँ	औसत दुग्ध उत्पादन (प्रति ब्ंयात) (कि.)	प्रथम बार ब्याने पर	
				वजन (कि.)	आयु (माह में)
हॉलीस्टीन फ्रीजियन	हालैंड	1. शरीर-त्रिकोणाकार, भारी व बड़ा आकार 2. सिर-लम्बा तथा पतला 3. रंग-अनियमित काला व सफेद 4. वक्ष-बड़ा, बडी छाती, मुतान ढीला तथा लम्बी पूंछ 5. पैदा हुए बच्चे का वजन जन्म के समय 35 से 40 कि.ग्रा. 6. बड़ा विकसित अयन एवं पूर्ण स्पष्ट दुग्ध शिरायें।	5500 से 6000 कि.ग्रा.	520 से 550 (वसा 3 प्रतिशत)	25 से 27
ब्राउन स्विस	स्विटजरलैंड	1. शरीर बड़ा कोणाकार 2. सिर-चैड़ा एवं माथा बीच से दबा हुआ 3. रंग-कत्थई 4. त्वचा-मोटी एवं ढीली 5. शील स्वभाव तथा जर्सी की अपेक्षा अधिक गर्मी सहन करने की क्षमता 6. अयन-बड़ा व विकसित 7. दुकाजी (दूध व मांस के लिए उपयोगी)	5000	500 से 550 (वसा 4 प्रतिशत)	27 से 29
जरसी (जर्सी)	जर्सी द्वीप	1. शरीर-सुगठित, मध्यम आकार का एवं कोणाकार 2. सिर-अपेक्षाकृत हल्का 3. रंग-लाल या हल्का लाल, सफेद, धब्बों सहित/रहित 4. कमर-सीधी, पुट्ठे सममतल 5. पेट-बड़ा 6. चंचल स्वभाव 7. हॉलस्टीन की अपेक्षा इसमें ज्यादा गर्मी सहने की क्षमता 8. अयन-बड़ा एवं विकसित	4000	360 से 380 (वसा 4.5 प्रतिशत)	23 से 24

आयरषायर	स्कॉटलैंड	1. शरीर-बड़ा, सीधी कमर तथा समतल पुट्ठे 2. सिर छोटा, मोटा लम्बे मुड़े हुए सींग ऊपर की ओर 3. रंग लाल या कत्थई, या इन दोनों का मिश्रण 4. भड़कीला स्वभाव 5. विकसित अयन	4600	450 से 480 (वसा 3.5 प्रतिशत)	25 से 27

भारत में पायी जाने वाली भैंसों की प्रमुख नस्लें

भैंस की नस्लें	मूल स्थान	शारिरीक विशेषताएँ	औसत दुग्ध उत्पादन (प्रति ब्यात) (कि.)	प्रथम बार ब्याने पर		अन्य
				आयु (माह में)	वजन (कि.)	
मुर्रा	हरियाणा में रोहतक	स्याह काला रंग, त्वचा चिकनी व मुलायम तथा बाल कम, सींग छोटे तथा बहुत घुमावदार अन्दर की ओर, गर्दन व सिर हल्का, चेहरा पतला, कान छोटे, गर्दन पतली पीठ चैड़ी, टांगे भारी, छोटी व मजबूत, पूंछ लम्बी व पतली, कूल्हे चैड़े तथा बड़ा विकसित अयन व दुग्ध शिराऐं।	2000 से 2500 (वसा 7 प्रतिशत)	43.3	462	पूर्ण विकसित सांड का वजन 610 कि.ग्रा. तथा भैंस का वजन 510 कि.ग्रा.
नीली या रावी	फिरोजपुर जिला पंजाब में तथा सतलुज नदी के आसपास का क्षेत्र	रंग काला या भूरा, माथे, चेहरे, थूथन, टांग व पूंछ का निचला भाग या अंतिम छोर सफेद रंग के धब्बे, गर्दन, लम्बी, भारी व मोटी, चेहरा लम्बा, थूथन चिकनी, सींग छोटे मुड़े हुए, पूंछ लम्बी व पतली, त्वचा चिकनी व बाल तथा अयन व दुग्ध शिरायें विकसित	1800-2000 (वसा 7 प्रतिशत)	38	405	पूर्ण विकसित सांड का वजन 600 कि.ग्रा. तथा भैंस का वजन 500 कि.ग्रा. इनके लक्षण कुछ मुर्रा नस्ल की भैंसों से मिलते जुलते होते है।
भदावरी	इटावा, आगरा, झांसी ग्वालियर जनपद	तांबे जैसा रंग, मध्यम आकार का, भैंसों का पिछला हिस्सा, भारी, सिर छोटा, सींग चपटे, गर्दन पतली, धड़ विकसित, अयन छोटा परन्तु दुग्ध शिराऐं विकसित, त्रिकोणाकार तथा सिर उभरा हुआ।	1100-1300 (वसा 13 प्रतिशत)	50.7	410	नर सांड का वजन 550 कि.ग्रा. भैंस का वजन 400 कि.ग्रा.
सूरती	गुजरात के सूरत, खेड़ा, आनन्द तथा बड़ौदा जिले के आसपास	काला रंग/बादामी, मध्यम आकार, हसियाकार सींग, सिर चैड़ा, सींग लम्बे व चैड़े तथा पूंछ की छोर पर सफेद बाल।	1600 (वसा 7.5 प्रतिशत)	47 माह 36 माह	405 380	-
जाफराबादी	गुजरात का काठियावाड़ क्षेत्र	काला रंग, शरीर का आकार लम्बा मस्तक भारी तथा सींग लम्बे गर्दन के दानों और झुके हुए व ऊपर की ओर मुड़े हुए विकसित अयन ता मादा पशु का पिछला हिस्सा भारी।	1400 (वसा 8 प्रतिशत)	47 माह	405	यह पशु घी उत्पादन के लिए उपयोगी।

मेहसाना	गुजरात का मेहसाना जिला तथा महाराष्ट्र का पूना जिला	श्रंग काला या बादामी, आकार-प्रकार मुर्रा व सूरती से मिलता जुलता, मध्यम आकार, चेहरे, टांग तथा पूंछ के सिरे पर सफेद रंग, सिर भारी, माथा चैड़ा, चेहरा लम्बा, सींग लम्बे व मुड़ हुए, वक्ष चैड़ा, गर्दन लम्बी व पतली तथा अयन विकसित	1500-1800 लीटर (वसा 7 प्रतिशत)	40 माह	420	इस नस्ल को मुर्रा व सूरती के क्रास से बनाया गया।
नागपुरी	महाराष्ट्र का नागपुर, अमरावती, अकोला, जिले	रंग काला, हल्का शरीर , टांगों पर सफेद धब्बे, सिर लम्बा, पतला, सींग लम्बे, चपटे व पीछे की ओर मुड़े हुए, गर्दन लम्बी, पूंछ छोटी तथा अयन छोटा।	1000-1200 ली. (वसा 7 प्रतिशत)	48 माह	400	-

देशी तथा विदेशी गायों की नस्लों में अन्तर

विशेषताऐं	स्वदेशी नस्लें (जेबू)	विदेशी नस्लें (टोरस)
कूबड़ (हम्प)	उपस्थित	अनुपस्थित
रंग	लाल रंग के प्रकार, कत्थई, सफेद, काला व भूरा	कत्थई-काला सफेद धब्बों के साथ, लाल
शरीर का आकार	छोटा	अपेक्षाकृत बड़ा
शरीर का भार	कम	अपेक्षाकृत ज्यादा
कमर	धनुषाकार व झुकी हुई	सीधी
कोणाकार	कम	त्रिकोणाकार शरीर
गलकम्बल	ज्यादा विकसित	अपेक्षाकृत कम विकसित
पशु की लम्बाई	कम	ज्यादा
पशु की ऊँचाई	कम	ज्यादा
नाभिदण्ड	प्रायः लटका हुआ	कम विकसित
चारा खाने की मात्रा/पशु	कम	ज्यादा
पानी की आवश्यकता	कम	ज्यादा
छाया की जरूरत	होती है	अधिक होती है।
गर्मी सहन करने की क्षमता	ज्यादा	कम
बीमारी सहन करने की क्षमता	अधिक	कम
बच्चों को माता से अलग करके पालना (वीनिंग)	आसान	अधिक आसान
प्रबंधन	अधिक आसान	कठिन
परिपक्वता उम्र (वयस्कता)	24 से 36 माह	15 से 18 माह
प्रथम बार बच्चा देने की उम्र	24 से 36 माह	2 से 2-1/2 वर्ष
दो ब्यांत का अन्तर	18 से 24 माह	13 से 14 माह
सुखाई काल (ड्राई पिरियड)	60 दिन से ज्यादा	60 दिन से कम
वातावरण अनुरूपता	ज्यादा	कम
दूध उत्पादन मात्रा	कम	ज्यादा
दूध में वसा	अधिक (4 से 5 प्रतिशत)	कम (3 से 4 प्रतिशत)
- ठोस पदार्थ (टी.एस)	ज्यादा (13.4 प्रतिशत)	कम (3 से 4 प्रतिशत)
- वसा रहित ठोस पदार्थ	ज्यादा (8.6 से 8.8 प्रतिशत)	कम (8.5 से 8.7 प्रतिशत)
- पानी की मात्रा	कम (86 से 84.5 प्रतिशत)	ज्यादा (87 से 87.7 प्रतिशत)

तेलंगाना राज्य की बकरियों की बाह्या व् आनुवंशिक रूपरेखा

नरेश वर्मा

भाकृअनुप -राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल– 132001 (हरियाणा)

आंध्र प्रदेश उन प्रदेशों में से एक हैं जहां पशुधन के अच्छे व् विश्व प्रसिद्ध संसाधन हैं और यह पशुपालन गतिविधियों में सबसे उन्नत राज्यों में से एक है। इन में से कुछ संसाधन विभाजन के बाद बने तेलंगाना राज्य के अंतर्गत आ गए । मवेशी की प्रसिद्ध ओंगोल नस्ल, मुर्गी की असील नस्ल, भेड़ की नेल्लोर नस्ल इन संसाधनों के मुख्यतः उदाहरन है। वर्तमान में आंध्र प्रदेश पोल्ट्री (1005.80 लाख) और भेड़ आबादी (210.15 लाख) में पहले स्थान पर, भैंस आबादी (107.68 लाख) में दूसरे, बकरी आबादी में सातवें (64.27 लाख), मवेशियों (94.24 लाख) और सुअर आबादी (5.49 लाख) में आठवें स्थान पर हैं। राज्य में बकरियों की आबादी अच्छी है जो कई छोटी -२ उप आबादी में बटी हुई हैं। बकरियों की इतनी आबादी होने पर भी राष्ट्रीय स्तर पर इस राज्य से बकरी की कोई भीनस्ल पंजीकृत नहीं हैं । यह खोज का एक मुद्दा बन जाता है जो मौजूदा बकरियों के बाह्य गुण निर्धारण करते हुए समान गुणों वाले समूह का अध्ययन करना तथा देश की अन्य पंजीकृत नस्लों से इसकी भिन्नता को स्थापित करना है। इसी उदेश्य से प्रजनन क्षेत्र में व्यवस्थित सर्वेक्षण करके और फेनोटाइपिक, बॉयोमीट्रिक लक्षणों और प्रबंधन प्रथाओं पर सुचना उत्पन्नकर तेलंगाना बकरियों पर आंकड़े एकत्रित किये गए। अध्ययन के लिए नगर कुरनूल, मेडक, महबूबनगर, आदिलाबाद, जयशंकर भूपपाल, वारंगल, कोमराम भीम जिलेकी बकरियों को शामिल किया गया। तेलंगाना राज्य की बकरियां जिन्हें स्थानीय रूप से महबूबनगरी या पलामूर बोट के नाम से भी जाना जाता है मुख्य रूप से पिछड़े समुदायों, छोटे किसानों व भूमिहीन किसानों द्वारा पाली जाती है। महबूबनगर व् इसके आस पास के क्षेत्र मे बकरियों की संख्या अधिक होने के कारण ही इन्हें महबूबनगरी के नाम से जाना जाता है

तेलंगाना राज्य का मानचित्र

एक अलग समूह की बकरियों के मिलने की आशा के साथ नल्लामाला जंगल का सर्वेक्षण भी किया गया। नल्लामाला जंगल दक्षिण भारत के उन जंगलों में से एक है, जहां इंसानों का दखल नहीं है। यह नल्लामाला पहाड़ में स्थित है, जो कि पूर्वी घाट का हिस्सा है। यह जंगल कुर्नूल सहित गुंटूर, कड़प्पा, महबूबनगर और प्रकाशम में फैला हुआ है। वहां भी हमें उसी प्रकार की बकरियां प्राप्त हुई जो तेलंगाना के अन्य जिलों में थी। अध्यन किये बाह्या लक्षणों में त्वचा

महबूब नगर क्षेत्र में(महबूबनगरी) बकरी समूहनल्लामल्ला जंगल में चरती मिश्रित रंग की बकरियां

का रंग (कोट कलर), सिर व चेहरे की विशेषताएं, कान और सींग का आकार आदि शामिल हैं, जबकि मापे गये बायोमेट्रिक लक्षणों में शरीर की ऊंचाई, लंबाई, छाती की चौड़ाई, पंच परिधि, चेहरे की लंबाई, सींग की लंबाई, कान की लंबाई, पूंछ की लंबाई शामिल है।

तेलंगाना राज्य के बकरे मध्यम आकार के, विभिन्न कोट रंग यानिसफेद, काले, भूरे, चित्तीदार, व् मिश्रित रंग के होते हैं अधिकांश जानवरों के सिर सीधे, माथाथोड़ा उत्तल, मध्यम आकार के लटकतेकान, सीधे या पीछे की ओर झुके हुए नुकीले सींग होते हैं। वॉटल्स (गल लटकन)और दाढ़ी दोनों लिंगों के कुछ जानवरों में मौजूद होतीहैं। क्योकि ये बकरियां मुख्यतः मांस के लिए पालीजाती है इनके थन व् लियोटी अधिक विकसित नहीं होती तथा दूध की मात्र भी 300 से 500 ग्राम प्रतिदिन रहती हैं। मात्र कम होने के कारण ये दूध मेमनों के लिए छोड़ दिया जाता हैं।

तेलंगाना बकरियों में रंग व् शारीरिक विविधता

काले रंग की बकरियों को भिन्न समझते हुए इन्हें एक अलग समूह में रखा गया तथा गैर काले व् मिश्रितरंग की बकरियों को दुसरे समूह में।गैर काले व् मिश्रितरंग के नरव्यस्क जानवरों कीऊंचाई, लंबाई, छाती परिधि, पंच परिधि चेहरे की लंबाई, सींग की लंबाई, कान की लंबाई, पूंछ की लंबाई का औसत मान(सेमी) सारिणी 1 में दर्शाया गया है। मिश्रित रंग के जानवरों में बकरों की ऊंचाई,कान की लंबाई तथा शरीर का वज़न मादा की अपेक्षा अधिक पाया गया। काले

सारिणी 1. तेलंगाना बकरियों का औसत माप व् वज़न

गुण	मिश्रित रंग		काला रंग	
	व्यस्क मादा (102)	व्यस्क नर (23)	व्यस्क मादा (36)	व्यस्क नर (11)
ऊंचाई	70.53±0.52	73.48±1.09	72.03±0.77	72.18±1.37
लम्बाई	67.22±0.51	67.13±1.19	68.03±0.77	65.27±1.13
छाती परिधि	80.45±0.60	80.30±1.35	81.31±0.69	78.73±1.73
तोंद परिधि	81.45±0.71	79.26±1.50	83.72±1.05	79.64±1.78
चेहरे की लंबाई	18.44±0.20	18.35±0.41	18.17±0.26	16.82±0.62
सींग की लंबाई	13.88±0.42	13.96±1.20	13.36±0.74	12.56±1.14
कान की लंबाई	11.34±0.58	13.83±0.36	12.42±0.83	14.36±0.41
पूंछ की लंबाई	13.37±0.23	13.35±0.42	13.97±0.37	14.09±0.46
वज़न	37.69±0.68	38.70±1.91	40.42±1.02	37.27±2.52

काले रंग के व्यस्क जानवरों में मादा का औसत माप नर की अपेक्षा अधिकतरमें(लंबाई, छाती परिधि, तोंदपरिधि, चेहरे की लंबाई, सींग की लंबाई, कान की लंबाई, पूंछ की लंबाई, वज़न) ज्यादा पाया गया।

काले रंग की बकरियां

तेलंगाना राज्य में बकरियों को अर्ध-व्यापक प्रबंधन के तहत रखा जाता है उन्हें दिन के समय चराने के लिए जंगल मेंभेजते हैं। जानवर शाम को वापस आते हैं और रात में घर पर हीरहते हैं। बकरियों को या तो खुले स्थान पर या अस्थायी रूप से बने घरों में पानी व् बिजली की उचित व्यवस्था के बिना हीरखा जाता है ।केवल गर्भवती बकरियों को ही अतिरिक्त राशन दिया जाता हैं।इन बकरियों में जल्दी परिपक्वता होती है तथाप्रजनन प्राकृतिक तरीकेसे कराया जाता है। पहली ब्यांत में अक्सर एक ही बच्चा देती है लेकिन आगामीब्यांतों में दो या दो से अधिक बच्चों की प्राप्ति हो सकती हैं। एक ही ब्यांत के दोरान तीन बच्चों का जन्म भी कुछ बकरियोंमें देखे गए।

बकरियों का विभिन्न प्रकार का आवासीय प्रबंधन

दसरी व् अन्य (2018) के अनुसार इनबकरों में परिपक्वता की आयु 360-540 दिनों के बीच जबकि मादा बकरियों में 320-380 दिनों के बीच थी। पहले ब्यांत पर उम्र 520-600 दिनों के बीच थी, जबकि दो ब्यांत के बीच का अंतर180-280 दिनों के बीच था। ये बकरियां अपने जीवनकाल में7-11 तक बच्चे दे सकती है ।

इस अध्यन से पता चला की तेलंगाना राज्यकी बकरियां बहुत सारे फेनोटाइपिक विषमता के साथ एक ही आबादी का गठन करती है।आनुवंशिकअध्यन के लिएकोट के रंग के आधार पर गठित तेलंगाना बकरियों के दो समूह (काला व् गैर काला) अलग-अलग नहीं थेइस तथ्य की पुष्टि भीमाइक्रोसेत्तेलाइटआधारितआनुवंशिक अध्यन द्वारा की जा चुकी हैं (वर्मा व् अन्य , 2018)। तेलंगाना बकरियों में पाए गए अन्य नस्लों के बाह्मगुणोंका मिश्रण प्रजनन के लिए इस्तेमाल हुएभिन्न - भिन्न बकरोंकेकारण हैं। समान गुणों वाले बकरियों के समूह को विकसित करने के लिए प्रजननव् प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना होगा ताकि पंजीकरण के लिए इस राज्य से एक नस्ल उपलब्ध कराईजा सके।

संदर्भ

दासरी ए, क्न्नथ एस, क्न्दुरी ए एवंदासरी एस(2018) इन्टरनैशनल जर्नल आफ लाइवस्टाक रिसर्च 8(6), 322-327.

वर्मा एन के शर्मा रेखा अग्रवाल आर ए के शर्मा हिमानी एवं दांगी पी एस (2018b). बुक आफ अब्स्त्रक्ट, प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस ऑन जेनेटिक्स फॉर सस्टेनेबल फ़ूड, हेल्थ, व् न्यूट्रीशीयन सिकुरिटी, दिसम्बर14-16, 2018, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, न्यू दिल्ली, पेज148.

भारतीय परम्परा में गोवंश का महत्व

दीपक कुमार पाण्डेय एवं उमेश कुमार शुक्ला

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना-मध्य प्रदेश

1. ऋषभ (नंदी) :

बैल प्राणी के रूप में अवतरित देव हैं। ये गोवंश के अन्तर्गत आने वाले कर्मठ महापुरुष हैं। सनातन से ही ये प्राय: हल अथवा बैलगाड़ी को खींचकर मानव के जीवन को सरल और सुगम बनाया है। बैल ने मानवों की सेवा के लिए सदियों से कठिन परिश्रम करते चले आ रहे हैं। ये मानव सभ्यता के आद्य चालक भी हैं। मानव को मानव बनाने के लिए इन्होने कड़ी मेहनत की है।

बैल गोवंश का नर जीव है। भारतीय संस्कृति में बैल अथवा नंदी को अगाध सम्मान मिला हुआ है। बैल को ये सम्मान गाय के पुत्र होने ने नाते नहीं मिला है। बैल अथवा नंदी को ये सम्मान उसकी कर्मठता और शारीरिक शक्ति के कारण मिला हुआ है। मानव दैनिक गतिविधियों में जो कार्य कर पाने में अक्षम है। उस कार्य को बैल ने अपने जिम्मे ले लिया है। मानव की शारीरिक शक्ति सीमित है।उसके पास इतनी शक्ति नहीं है कि वह भारी समान का परिवहन कर सके। बड़े-बड़े खेतों की जुताई कर सके। बैल ने मानव के इन कार्यों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी ले ली है। जुताई के कार्य को सम्पन्न करने के लिए ये हलधारण करके किसान भी बन जाते हैं। कर्मठ किसान बनकर बैल पूरे खेत को आसानी से जोत देता है।

नंदी

जब किसानों को अपने कृषि सामग्री तथा अन्य उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना होता है तब वह बैल को बैलगाड़ी का रूप दे देता है। मानव को किसी अन्य स्थान पर जाना हो तब भी बैल मानव का वाहन बनकर उसे गंतव्य स्थान पर पहुंचा देता है। इस दौरान वह झुंड में भी मानवों को ऐसी सेवाएँ प्रदान करता है। बैल वास्तव में किसानों एवं ग्रामीणों का सशक्त साथी बन चुका है।

सदियों से मानव ने बैल से भरपूर लाभ लिया और स्वयं को समृद्ध बनाया। किसानों के लिए तो बैल किसी वरदान से कम नहीं रहा। क्योंकि उनके लिए बैल निःशुल्क सेवाप्रदायक रहा है। सेवाशुल्क के रूप में बैल ने मानवों से केवल भोजन लिया। भोजन के रूप में बैल उस पदार्थ को ग्रहण किया जो मानव के लिए अनुपयोगी थे। भूषा एवं हरा चारा खाकर भी गोवंश मानव के प्रति कृतघ्नता व्यक्त किया और भी विशेष सेवायें देता रहा।अपने त्याज्य पदार्थ के रूप में गोबर और मूत्र प्रदान करके बैल मानवों को स्वावलंबी बनाने का भरसक प्रयास किया। दूसरे शब्दों में बैल एक सेवादाता होने के साथ-साथ मानवों का अभिभावक बनाता चला गया। आज भी गोवंश की नर पीढ़ी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में निरंतर सेवाएँ दे रही हैं।

1. आज भी किसान बैलगाड़ी द्वारा सामग्री परिवहन का कार्य लेते हैं।
2. बैल -ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित करके विद्युत जनन किया जाता है। इस ऊर्जा का इस्तेमाल चारा कटाई ,तेल मील तथा दूसरे छोटे-मोटे कार्य लिए जा रहे हैं।
3. बैल सनातन से ही ट्रैक्टर बनकर ग्रामीणजनों के खेतों की जुताई करता रहा है।इसे पर्यावरण हितैषी जैविक ट्रैक्टर भी कहा जा सकता है।
4. गोवंश के रूप में यह गायों के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि बिना नर गोवंश के नस्लों का सुधार संभव नहीं है।

2. गौमाता

भारतीय संस्कृति में गाय को माता का दर्जा दिया गया है। गाय को प्रायः लोग गऊ अथवा गौमाता के नाम से संबोधित करते हैं। भारतीयों द्वारा गोमाता को मातृतुल्य मानना केवल आस्था का प्रतीक नहीं है। इसके पीछे छिपा है वो तथ्य जो हमें गोवंश की मादाओं अर्थात गाय को माता मानने पर विवश कर देता है ।

भारतवासी संस्कृति के मामले में बहुत धनी हैं। भारतवासी जिस स्थान,जैविक द्रव्य अथवा जल निकाय अथवा द्रव्य को सम्मान देना चाहते है उसे ईश्वर तुल्य मानते हैं। ईश्वरतुल्य मानने की आस्था परंपरागत रूप से तथा शास्त्रमत से भारतीयों के हृदय में छाई हुई है। यहाँ की परंपरागत गतिविधियाँ अंधविश्वास पर नहीं अपितु विज्ञान तथा तर्क पर आधारित होती हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय संस्कृति में गंगा नदी को भी माता का दर्जा दिया गया है। तुलसी जैसे पौधे में ईश्वरीय गुण होने की दृष्टि से माता मान लिया गया है। इन सब से परे बहुपयोगी पशु गाय जो गोवंश की मादा है।उसे माता कहने के पीछे कई कारण थे । प्राचीन काल में अधिकांश घरों में गाय को पाला जाता था। इसलिए गोपालकों को अनुभव से गाय के दैवीय गुणों का अथाह ज्ञान प्राप्त हुआ था। परंपरागत रूप हमने अपने पूर्वजों के अनुभवों जाना तथा उसे अपने जीवन में समाहित भी किया।

धार्मिक दृष्टि से भी गाय अत्यंत पवित्र और पूजनीय स्वीकार की गई है। हिन्दू धर्मावलम्बी यह भी मानते हैं कि है गाय की पूजा-अर्चना करने से सभी देवी-देवतागण प्रसन्न हो जाते हैं। वेद-पुराणों ने साफ-साफ स्पष्ट किया है कि गाय के अंदर सभी देवी-देवताओं का वास है। गाय के बारे में कुछ रोचक तथ्य निम्नलिखित हैं।

1. गोदुग्ध को विज्ञान ने सम्पूर्ण भोजन माना है। इसमें उन सभी तत्वों की उपलब्धता है जो इक मानव के लिए लाभप्रद हैं।
2. गाय की रीढ़ की हड्डी में सूर्यनाड़ी तथा केतुनाड़ी होती है। ये नाड़ियाँ सूर्य के प्रकाश में स्वर्णक्षार तत्व क सृजन करती हैं। यह तत्व गाय के दूध में पीलापन भी लाता है।
3. गाय का दूध पौष्टिक एवं सुपाच्य होता है। इसमें रोग दूर करने के कई गुण होते हैं। इसे रोगी भी पीकर आसानी से पचा लेता है।
4. गाय के दूध में पाये जाने वाले विशेष तत्व जैसे लैक्टोस, वसा, प्रोटीन, तथा अन्य तत्वों की प्रतिशतता महिलाओं के दुग्ध के समान ही होता है।
5. गोमाता हमें आशीर्वाद के रूप में गोमूत्र और गोबर प्रदान करती है। गोबर से हम वैभवशाली जबकि गोमूत्र से हम निरोगी रह सकते हैं।

चरागाह में विचरती हुई गौवें

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि निश्चित रूप से गाय माता के समतुल्य ही है। गोमाता जननी के समान ही हमारा ध्यान रखती है। गोमाता इतनी महान है कि वह अपने बच्चों में भेद नहीं करती। वह मानव रूपी अपने सभी बच्चों को एकसमान भाव से प्यार लुटाती है। इसीलिए महान दार्शनिक एवं बुद्धिजीवी लोग गाय को भारतीय संस्कृति का स्तम्भ मानते रहे हैं। ये बात भी स्वीकार करने योग्य है कि यदि भारतीय गाय जननी के समान ही भोजन प्रदान करती है। पोषकता एवं आरोग्य भी प्रदान करती है। नियमित रूप से लाभदायक उत्पाद गोबर और गोमूत्र प्रदान करती है। इसलिए उसे गोमाता कहने में संकोच नहीं करना चाहिए।

भैंस पालन: किसानों की आय दोगुनी करने का उत्तम विकल्प

एस.पी. सिंह[1], चेतना गंगवार[2], डी. एन. सिंह[1] एवं एस.डी.खर्चे[2]

कालेज ऑफ वेटेरीनरी साइंस एण्ड एनीमल हसबैंडरी, दुवासू, मथुरा-281001

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

भैंस का उल्लेख अनेक दंत परिकथाओं तथा प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। प्राचीन काल में अनेक ऐसे लोकगीत गाए जाते थे जिनमें भैंस के प्रति प्यार तथा कृतज्ञता का उल्लेख है। भैंसों को पालतू बनाए जाने का उल्लेख तकरीबन 4000 वर्ष पूर्व सबसे पहले सिन्धु घाटी की सभ्यता में है। सिन्धु घाटी की खुदाई में ऐसे सिक्के एवं मोहरें मिली थी जिनपर भैंस का चिन्ह अंकित है। उस समय भैंसों का उपयोग दूध एवं माँस के लिए होता था। पंजाब प्रान्त में भैंस को परिवार के सुख एवं समृद्धि का प्रतीक माना जाता है यहॉ पर भैंस को मझ कहा जाता है।

भैंसे मुख्यतः एशिया उपमहाद्वीप में (96.6 प्रतिशत) पायी जाती है। ब्राजील, बुल्गारिया, इटली, रोमानिया, ऑस्ट्रेलिया तथा युगोस्लाविया में भी पायी जाती है। ऑस्ट्रेलिया में भैंसों को फिरल कहा जाता है।

भारत में भैंस पालन किसानों के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि ये सूखे और मोटे चारे को अधिक अच्छी तरह पचाकर ज्यादा दूध दे सकती है। भैंस का मांस भी उपयोगी होता है। भैंस गर्म जलवायु को भली-भॉति सह जाती है इसी कारण भैंसों का गर्म देशों में अधिकांशतः डेयरी कार्यो में प्रयोग होता है। भैंसों की लम्बी उम्र, रोग प्रतिरोधन क्षमता और बदलते जलवायु में अपने आप को सुरक्षित रखने की क्षमता अधिक होती है। भैंस के दूध में अधिक वसा, विटामिन-ए, कैल्शियम, आयरन और फास्फोरस तथा कम कोलेस्ट्राल होता है जिसके कारण भैंस का दूध अधिक फायदेमंद होता है।

भैंस देश की अर्थव्यवस्था में और किसानों की आय बढ़ाने में निम्नलिखित तरीके से योगदान देती है।

1. पशुधन/भैंस के संसाधन
2. भैंस से प्राप्त उत्पाद और उपोपाद
   - अ. दुग्ध उत्पादन एवं दूध द्वारा बनाये जाने वाले व्यंजन
   - ब. भैंस से माँस उत्पादन एवं इसके द्वारा बनाये जाने वाले व्यंजन
   - स. भैंस की खाल से चमड़ा उत्पादन एवं उनके शरीर के अन्य अंगों का उपयोग
   - द. गोबर व अन्य वस्तुऐं प्राप्त होती है।
3. भैंस का किसानों की अर्थव्यवस्था में योगदान

1. **भैंस के संसाधन:** भैंस किसानों के अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतवर्ष में लगभग 20.5 मिलियन लोगों का जीवनयापन पशुधन पर निर्भर करता है। पशुधन से छोटे किसानों का लगभग 16 प्रतिशत और मझोले किसानों को 14 प्रतिशत आय प्राप्त होती है। पशुधन दो तिहाई गॉव की आबादी के जीवन यापन का सहारा बनती है। यह भारत वर्ष में 8.8 प्रतिशत लोगों को रोजगार प्रदान करता है। पशुधन 4.11 प्रतिशत जी.डी.पी. तथा 25.60 प्रतिशत कृषि के जी.डी.पी. में योगदान करता है। भारत वर्ष में कुल पशुधन 512.30 मिलयन है जिसमें भैंस 105.3 मिलयन है जो कि भारतीय किसानों के आमदनी का नायाब स्त्रोत है।

भैंस से प्राप्त उत्पादः

1. **भैंस का दूधः** दूध एक सम्पूर्ण आहार है तथा मानव पोषण में इसका योगदान अद्वितीय है इसमें कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम, फास्फोरस विटामिन 'ए' और वसा अधिक मात्रा में तथा कोलेस्ट्राल कम मात्रा में पायी जाती है। यह हड्डियों, दॉत, वजन बढ़ाने तथा कार्डियों वैस्कुलर हेल्थ में लाभदायक होता है।

भैंस का दूध लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि परऑक्सीडेज क्रिया गाय के दूध से 2-4 गुना अधिक होती है। इ-कैरोटिन के रेटिनाल में पूरी तरह से बदल जाने के कारण यह सफेद रंग का दिखता है। एशिया में 40% दूध भैंसों से प्राप्त होता है। भारत में कुल दुग्ध उत्पादन का 44% भाग गाय से और 55 प्रतिशत भाग भैंस से प्राप्त होता है।

दूध की रासायनिक संरचना - सभी स्तरधारियों में दूध की रासायनिक संरचना भिन्न प्रकार की होती है। इसमें वसा, प्रोटीन, लैक्टोस तथा खनिज लवण का अनुपात विभिन्न जातियों में अलग-अलग होता है। विभिन्न पशुओं के दूध की रासायनिक संरचना नीचे सारणी में दर्शायी गयी है।

सारणी 1- विभिन्न पशुओं के दूध की रासायनिक संरचना

जाति	पानी	वसा	प्रोटीन	लैक्टोज	खनिज लवण	टी.एस.	एस.एन. एफ.
भैंस	82.10	8.0	4.20	9.90	0.80	17-90	9-90
देशी गाय	86.40	4.70	3-30	4-90	0.68	13-60	8-70
विदेशी गाय	8.0	3.70	3-20	4-80	0.72	12-60	8-70
बकरी	88.20	4.00	3-60	0-78	0.78		
भेड़	79.50	8.50	6-70	4-30	0.78	20-5	12-0

2. **वसा:** भैंस के दूध में अपेक्षाकृत अधिक वसा होती है एवं वसा कणों का आकार बड़ा होता है। इसमें वसा 6.8% होती है, इसकी मात्रा चारे की गुणवत्ता पर भी निर्भर करती है। कपास की खली से वसा की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

सारणी 2- भैंस के दूध में पाये जाने वाले वसा और वसीय अम्ल

वसा और वसीय अम्ल	
न्यूट्रीऐंट	मात्रा
फैट	6.89 g
सेचुरेटेड फैटी एसिड	4.597 g
मोनोअनसेचुरेटड फैटी एसिड	1.787 g
पोलीअनसेचुरेटड फैटी एसिड	0.146 g
कोलेस्ट्रॉल	1900 mg

कोलेस्ट्रॉल - अपने कोलेस्ट्रॉल पर नियत्रंण के लिए गाय का दूध सही चुनाव नहीं है। अधिक कोलेस्ट्रॉल से आपको हार्ट अटैक हाइपरटेंशन और स्ट्रोक हो सकता है। भैंस का दूध में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है अतः हदयरोग व डायबिटीज के शिकार लोगों को भैंस का दूध ही उपर्युक्त है।

3. **प्रोटीन-** भैंस के दूध में प्रोटीन की मात्रा 4 से 4.5% प्रतिशत तक होती है। भैंस के दूध में आर्गमीन, लाईसीन, हिस्टडीन तथा मिथयोनीन अधिक व ल्यूसीन तथा वेलीन कम होती है। भैंस के दूध में ऑक्सीडेज और क्षारीय फॉस्फेट्स अधिक मात्रा में पाये जाते है।

सारणी 3- भैंस के दूध में पाये जाने वाले प्रोटीन्स और अमीनों अम्ल

प्रोटीन्स और अमीनो एसिड	
न्यूट्रीऐंट	**मात्रा**
प्रोटीन	3.75 g
एललीन	0.132 g
आर्जीनाइन	0.114 g
एस्पार्टिक एसिड	0.309 g
सिस्टिन	0.048 g
ग्लूटामिक एसिड	0.477 g
ग्लाइसिन	0.080 g
हिस्टीडीन	0.078 g
आइसोल्यूसिन	0.203 g
ल्यूसिन	0.366 g
लाइसिन	0.280 g
मिथोइवोनिन	0.097 g
फिनाइलऐलिनिन	0.162 g
प्रोटोनील	0.364 g
सेरीन	0.227 g
सेरोनोलिन	0.182 g
ट्रिप्टोपेन	0.053 g
टाइरोसिन	0.183 g
वैलीन	0.219 g

4. **विटामिन्स -** भैंस के दूध में विटामिन 'ए' और 'सी' की मात्रा गाय के दूध से अधिक होती है। भैंस में यह मात्रा क्रमशः 0.69 मि0 ग्रा0/ली0 और 19.5 से 39.5 मि0 ग्रा0/ली0 जबकि गाय के दूध में यह मात्रा 0.48 मि0ग्रा0/ली0 और 7.8 मि0 ग्रा0/ली0 पायी जाती है।

सारणी 4 - भैंस के दूध में पाये जाने वाले विटामिन्स और उनकी मात्रा

विटामिन्स	
विटामिन्स	**मात्रा**
फोलेट	6.00 mcg
फोलिक एसिड	0.00 mcg
नियासिन	0.091 mg
पैन्थोसिनिक एसिड	0.192 mg
राइबोफ्लेविन	0.135 mg
थाइमिन	0.052 mg
विटामिन -ए	178.00 IU
विटामिन -बी. 12	0.36 mcg
विटामिन -बी. 6	0.023 mg
विटामिन -सी.	2.3 mg

5. **कार्बोहाइड्रेडः** लैक्ट्रोज मुख्य कार्बोहाइडेªट के रूप में भैंस के दूध में पाया जाता है। यह दूध के अवशोषण को भी बढ़ाता है। यह दूध से मिलने वाली न्यूट्रीएंट ऊर्जा का एक तिहाई भाग प्रस्तुत करता है।

कार्बोहाइड्रेट	5.18 ग्रा0
फाइबर	0.0 ग्रा0

6. **खनिज लवण-** दूध में खनिज लवण का विशेष महत्व होता है। भैंस के दूध के जमने में रेनिन और कैल्शियम का विशेष महत्व होता है।

सारणी 5 - भैंस के दूध में पाये जाने वाले खनिज लवण और उनकी मात्राऐं

खनिज लवण	
न्यूट्रीऐंट	**मात्रा**
कैल्शियम	169.00 mg
कॉपर	0.046 mg
आयरन	0.12 mg
मैग्नीशियम	31.00 mg
मैग्नीज	0.018 mg
फास्फोरस	117.00 mg
पौटेशियम	178.00 mg
सोडियम	52.00 mg
जिंक	0ण्22 mg

भैंस के दूध के भौतिक लक्षण:

भैंस के दूध में कुल ठोस 30 प्रतिशत से अधिक तथा ब्यूटाइरिक एसिड, कैल्शियम तथा विटामिन 'ई.' अधिक मात्रा में पाये जाते है।

श्यानता	2.04
पृष्ठ तनाव	55.4 (डाइन/सेमी2)
जमाब बिन्दु	0.56 फारेनहाइट
वसा कण का आकार	5.01 होता है।

भैंस के दुध में ऊष्मा धारण करने की क्षमता कम तथा ऊष्मा संचरण की क्षमता अधिक होती है अतः लैक्टोज की मात्रा अधिक होती है। इसके द्वारा बनाये हुए व्यंजनों को अधिक समय तक रखा जा सकता है।

भैंस के दूध से बनाए जाने वाले व्यंजन

दूध उत्पादों के लिए भैंस का दूध उत्तम माना जाता है। जैसे कि खोआ, बर्फी, हलवा, रसगुल्ला गुलाब जामुन, लस्सी, घी पनीर, मक्खन व दही भैंस के दूध से अच्छे बनाये जाते हैं। बच्चों को भैंस का दूध पिलाने के हिसाब से कम उपयोगी मानते है क्योंकि इसमें सल्फर की मात्रा कम होती है तथा बच्चों में दिमाग के विकास के लिए गाय के दूध में उचित मात्रा में सल्फर पाया जाता है।

दूध में मिलावट का पता लगाने के लिए नामर तथा इया (1962) ने हंसा विधि परीक्षण विकसित किया। पंतनगर विश्वविद्यालय में दूध में यूरिया के मिलावट का पता करने के लिए स्ट्रिम का विकास किया गया है। दूध में मिलावट का पता करने को रोकने के लिए "प्रीवेन्सन आफ अडल्ट्रेशन एक्ट 1955" के अन्तर्गत मानक बनाये गये है जिसमें समय-समय पर संशोधन किया जा रहा है।

भैंस से स्वच्छ दूध उत्पादन के समय काफी सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि इनमें जीवाणु (वैक्टीरिया) एवं विषाणु (वायरस) की वृद्धि तेजी से होती है तथा दूध के खराब होने का खतरा बना रहता है।

दूध को संरक्षित रखने के लिए पाश्चुरीकरण की विधि अपनायी जाती है जो कि मंहगी है। दूध को उबालकर भी संरक्षित किया जा सकता है जो कि उपयोगी और सस्ती है। उबालने के लिए लोहे या पीतल का बर्तन तथा दूध को रखने के लिए स्टैनलैस स्टील का बर्तन अधिक उपर्युक्त होता है।

भारत वर्ष में भैंस के दूध का कुल उत्पादन का लगभग 55% हैं। भारतीय डेयरी, भैंस के दूध पर ही निर्भर करती है। डेयरी में उपयोग आने वाला 95% दूध भैंस का ही होता है।

माँस का उत्पादन

भैंस के माँस को बफैलो बीफ, काराबीफ, बफन आदि नामों से जाना जाता है। भैंस के बछ़डों से प्राप्त माँस को बीफ-ब्रायलर या बर्फेलों बील कहा जाता है।

भैंस का माँस भोजन के रूप में महत्वपूर्ण आहार का काम करता है जो कि गुणकारी, स्वादिष्ट और सुपाच्य होता है और प्रोटीन खनिज लवण व विटामिन की पूर्ति करता है। विश्व बाजार में माँस की पूर्ति गाय, भैंस, सुअर, मुर्गी तथा मछली से होती है। विश्व बाजार में सुअर के बाद गाय और भैंस के माँस का उत्पादन दूसरे नम्बर पर आता है। भारतवर्ष में गाय का वध धार्मिक कारणों से प्रतिबन्धित है तथा भैंस का माँस उत्तम माना जाता है। हमारे देश में विभिन्न जानवरों से प्राप्त माँस का अनुपात भैंस-20%, भेड़ व बकरी-54%, मुर्गी-13% तथा सुअर 7% है। माँस प्राप्ति का अनुपात भैंस के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। सामान्यतः भैंस का वजन 1 किग्रा0 प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ सकता है तथा आहार का माँस में परिवर्तन 5.5% से 6.5: हो सकता है।

भैंस के माँस के गुण

भैंस के माँस की ड्रेसिंग 55-66% होती है जबकि खाली पेट यह 65-66% होती है। भैंस के माँस में गाय के माँस की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के साथ ही लाइसिन की मात्रा सर्वाधिक होती है तथा वसा की मात्रा कम पायी जाती है। भैंस के माँस में सफेद वसा पायी जाती है।

सारणी 6 - भैंस के माँस का विश्लेषण

ड्रेसिंग प्रतिशत	60-65%
रिब आई एरिया	68.4%
परिपक्वता मानक	1.65
म्रबिलिंग मानक अंक	2.30
गुण दर्जा	11.5
नमी प्रतिशत	74.42
प्रोटीन प्रतिशत	20.30
वसा प्रतिशत	1.60
खनिज लवण प्रतिशत	11
कुल वर्णक (टोटल पिगमेंट)	4.10 मिग्रा./ग्रा.
मायो ग्लोबिन	1.5 मि.ग्रा./ग्रा.
कोलेस्ट्रॉल	54.80 मि.ग्रा./ग्रा.
रंग	गहरा लाल

भैंस के माँस का विश्लेषण

मांस की गुणवत्ता आयु पर भी निर्भर करती है। संयोजी ऊतक के कारण कम आयु के जानवरों का माँस नरम होता है जैसे-जैसे आयु बढ़ता है माँस सख्त होता जाता है तथा ऐसा माँस स्वादिष्ट नहीं होता है।

भैंस के माँस से विभिन्न प्रकार के व्यंजन जैसे कबाव, कोफ्ता तथा टिक्की आदि भी बनाई जा सकती है। कश्मीर घाटी में मोस्तावा, रिस्ता तथा वतेयम्नि विश्वविख्यात है।

भैंस के वध से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग -

पशु ग्रन्थियों से प्राप्त जीवनदायी औषधियों की किस्में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। हार्मोन्स को रासायनिक संश्लेषण से तैयार नहीं किया जा सकता है। बूचड़खानों से भैंस के विभिन्न अंगों / उपोत्पादों को इकट्ठा करके उससे मूल्यवान औषधियॉ तैयार की जा सकती है।

पशुओं के खुरों से हिषक पाद तेल निकाला जाता है। इसका उपयोग मलहमों के आधार के रूप में तथा इंजेक्शन में सह- औषधि के रूप में किया जाता है।

सारणी 7 -भैंस के उत्पादों से प्राप्त औषधियॉ व जैव रसायन

रक्त	प्लाज्मा, सीरम, एल्ब्यूमिन, रक्तचूर्ण, हीमेटोनिक्स
फिब्रीन	पेप्टीन, फिब्रीन कोम, फिब्रीन चूर्ण
अग्न्याशय (पैन्क्रियाज)	इंसुलिन, ग्लूकोगोन, पेनक्रियेटीन, ट्रिपसिन तथा कोइनो ट्रिपसिन
फेफड़ा और आंत	हिपेरिन
यकृत् (लीबर)	यकृत् निष्कर्ष
थाइरॉइड	थाइरॉक्सिन
पिट्यूटरी 1. अग्रभाग 2. पश्चभाग	एफ. एच. एच., प्रोलेक्टिन, टी.सी.एच.जी. एच. ऑक्टीटोसिन और वेसोप्रेसिन
(वृक्क) किडनी	एड्रिनेलीन
अंडकोश	हाईलूरोनिडेस
पित्ताशय	पित्त व पित्त लवण
रीड रज्जु	कोलेस्टेरॉल, लेसीथिन
हड्डियॉ	जिलेटिन, अस्थि संरचना, विकास प्रोटीन

भारत वर्ष में गाय और भैंस के माँस की पहचान आवश्यक है क्योंकि अधिकांश धर्म के लोगों में गाय का माँस प्रतिबन्धित है साथ ही गाय का वध नहीं किया जा सकता है भारत सरकार द्वारा 1954 का फूड एडलट्रेशन एक्ट कानून तथा 1956 में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पारित गोवंश वध बंद करने वाले कानून से विभिन्न पशुओं के माँस की पहचान आवश्यक हो गयी है। जिसके लिए कई परीक्षण किये जाते है जो निम्न लिखित है।

अवशेषण परीक्षण, जेल विसरण परीक्षण, रासायनिक परीक्षण प्रतिरक्षी इलेक्ट्रोफोरेसिस साथ ही माँस के रंग के आधार पर विभिन्न पशुओं के माँस परीक्षण कर सकते है।

भैंस की खाल से चमड़ा उत्पादन एवं अन्य शरीर अंगो का उपयोगः

भैंसों से चमड़ा, हड्डियाॅ, सींग तथा कई अन्य उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है जिससे यह सिद्ध होता है कि भैंसे जीने के समय ही नहीं बल्कि मरने के उपरान्त भी उपयोगी होती है। इसकी खाल से जूते, पर्स तथा अन्य कई वस्तुऐं बनती है।

भैंस के वध के समय चमड़े का वजन 5-6%, हड्डियाॅ, 15-30 प्रतिशत, सींग व खुर 1 प्रतिशत तथा वध के उपरान्त रक्त 4-6% तथा रूमेन 8-10% होता है।

भारतवर्ष में लगभग कुल 4.2 लाख टन हड्डियाॅ प्राप्त होती है। परन्तु 2.5 लाख टन हड्डियों का ही उपयोग हो पाता है। इसके उपयोग चूरा बनाकर पशुओं के दाने में डालने का कार्य आता है जिसमें कैल्शियम व फॉस्फोरस की प्राप्ति होती है। तथा आहार को संतुलित बनाया जाता है तथा सींगों से दस्ते, बटन, बाद्य यंत्रों के मूंड इत्यादि की प्राप्ति होती है । सींग और खूर से प्राप्त चूर्ण खाद तथा अग्निशमन (फोम) बनाने के काम में आती है।

गोबर - गोबर से उपलें बनाकर जलाने के काम में आते हैं। गोबर गैस संयत्र में उपयोग होता है जिससे ऊर्जा की प्राप्ति होती है। गोबर से गैस प्राप्त करने के बाद पोषक तत्व संचित रहता है जो खाद के रूप में अधिक उपयोगी होता है।

इसके अतिरिक्त भैंस वजन ढ़ोने वाला जानवर होता है इससे प्रति 5-6 घण्टे कार्य लिया जा सकता है। बैलगाड़ी में व खेत जोतने के लिए नर भैंस का उपयोग किया जाता है।

भैंस उत्पादनः संभावनाऐं

भविष्य में भैंस की नस्ल सुधार करके व संतुलित आहार देकर दुग्ध उत्पादन व माँस का उत्पादन बढ़ा सकते है। हर साल देश को माँस के निर्यात से प्रतिवर्ष करोड़ो की विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

माँस व्यवसाय में वृद्धि की प्रचुर संभावनाऐं है। वर्ष 2008 में भैंस के माँस का निर्यात करके रू0 3533 करोड़ प्राप्त हुआ जो कि 2016 में रू0 26,682 करोड़ हो गया ।

पिछले कुछ वर्षों से भैंस के माँस का उत्पादन एक संगठित व सामूहिक रूप से विभिन्न उन्नतशील बुचड़खाना में किया जा रहा है जिसके कारण भैंस के माँस का उत्पादन अधिक साफ व वैज्ञानिक तरीके से हो रहा है और खाड़ी के देशों व अन्य देशों में भैंस के मांस की मांग बढ़ी है। अगले पॉच वर्षों में माँस का उत्पादन 8% के हिसाब से बढ़कर लगभग रू0 40,000 करोड़ की होने की संभावना है ।

भारतवर्ष मुख्यतः जार्डन, सऊदी अरब और मिश्र को भैंस के माँस का निर्यात करता है। भारतीय भैंसें मैडकाऊ रोग, सी. बी. पी. पी. (कन्जेसियस बोवाइन प्लूयूरो निमोनिया, एफ. एम. डी. से मुक्त है)। अतः विदेश में भारतीय भैंस के माँस की मॉग अधिक बढ़ने की संभावना है तथा अभी तक भारत द्वारा निर्यात किये गये भैंस के माँस से किसी भी प्रकार के रोग नहीं फैला है।

भारत से आयातित मुर्रा नस्ल की भैंस वहॉ पर काफी लोकप्रिय है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि भैंस, भविष्य में न केवल बल्कि विश्व में पशु पालन उद्योग की एक महत्वपूर्ण कड़ी बन जाएगी। इसके लिए भैंस के अनुसंधान कार्यों में तेजी लाने की बहुत आवश्यकता है। हिसार स्थित केन्द्रीय भैंस अनुसंधान केन्द्र इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। इस शताब्दी में भैंस से न केवल हर व्यक्ति तक दूध पहुॅचाया जा सकता है इस प्रकार से भैंस से हम जीवित रहने पर उत्तम प्रकार का दूध और उससे प्राप्त होने वाले उत्पाद तथा मरने के उपरान्त माँस और उससे प्राप्त होने वाले उत्पादों से भारतीय किसानों की आमदनी को दोगुनी करके हमारा देश अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है।

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान: एक नवोन्मेशी तकनीक

चेतना गंगवार, एस.डी.खर्चे, अनुज कुमार सिंह एवं ए.के. मिश्रा

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी जनन तकनीक है जिसके द्वारा चयनित एवं अच्छे नस्ल के बकरे के वीर्य का उपयोग कर बकरी उत्पादन में अधिक वृद्धि की जा सकती है। हालांकि कृत्रिम गर्भाधान तकनीक का उपयोग गाय तथा भैंस प्रजाति में व्यापक रूप से किया जा रहा है परन्तु बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान का प्रचलन अभी कुछ सरकारी एवं गैर सरकारी प्रक्षेत्रों तक ही सीमित है। परन्तु आशा की जाती है कि भविष्य में इस तकनीक का प्रयोग बकरी की नस्ल सुधार एवं उत्पादन बढ़ाने में विस्तृत पैमाने पर किया जाएगा।

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान के लाभ

1. हिमीकृत वीर्य से अच्छी नस्ल के कम बकरों से ही अधिक से अधिक बकरियों का गर्भाधान कराया जाता है।
2. जहाँ प्राकृतिक गर्भाधान विधि से एक बार में एक बकरा सिर्फ एक बकरी को ग्याभिन कर सकता है, वहाँ कृत्रिम गर्भाधान से एक बकरे से एक बार में लिए गए वीर्य से कम से कम 15-20 बकरियों को गर्भित कराया जा सकता है।
3. इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि बकरों में बीमारी की जाँच उपयोग में लाने से पहले कर ली जाती हैं, इस कारण हमेशा अच्छे किस्म के वीर्य का ही उपयोग किया जाता हैं जो प्राकृतिक गर्भाधान में सम्भव नहीं है।
4. वीर्य संरक्षण तकनीक से हिमीकृत वीर्य को बकरे के मरने के बाद भी लम्बे समय तक संरक्षित रख कर उपयोग किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न मेमने

5. हिमीकृत वीर्य को एक प्रदेश/देश के दूसरे प्रदेश/देश में आदान-प्रदान आसानी से किया जा सकता है।
6. प्राकृतिक गर्भाधान में विभिन्न नस्ल के बकरे एवं बकरियों के आकार में अधिक अन्तर होने की वजह से ग्याभिन करना बहुत मुश्किल होता हैं, जबकि कृत्रिम गर्भाधान में ऐसी कोई कठिनाई नहीं होती।

प्राकृतिक गर्भाधान के नुकसान

1. प्राकृतिक गर्भाधान से भयावह बीमारियॉं जैसे ब्रुसेल्लोसिस फैलने का खतरा अधिक होता है।
2. इसमें ज्यादातर किसान निम्न कोटि के बीजु बकरे का प्रयोग करते हैं।
3. अच्छे बकरे की अनुउपलब्धता के कारण गर्भधारण करने में काफी समय लग जाता है।
4. किसान के पास बकरा न होने की वजह से उसे बकरी को ग्याभिन कराने में अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिए बकरों का चयन- कृत्रिम गर्भाधान के लिए आवश्यक है कि एक अच्छी नस्ल व उच्च कोटि के बकरे का चयन किया जाय।

1. बकरा नस्ल के अनुसार रूप, रंग एवं कद काठी का हो।
2. शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ एवं चुस्त हो।
3. स्वभाव से उत्तेजक हो।
4. दोनों अण्डकोश पूर्ण रूप से विकसित हों तथा उनमें कोई विकार न हो।
5. बकरे की मां में वांछित लक्षण हों और उसकी उत्पादकता अच्छी हो।
6. वीर्य एकत्रण के लिए 1.5-4.00 वर्ष आयु के बकरों का ही चयन करें।
7. जिस नस्ल की बकरियॉं हो उसी नस्ल के बकरे का चयन करना चाहिए।

बकरियों में मदकाल का पता लगाना - बकरियों में मदकाल के लक्षण निम्नवत होते है:

1. बकरी सामान्यतः विचलित होती है तथा दाना-चारा कम खाती है।
2. बकरियों का बार-बार पेशाब करना तथा बार-बार तेजी से पूंछ हिलाना।
3. मदकाल में बकरियों की योनि लाल होकर चिकनी व लसलसी हो जाती है।
4. योनिमार्ग से पारदर्शी तोड़ का गिरना।
5. झुण्ड की दूसरी मादा बकरियों पर चढ़ना तथा बकरे को इसकी स्वीकृति देना।

बकरी में मदकाल का पता लगाने की विधि

बकरियों के झुण्ड में मदकाल का पता लगाना- यदि बकरियों की संख्या अधिक हो तो मदकाल का पता करने के लिए एक बकरे के पेट पर कपड़ा बांधकर बकरियों के झुण्ड में प्रतिदिन सुबह-शाम घुमाने पर मदकाल में आयी बकरियों का पता चल जाता है। मदकाल में आयी बकरियां बकरे प्रति आकर्षित होती है एवं अपने ऊपर चढ़ने देती है।

बकरों से वीर्य का संग्रहण:- बकरों से वीर्य संग्रह विभिन्न विधियों द्वारा किया जा सकता है। लेकिन कृत्रिम योनि विधि का अधिक प्रचलन है। कृत्रिम योनी वीर्य संग्रहण करने के लिए एक ऋतुमयी बकरी काप्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात चुने हुए नर प्रजनक बकरे को उसके पीछे खुला छोड़ दिया जाता है। बकरा जब बकरी के ऊपर चढ़ता है तो बकरे के शिश्न को हाथ में लेकर कृत्रिम योनि के अन्दर कर देते हैं। इस तरह बकरा वीर्य का स्खलन कृत्रिम योनी के अन्दर कर देता है। कृत्रिम योनी के दूसरे सिरे पर कांच के वीर्य संग्रहण

वीर्य संग्रहण विधि

प्याले में वीर्य आ जाता है। एक बकरा एक बार में 0.5 मि.ली. से 1.5 मि.ली. वीर्य स्खलित करता है। बकरों में वीर्य प्रदान करने की क्षमता बकरे के नस्ल, ऋतु,उम्र पर निर्भर करती है। हिमीकरण और प्रजनन के लिए अच्छी गुणवत्ता का वीर्य प्राप्त करने के लिए वीर्य का संग्रह एक दिन छोड़कर करना अच्छा रहता है।

गर्भाधान का उचित समय - बकरियां सामान्यतः 24-40 घन्टे तक मदकाल में रहती है तथा इसी अवधि में बीजू बकरे से गर्भाधान कराने पर गर्भधारण करती है। अगर बकरी सांय को मदकाल में आये तो उसे दूसरे दिन सुबह और शाम को ग्याभिन करायें अर्थात बकरियों को गर्मी में आने के 12 घंटों बाद ही ग्याभिन करायें। प्रजनन काल में बकरियों पर व्यक्तिगत ध्यान रखें तथा गर्भाधान के बाद अगर बकरी पुनः मद के लक्षण प्रकट करे तो पुनः ऊपर बताई विधि से ग्याभिन करायें।

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान विधि: कृत्रिम गर्भाधान के लिए संग्रहित तनुकृत/हिमीकृत वीर्य को तरल नाइट्रोजन से निकालकर 40 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले पानी में 40 सेकेण्ड के लिए डालकर पिघला लिया जाता है। फिर वीर्य से भरी स्ट्रा को वीर्यसेचन पिचकारी की नली में रख देते हैं, सील को काट देते है । अन्त में शीथ को उसके ऊपर रख कर सेचन कर देते हैं। वीर्य को गर्भाशय की ग्रीवा

कृत्रिम गर्भाधान विधि

ओज पर जमा करने का प्रयास किया जाता है। वीर्य को ग्रीवा के अन्त भाग में डालने के लिए गहरी ग्रीवा वीर्य सेचन पिचकारी का इस्तेमाल करने से अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

बकरों के वीर्य मिलने का स्थान

भाकृअप - केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, में उच्च कोटि के बकरों का वीर्य हिमीकृत किया जाता है तथा इस वीर्य का पुस्तक मूल्य पर बिक्रय भी किया जाता है। इच्छुक किसान भाई बकरों के हिमीकृत वीर्य को यहाँ से खरीद सकते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान किससे करायें

कृत्रिम गर्भाधान सदैव पशु चिकित्सक के परामर्शानुसार करायें या कृत्रिम गर्भाधान में प्रशिक्षत व्यक्ति से करायें। केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम में कृत्रिम गर्भाधान पर समय-समय पर प्रशिक्षण करायें जाते हैं। इच्छुक बकरी पालक कृत्रिम गर्भाधान से सम्बन्धित जानकारी के विषय में केन्द्रीय बकरी अनुसंधान के वैज्ञानिकों से सम्पर्क कर सकते हैं।

जन्मजात विसंगतियां एवं शल्यचिकित्सा द्वारा उपचार

सुरभि के. त्यागी, विनीत कुमार एवं विवेक मलिक

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविधालय, मेरठ - 250110 (उत्तर प्रदेश)

बछड़ों में जन्मजात विसंगतियां ऐसी विकृतियां हैं जो कि जन्म के समय बछड़े के साथ पाई जाती हैं। जन्मजात विकृतियों में से कुछ का शल्यचिकित्सा द्वारा उपचार किया जा सकता है और कुछ अनुपचारित होती हैं। ज़्यादतार किसान जानकारी के अभाव में बछड़े का समुचित उपचार नही करवा पाते हैं जो उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है, जिस वजह से किसानों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। इस लेख का उद्देश्य किसानों को ऐसी जन्मजात विसंगतियों के बारे में जागरूक करना है जिनका उपचार शल्यचिकित्सा द्वारा संभव है और समय पर उपचार होने पर पशु का जीवन एवम आर्थिक हानि से बचा जा सकता है। चूँकि जन्मजात विसंगतियां ज़्यादातर वंशानुगत होती हैं, अत: किसान बन्धुओं से अनुरोध है कि ऐसे पशुओं को भविष्य में प्रजनन के उपयोग में ना लें। शल्यचिकित्सा द्वारा उपचारित जन्मजात विसंगतियां नीचे दी गयी हैं:-

1. एटरेसिया एनाई या गुदा विहीनता
2. एटरेसिया एनाई-एनस वेजाइनलिस या मलाशय-योनि फिस्चुला/नाल्व्रण
3. अम्बलिकल हर्निया या नाभि/नाल का हर्निया
4. नाभि बीमार या नेवल इल
5. परवियस यूरेकस/विकृत यूरेकस
6. ओकुलर डरमायड
7. पोलिमीलीया
8. कोनटरेकटीड टेंडन या संकुचित कण्डरा

1. **एटरेसिया एनाई या गुदा विहीनता:** गुदा या मल् द्वार का ना होना एक ऐसी विकृति है जो बछड़ों में आम रूप से देखी जाती है (चित्र 1)। मल के शरीर में रुके रहने से पशु को पेट में दर्द होती है और विष फैलने के कारण उपचार ना मिलने पर पशु की मृत्यु हो जाती है। इसलिये इस विकृति का बिना देर करे तुरन्त उपचार करवाना चाहिये। शल्यचिकित्सक/सर्जन एक कृत्रिम मल-निकास द्वार की रचना कर पशु का जीवन बचा सकता है। इस ऑपरेशन में सफलता की दर लगभग 100 प्रतिशत है। सामान्यत: 10 से 12 दिवस उपरांत टाँके कटवा दिये जाते हैं।

2. एटरेसिया एनाई-एनस वेजाइनलिस या मलाशय-योनि फिस्चुला/नाल्व्रण: इसे रेक्टो-वेजाइनल फिस्चुला भी कहते हैं। इस विकृति में गुदा विहीनता भी साथ ही रहती है। मल मलाशय से ना आकर योनि के रास्ते आता है (चित्र 2)। इसमें संक्रामक रोग की संभावना रहती है। शल्यचिकित्सा द्वारा पहले एक कृत्रिम मल-निकास द्वार की रचना की जाती है तदुपरांत टाँके लगा कर फिस्चुला को बंद कर दिया जाता है, फल्स्वरूप मल एवम् मूत्र यथास्थान से आने लगते हैं।

3. **अम्बलिकल हर्निया या नाभि/नाल का हर्निया:** इस जन्मजात विसंगति में नाभि की संरचना का विकास पूर्ण रूप से ना होने के कारण पेट के अंदर की आँत एवम् आंतर्वस्तु नाभि की हर्निअल रिंग द्वारा बाहर आ जाती है (चित्र 3)। शीघ्र निदान

एवं छोटी रिंग होने पर, कपड़े या पट्टी से दबाव देने पर हरनिया अंदर जा सकता है। परन्तु पुराने या बड़े हर्निया का उपचार केवल शल्यचिकित्सा/ओपरेशन द्वारा ही संभव है। रिंग को टाँके लगा कर बंद कर दिया जाता है जिससे अंदर के अंग बाहर ना आयें। ज़्यादा बडी़ होने पर रिंग को प्लास्टिक सर्जरी द्वारा ग्राफ्ट लगा कर भी बंद किया जा सकता है।

4. **नाभि बीमार या नेवल इल:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें बछड़े की नाभि में जन्म उपरांत जीवाणु द्वारा संक्रमण हो जाता है। इस कारण नाभि में सूजन, पीड़ा एवम् मवाद/पस भी हो सकती है। समय पर निदान न होने पर कीड़े भी पड सकते है। यदि संक्रमण पेट के अंगों में चला जाय तो मृत्यु भी हो सकती है। इस बीमारी का उपचार करने के लिये मवाद को निकाल कर, नाभि को अच्छी तरह से साफ किया जाता है। तदोपरांत आयोडीन द्वारा सफाई की जाती है। साथ ही 5-7 दिन तक एंटीबायोटिक एवम् दर्दनाशक दवाएं दी जाती हैं। दिन में 2 बार सफाई और पोविडोन आयोडीन का लेप करने से बीमारी के ठीक होने की संभावना प्रबल हो जाती है।

5. **परवियस यूरेकस/विकृत यूरेकस:** यह मूत्राशय की सबसे आम जन्मजात विसंगति है जिसमें मूत्र का रिसाव प्राकृतिक जगह के साथ-साथ नाभि से भी होता रहता है (चित्र 4)। इस कारण नाभि के आस पास की जगह गीली रहती है और संक्रमण एवम् सूजन का कारण बनती है। शल्य चिकित्सा द्वारा इस व्याधि का उपचार सम्भव है जिसमें यूरेकस को यथा शीघ्र बन्द कर दिया जाता है ताकि संक्रमण पेट के अंदर या मूत्राशय तक ना फैले।

6. **ओकुलर डरमायड:** ओकुलर डरमायड मवेशियों में एक दुर्लभ रूप से पायी जाने वाली जन्मजात विसंगति है जो कि अन्य नेत्र सम्बंधी विकृतियों के साथ भी जुड़ी हो सकती है। इस विसंगति में त्वचा या त्वचा के साथ बालों का ऊपांग आँखों में ऊग आता है जो कि एक आँख या दोनो आँखों में देखा जा सकता है (चित्र 5)। डरमायड के कारण नेत्रों में जलन, सूजन, पानी का रिसाव, संक्रमण एवम् अंधापन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जन्म के शुरुआती दिनों में ही शल्य क्रिया द्वारा ओकुलर डरमायड को निकाल कर इस बिमारी से मुक्ति मिल जाती है और नेत्रों का कार्यात्मक रूप से विकास हो सकता है।

7. **पोलिमीलीया:** पोलिमीलीया अर्थात अतिरिक्त उपांग या अतिरिक्त पैर एक ऐसी स्थिति है जिसमें पशु सामान्य रुप से चार पैरों से ज़्यादा पैरों के साथ पैदा होते हैं (चित्र 6। यदि पीछे के दो पैरों से अतिरिक्त पैर श्रोणि या पेल्विक क्षेत्र से जुड़े हों तो उसे पाईगोमीलीया कहते हैं और यदि आगे के दो पैरों से अतिरिक्त पैर उस क्षेत्र से जुड़े हों तो उसे नोटोंमीलीया कहते हैं। शल्य क्रिया द्वारा अतिरिक्त पैरों को अलग करके इस व्याधि का उपचार किया जाता है।

8. **कोनटरेकटीड टेंडन या संकुचित कण्डरा:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें पशु की टांगे मुडी होती है और सामान्य रुप से सीधी नहीं हो पाती (चित्र 7)। परिणामस्वरुप बछड़ा अपने पैरों से सीधा खड़ा नहीं रह पाता है और न ही वे अपने खुरों को जमीन पर रख पाता है। शल्य क्रिया द्वारा टेंडन/ कण्डरा को काट दिया जाता है। तदोपरांत बांस अथवा अलुमीनीयम की पट्टी लगा कर टांगो को सीधा कर प्लासटर किया जाता है जिसे 15-20 दिन बाद खोल दिया जाता है।

मवेशियों में उपरोक्त सभी जन्मजात विसंगतियों का समय पर उपचार हो एवम् सही देखभाल की जाये तो पशु सफलतापूर्वक जीवित रह सकता है। किन्तु, ज़्यादातर जन्मजात विसंगतियां वंशानुगत होती हैं। यदि ऐसे पशुओं का प्रजनन के लिये उपयोग होता है तो पूरी संभावना है कि ये बीमारियाँ अगली पीढ़ी में भी पायी जाएँगी। पशु पालको को ऐसे पशुओं का उपयोग प्रजनन के लिए ना करने की सलाह दी जाती है।

पशुधन प्रकाश के ग्यारहवें अंक (वर्ष-2020) के लिए लेखों का आमन्त्रण

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल की वार्षिक पत्रिका **पशुधन प्रकाश** पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवं चिकित्सा, नस्ल लक्षण-निर्धारण व संरक्षण इत्यादि क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशु पालकों, पशु वैज्ञानिकों एवं विध्यार्थियों के लिए उपयोगी **शोध लेख/लोकप्रिय लेख** भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल के राजभाषा एकक को ए-4 आकार के पन्नों पर टंकित करवाकर 31 मार्च 2020 तक भेज दें। छायाचित्रों की जेपीजी फ़ाइल सहित अपने लेख उक्त पते पर अथवा ई-मेल से pashudhanprakash@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें। सभी लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित निम्न प्रमाण-पत्र लेख के साथ अवश्य भेजें:

"प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख (लेख का शीर्षक व लेखकों के नाम सहित) एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा शौध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया है।"

आपके द्वारा अध्ययन किये गए पालतू पशु/कुक्कुटों के गैर पंजीकृत नस्लों/समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

संपादक मंडल

सतत एवं लाभदायक शूकर पालन के दो पहलू : चयन एवं योजनाबद्ध प्रजनन

देवेश कुमार यादव, कुलदीप कुमार त्यागी एवं अतुल गुप्ता

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग,पशु चिकित्सा महाविद्यालय, मेरठ -250110 (उत्तर प्रदेश)

शूकर पालन ग्रामीण स्तर पर हमारे किसान भाइयों के लिये आय का एक मुख्य स्रोत है। शूकर की पुनरोत्पादन एवं भोजन को मांस में बदलने की क्षमता उसे एक अनोखा पालतू जानवर बनाती है। हमारे पूर्वजों द्वारा कही गयी एक कहावत बहुत ही प्रचलित है - जैसे बीज बोओगे वैसी ही फसल काटोगे। वर्तमान में इस कहावत के वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रयोग उत्पादन के अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है। आज के समय में यह देखने में आया है कि जब हम अपने खेतों में फसल रोपाई के समय बाज़ार से बीज लेने जाते हैं तो दस तरह की जाँच परख करते हैं, जबकि पशुधन में कृत्रिम गर्भाधान अथवा प्राकृतिक गर्भाधान करवाते समय इस तरह की जाँच परख प्रायः नहीं की जाती। हमारे देश में किसान के स्तर पर अथवा ग्राम्य स्तर पर उत्तम नस्ल एवं उच्च आनुवांशिक क्षमता के बीजू शूकर की भारी कमी है जिसका मुख्य कारण अनुवांशिकी एवं योजनाबद्ध प्रजनन के नियमों की जानकारी का अभाव है। अब समय आ गया है कि हमारे किसान भाई अनुवांशिकी एवं योजनाबद्ध प्रजनन के नियमों को जानें एवं अपने शूकर बाड़े में उनका प्रयोग करके शूकरों की नस्ल एवं उत्पादन क्षमता को बढ़ाएँ।

शुरुआत कहाँ से करें ?

इसकी शुरुआत हमारे पास उपलब्ध वर्तमान पीढ़ी से ही आरम्भ होती है जैसाकि इस लेख में दी गयी चित्र संख्या -1 में समझाया गया है।

अनुवांशिकी विषय में एक हार्डीविनबर्ग नियम होता है, जिसमें ऐसा बताया गया है कि – "यदि किसी बहुसंख्यीय आबादी में बिना चयन के समागम होता है तो पीढ़ी दर पीढ़ी गुणसूत्रों की गुणवत्ता एवं उन पर मौजूद जनन द्रव्य (जीन) की उपलब्धता लगभग एक ही स्तर पर बनी रहेगी, जबकि अल्पसंख्यक आबादी में गुणसूत्रों की गुणवत्ता एवं उन पर मौजूद जनन द्रव्य (जीन) की उपलब्धता पीढ़ी दर पीढ़ी घटने (जनन बहाव या जेनेटिक ड्रिफ्ट) के पूरे आसार रहते हैं।" तो यहाँ पर हमें यह समझ लेना चाहिये कि, अगर हमें आने वाली पीढ़िओं की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना है तो उनके गुणसूत्रों की गुणवत्ता एवं उन पर मौजूद जनन द्रव्य (जीन) की सतत उपलब्धता बनाए रखनी होगी जिसके लिए वैज्ञानिक चयन प्रक्रिया के सिद्धांतों का पालन करना पड़ेगा।

इससे पहले कि हम चयन प्रक्रिया के बारे में जानें, हमें अनुवांशिकी एवं योजनाबद्ध प्रजनन के मूलभूत सिद्धांतों को जान लेना अति आवश्यक है जिसमें से सर्वप्रथम और ज़रूरी सिद्धांत है -

$$P = G + E + GE$$

P = फेनोटिपिक वैल्यू (लक्षणीय प्ररूप मूल्य): ऐसा गुणधर्म जिसे या तो मापा जा सके (जैसे – शूकर का वजन) या फिर वर्गीकृत किया जा सके (जैसे किसी शूकर का रंग)

G = जीनोटिपिक वैल्यू (जीनरूप मूल्य): इसका निर्धारण गुणसूत्रों पर मौजूद अनेकों जनन द्रव्यों (जीन्स) एवं इन जनन द्रव्यों के परस्पर क्रिया के परिणाम द्वारा निर्धारित होता है।

E = इनविरोंमेंटल डेविओसन (पर्यावरणीय विचलन): यह हर प्रकार के अनुवांशिक रहित प्रभाव का परिणाम होता है

GE = जनन द्रव्यों एवं पर्यावरण के परस्पर क्रिया के परिणाम को मापता है।

उपरोक्त बातों को एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं -

यदि किसी शूकर झुण्ड में, आठ महीने की उम्र पर समस्त बच्चों का औसत वजन (P, इस बाड़े में मौजूद समस्त आठ महीने के शूकरों का) ज्ञात करना हो तो, यह औसत वजन, मूलभूत रूप से तीन कारकों को मिलाकर बनता है-

पहला है जीनरूप मूल्य (G) जो कि प्रत्येक शूकरों के गुणसूत्रों पर मौजूद जनन द्रव्यों (जीन्स) एवं इन जनन द्रव्यों के परस्पर क्रिया के

परिणाम द्वारा निर्धारित होता है। जनन द्रव्य वंशावली के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते हैं और बाड़े की उत्पादन क्षमता को निर्धारित करते हैं। जीनरूप मूल्य (G) कारक की खास बात यह है कि यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने की क्षमता रखता है।

दूसरा कारक पर्यावरणीय विचलन (E), वातावरण या अनुवांशिक रहित प्रभाव को इंगित करता है। यहां पर हमारे शूकर पालक भाई यह समझ लें कि वातावरण सिर्फ तापमान,वायु,आर्द्रता,बरसात इत्यादि का ही सूचक नहीं है, अपितु इसके अन्दर आपके द्वारा शूकर या शूकर झुण्ड को दी जाने वाली हर सुख सुविधा सम्मिलित होती है, जैसे- चारा, रखरखाव, स्वास्थ्य संरक्षण इत्यादि। यह दूसरा कारक, पहले कारक का सहयोगी होता है लेकिन यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने की क्षमता नहीं रखता है।

तीसरा कारक (GE) जीनरूप और पर्यावरण के परस्पर क्रिया के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है एवं इसका भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण नहीं होता है।

मोटे तौर पर इन तीनों कारकों के सम्मिलित योगदान से ही किसी भी शूकर (या जानवर) के लक्षणीय प्ररूप मूल्य का निर्धारण होता है। जैसे यदि किन्हीं तीन शूकर बाड़ों का आठ महीने की उम्र पर औसत वजन सूकर का वजन 20 किलोग्राम हो जाता है तो -

P = G + E + GE के अनुसार, मोटे तौर पर इसे इस तरह समझा जा सकता है -

बाड़ा संख्या (1) के लिए 20 किग्रा = 8(G) + 7(E) + 5(GE), जबकि

बाड़ा संख्या (2) के लिए 20 किग्रा = 11(G) + 6(E) +3(GE) एवं

बाड़ा संख्या (3) के लिए 20 किग्रा = 9 (G) +2 (E) +9(GE) हो तो

तुलनात्मक रूप से, G का सर्वाधिक मूल्य दूसरे बाड़े में है इसलिए दूसरे बाड़े के शूकर, उत्तम अनुवांशिक गुणवत्ता रखते हैं। यह गुणवत्ता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने की क्षमता रखती है।

उपरोक्त उदाहरण से एक बहुत ही अनोखी जानकारी सामने आती है कि दिखने मे इतना आसान लगने वाला सिद्धान्त (P = G + E + GE), नस्ल सुधार के साथ साथ लक्षणीय प्ररूप मूल्य (या उत्पादकता) बढ़ाने का सबसे मुख्य स्तम्भ है। लेकिन हमें इस सिद्धान्त में छिपे इस बात को बहुत स्पष्ट रूप में समझना होगा कि **उत्पादकता, सिर्फ अनुवंशिकी संरचना के ही आधार पर निर्धारित नहीं होती बल्कि पर्यावरणीय विचलन एवं जीनरूप और पर्यावरण के परस्पर क्रियाओं के सम्मिलित योगदान का भी परिणाम होता है।**

सही नस्ल का चयन कैसे किया जा सकता है ?

हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि केवल अच्छी नस्लों को रख लेने से ही शूकर फार्म की उत्पादकता नहीं बढ़ाई जा सकती है, अपितु उचित नस्ल का चयन करते समय हमें इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कौन सी नस्ल हमारे द्वारा उपलब्ध कराये गए संसाधनों (जैसे- शूकर बाड़े में दिये गये भोजन-पानी, आवास व्यवस्था, उस वातावरण में प्रायः होने वाले बीमारियों एवं उन बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का स्तर, इत्यादि) में अधिकतम आराम से रह पाएगी। **जो नस्ल किसी पर्यावरण विशेष में, उपलब्ध संसाधनों में अधिकतम सामंजस्य बनाने में सफल होती है, वही नस्ल उस पर्यावरण में अधिकतम उत्पादन देने वाली रहेगी।** कहने का मतलब यह है, कि यदि कोई नस्ल किसी पर्यावरण में (माना कि उत्तर भारत में) अधिक उत्पादन दे रही है और हमने उसी नस्ल को उसके वर्तमान उत्पादन क्षमता के आधार पर किसी दूसरे पर्यावरण (दक्षिण भारत में) में यह सोच कर रख दिया कि, इसकी वर्तमान उत्पादन क्षमता तो बढ़िया है इसलिए यह नस्ल नए पर्यावरण (दक्षिण भारत में) में भी उतना ही अच्छा प्रदर्शन करेगी तो हम बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। हमसे गलती इसलिए हो रही है कि उत्पादकता सिर्फ अनुवांशिकी पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि पर्यावरणीय विचलन और जनन द्रव्यों एवं पर्यावरण के परस्पर क्रिया पर भी निर्भर करती है, जैसा कि सिद्धान्त (P = G + E + GE) में बताया गया है। अतः किसी फार्म पर बड़ा निवेश करने से पहले विभिन्न नस्लों के लगभग 10-15 पशु रखकर उनकी उत्पादन क्षमता को परख लेना चाहिये ।

इस तरह हम G, E एवं GE कारकों का विश्लेषण करते हुये इनके द्वारा निर्धारित, लक्षणीय प्ररूप मूल्य (P या फेनोटिपिक वैल्यू) के

आधार पर अपनी आवश्यकतानुसार सही नस्ल का चुनाव कर सकते हैं। यदि कोई अच्छी नस्ल उपलब्ध न हो तो ऐसी स्थिति में मौजूदा वातावरण (जहां पर फार्म खोलना है) में अधिकतम उत्पादन हेतु उसी क्षेत्र में पायी जाने वाली स्थानीय नस्ल को वरीयता देते हुये उसका चुनाव करना चाहिए।

चयन किसे कहते हैं ?

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी पशुझुण्ड में से केवल कुछ ही नर और मादा पशुओं को संतति उत्पन्न करने हेतु प्रजनन प्रक्रिया में जनक बनने का अवसर प्रदान होता है।

चयन की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

सामान्यतः किसी एक ही नस्ल के पशुझुण्ड में भी विविधता पायी जाती है, जैसे विभिन्न संततियों का अलग अलग जन्म भार, तीन महीने या छह महीने पर अलग अलग वृद्धि दर के कारण अलग अलग शरीर भार, रोगों के प्रति अलग अलग प्रतिरोधक क्षमता एवं वयस्क अवस्था पर अलग अलग प्रकार के लक्षणों के प्रदर्शन में भी मात्रात्मक विविधता। इन विविधताओं के कारण एक पशुपालक का उद्देश्य होता है कि वो उन्हीं नर और मादा पशुओं को संतति उत्पन्न करने हेतु प्रजनन प्रक्रिया में जनक बनने का अवसर प्रदान करे जो अधिकाधिक अच्छे गुणों को समाहित करते हों। इसके पीछे तर्क यह है कि कोई भी गुण, गुणसूत्रों पर मौजूद जनन द्रव्यों (जीन्स) द्वारा निर्धारित होते हैं जबकि उनका परिमाण (मापन या P), तीन चीजों (G, E और GE) द्वारा निर्धारित होता है। इसलिए अगर अच्छे गुणों वाले माता पिता होंगे तो आगामी संतति भी अच्छे गुणों वाली ही होगी क्योंकि गुणसूत्र एक पीढ़ी से(माता पिता से) दूसरी पीढ़ी (संतति में) में हस्तांतरित होता है।

चयन के आधार :

किसी भी शूकर का जनक बनाने के लिए उसके गुणों के प्रदर्शन के बारे में जानना आवश्यक होता है क्योंकि जिसका प्रदर्शन बढ़िया होगा उसका चयन कर लिया जाता है।यदि हमें झुण्ड समूह से प्रतिशत में चयन करना है तो भी हमें सर्वप्रथम हर एक के गुणों के प्रदर्शन के बारे में जानकारी इकट्ठा करनी होगी । इसके बाद गुणों के प्रदर्शन के घटते या बढ़ते क्रम में सभी को क्रमबद्ध कर लेंगे। अब झुण्ड समूह से प्रतिशत चयन की संख्या ज्ञात करके, गुणों के प्रदर्शन के घटते क्रम से आवश्यकतानुसार जनकों का चुनाव कर लेंगे।

गुणों के प्रदर्शन की जानकारी के जरिया के अनुसार "चयन का आधार" चार प्रकार का हो सकता है –

i. **व्यक्तिगत चयन:** यदि शूकर के खुद के प्रदर्शन के आधार पर गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाए तो इस प्रकार का चुनाव, **व्यक्तिगत चयन** कहलाता है। जैसे किसी शूकर का आठ महीनों के बाद शरीर भार का मूल्यांकन उसके खुद के वजन को प्राप्त करके किया जा सकता है। **व्यक्तिगत चयन, चयन आधार का सरलतम प्रकार है ।**

ii. **वंशावली चयन:** यदि **वंशावली** के प्रदर्शन के आधार पर, किसी शूकर के गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाए तो इस प्रकार का चुनाव, **वंशावली चयन** कहलाता है। **वंशावली चयन से उन** गुणों के बारे में जानकारी मिलती है जो की अभी तक शूकर विशेष में प्रदर्शित नहीं हुए होते हैं।

iii. **परिवार / कुटुम्ब चयन:** यदि **परिवार** या कुटुंब के सदस्यों के प्रदर्शन के आधार पर, किसी शूकर के गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाए तो इस प्रकार का चुनाव, **कुटुम्ब चयन** कहलाता है। **कुटुम्ब चयन से भी उन** गुणों के प्रदर्शन के बारे में जानकारी मिलती है जो की अभी तक शूकर विशेष में प्रदर्शित नहीं हुए होते हैं।

iv **संतति चयन:** यदि **संतति** के प्रदर्शन के आधार पर, किसी शूकर के गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाए तो इस प्रकार का चुनाव, **संतति चयन** कहलाता है। **संतति चयन, चयन आधार का सर्वोत्तम प्रकार है ।**

चयन के तरीके :

यदि सारे शूकरों का विभिन्न गुणों के संदर्भ में **प्रदर्शन स्तर बिल्कुल एक समान हो तो ऐसी स्थिति में** चयन एवं योजनाबद्ध प्रजनन **से हम कभी भी नस्ल सुधार या संतति की उत्पादकता में वृद्धि नही कर पायेंगे**। मतलब, **गुणों के प्रदर्शन के स्तर में विविधता ही किसी शूकर** झुण्ड **में चयन का कारण बनती है**। **शूकर** झुण्ड

में, प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कुछ शूकर किसी एक गुण के संदर्भ में सर्वोत्तम प्रदर्शन करते हैं, कुछ शूकरों में एक ही साथ दो या तीन गुणों के संदर्भ में बेहतर प्रदर्शन पाया जाता है जबकि कुछ शूकरों में एक ही साथ चार या चार से ज्यादा गुणों के संदर्भ में सामान्य प्रदर्शन पाया जाता है। ऐसी स्थिति में हमारा प्रयास रहता है कि उसी शूकर विशेष का चुनाव एक जनक के रूप में किया जाय जिसका प्रदर्शन, हमारी आवश्यकतानुसार चुने गए गुणों को, या बहुगुणीय (एक से अधिक गुण) को समाहित करता हो। चयन के दौरान एक समय पर कितने गुणों को ध्यान में रखा गया है, इस आधार पर **व्यक्तिगत चयन** के तीन **तरीके होते हैं –**

i. **अग्रानुक्रम तरीका या एक के पीछे एक का तरीका (टेंडेम मेथड):** इस तरीके में लक्षित किसी एक गुण के प्रदर्शन के आधार पर जनक का चुनाव किया जाता है और इस गुण के प्रदर्शन को एक उचित स्तर तक प्राप्त कर लेने के बाद अगले लक्षित गुण के प्रदर्शन में सुधार किया जाता है।जब दोनों ही गुणों में एक अपेक्षित सीमा तक सुधार हो जाता है तभी हम तीसरे गुण की तरफ बढ़ते हैं। अग्रानुक्रम तरीका बहुत समय लेता है और यदि किसी दो गुणों मे विपरीत संबंध होते हैं तो एक गुण की बढ़त दूसरे को घटा देती है।

ii. **स्वछंद चुनाव स्तर तरीका (इंडिपेंडेंट कलिंग लेवेल मेथड):** इस चुनाव तरीके में एक ही समय में दो या दो से ज्यादा लक्षित गुणों के लिए एक उचित सीमा निर्धारित कर दी जाती है। अब जो भी शूकर , लक्षित गुणों के निर्धारित सीमा के स्तर को प्राप्त कर रहे होंगे उनका चुनाव कर लिया जाएगा। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है की निर्धारित गुणों में से किसी एक के भी स्तर में मामूली सी भी कमी के कारण उस शूकर का चुनाव बिलकुल भी नही होगा चाहे वह अन्य गुणों में कितना भी अच्छा प्रदर्शन क्यों न करता हो।

इसलिए इस तरीके का सबसे खराब पहलू यह है कि यदि एक भी गुण में निर्धारित स्तर से मामूली सी भी कमी होगी तो भी उस शूकर का चुनाव नही किया जा सकता है।

iii. **सम्पूर्ण अंक तरीका (टोटल स्कोर मेथड):** मूलतः स्वछंद चुनाव स्तर तरीका के सबसे खराब पहलू की कमी को दूर करने के लिए ही इसका उपयोग किया गया। इस तरीके में किसी भी शूकर के निर्धारित सभी गुणों के लिए एक अनुक्रमणिका तैयार कर ली जाती है और अधिकतम अनुक्रमणिका वाला शूकर चयनित कर लिया जाता है। इसमें किसी एक गुण कि कमी को दूसरे बेहतर प्रदर्शन वाले गुण से पूरा कर लिया जाता है जिससे निर्धारित गुणों में से किसी एक के भी स्तर में मामूली सी कमी के बावजूद उस शूकर का चुनाव हो जाता है इसलिए सम्पूर्ण अंक तरीका, चयन के तरीकों में सर्वोत्तम तरीका है।

सुधार प्रक्रिया चक्र – हमारे शूकर पालकों को जिन दो चीजों पर ध्यान देना चाहिये, उनमें से एक है **अनुवांशिकी** और दूसरी **उत्पादन क्षमता में सुधार की**। इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक ऐसी सुधार प्रक्रिया है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानांतरित होती है।

तो आइये सुधार प्रक्रिया की अगली कड़ी को समझने का प्रयास करते हैं । हमारे शूकर पालकों को जो भी चयन करना है वह वर्तमान पीढ़ी के अंतर्गत ही करना होता है । अतः वर्तमान पीढ़ी की उत्पादन क्षमता को जानना, चयन प्रक्रिया का एक मुख्य पहलू है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है कि मान लीजिये किसी झुण्ड की उत्पादन क्षमता [क] है । अब इस पीढ़ी में तीन मुख्य घटक होते हैं – मृत्यु, बिक्री व चयन। इन तीनों घटकों का अपना अपना महत्व है। सबसे पहले हमारे शूकर पालकों को ऐसा प्रबंधन सुनिश्चित करना चाहिये जिससे शूकर झुण्ड में 10% अथवा उससे कम की मृत्यु दर हो। जो शूकर मरने के बाद बचे हैं वही बिक्री या चयन हेतु उपलब्ध रहेंगे। अब शूकर पालक भाइयों को एक समय के बाद इन शूकरों की बिक्री भी करनी होगी, जो कि उनके आय का जरिया है और आने वाली पीढ़िओं मे उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी के लिए वर्तमान झुण्ड में चयन भी करना है। अब सबसे महत्वपूर्ण बात जो एक शूकर पालक को सोचना है वो यह है कि चयन प्रक्रिया कब करनी है ? बिक्री के बाद या बिक्री से पहले ?

हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि अब झुण्ड में से सर्वप्रथम चयन प्रक्रिया अपनायी जाएगी उसके बाद ही बिक्री का कार्य किया जाएगा । क्योंकि कोई भी खरीददार हमेशा स्वस्थ और अच्छे जानवरों को ही खरीदना चाहता है, चाहे उसके लिये उसे अधिक मूल्य भी क्यों न चुकाना पड़े। ऐसे में अधिकतर शूकर पालक थोड़े

से ज्यादा पैसे के लालच में अपने उच्च उत्पादक क्षमता के शूकरों को अनजाने में बेच डालते हैं। अत: अब बाड़े में बचे निम्न उत्पादक क्षमता वाले शूकरों के चयन का ही विकल्प बचा रहने के कारण आगामी पीढ़ियो की उत्पादकता प्रायः कम ही हो जाती है। अतः दूसरा कारक – यानी ‘चयन’ शूकर अनुवांशिकी सुधार का एक मुख्य घटक है जिसको समझ लेना बहुत जरूरी है।

चित्र संख्या (1)

चयन प्रक्रिया के विभिन्न पड़ाव

चयन प्रक्रिया का पहला पड़ाव शूकर के बच्चों को उनकी माँ से अलग करते समय यानि लगभग 3 महीने की उम्र पर शुरू होता है जिसके अन्तर्गत लगभग 70% मादा एवं 30% नर शूकरों का चयन करना चाहिए। जबकि चयन का दूसरा पड़ाव 8 महीने की उम्र पर प्रारम्भ होता है जिसमें कम से कम हर 20 मादाओं पर 1 स्वस्थ नर शूकर की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है। साथ ही साथ हमें यह भी देखना होगा कि कम से कम एक अतिरिक्त बीजू शूकर एवं झुण्ड में कम से कम 5 वंशवेलों के गुणसूत्र बने रहें।

समागम – एक बार जनक शूकरों का चयन कर लेने के बाद, चयनित नर मादाओं में समागम को अंजाम दिया जाता है। परन्तु समागम करते समय हमारे शूकर पालकों को ध्यान रखना चाहिए कि समागम जोड़ा अलग –अलग वंशवेलों के ही हों। इस तरह शूकर पालक आने वाली पीढ़ी में अंतःप्रजनन(इंब्रीडिंग) की समस्या से निपट सकते हैं।

इस चयन प्रक्रिया से क्या फायदे होंगे ?

इस चयन प्रक्रिया को अपनाने से चयनित मादाओं की उत्पादन क्षमता झुण्ड की उत्पादन क्षमता से अधिक होगी जबकि चयनित नर की उत्पादकता चयनित मादाओं की उत्पादकता से अधिक होगी, क्योंकि इस प्रक्रिया में नर शूकरों को अधिक **चयन तीव्रता** से गुजरना पड़ता है। इस चयन प्रक्रिया को पूरी करने के बाद अब हमारे शूकर पालक आराम से बचे हुये शूकरों की बिक्री कर सकते हैं जिससे मूलतः निम्न क्षमता वाले शूकर ही झुण्ड से बिक्री द्वारा विस्थापित होंगे।

यदि उपरोक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त को ध्यान मे रखते हुए हमारे शूकर पालक भाई, शूकर पालन का व्यवसाय करते हैं तो निश्चित रूप से शूकर पालन एक “सतत एवं लाभदायक ” व्यवसाय बना रहेगा।

भेड़ एवं बकरी के दूध की पीसीआर आधारित तकनीक से शुद्धता एवं आपस में मिलावट की पहचान

अमरसिंह मीणा, राजीव कुमार एवं अरूण कुमार

भाकृअनुप - केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, मालपुरा-304501 (राजस्थान)

आधुनिक जीवन शैली के कारण मानव प्रतिदिन विभिन्न प्रकार के असंक्रामक बीमारियों से घिरता जा रहा है। मानव के जीवन में नियमित शारीरिक श्रम की कमी, अत्यधिक मानसिक तनाव तथा खानपान में उपयोग में ली जाने वाली खाद्य पदार्थो में मिलावट से अनेक गम्भीर समस्या पैदा हो रही है। रोजाना नयी-नयी वैज्ञानिक खोजों से मानव स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद कारक का पता लगाया जा रहा है। कुछ कारकों का तो मानव स्वंय के स्तर पर भी सजगता से निवारण कर सकता है। लेकिन खाद्य-पदार्थो में मिलावट आजकल एक देशव्यापी समस्या बन गयी हैं। जिसमें दैनिक उपयोग में आने वाली विभिन्न पशुधन के दूध में भी मिलावट एक आम समस्या हो गयी है। पशुधन की प्रजाति आधारित उत्पाद जैसे दूध एवं इससे विकसित डेयरी उत्पादों (पनीर, दही, छाछ, मावा, इत्यादि) की शुद्धता एवं उनमें मिलावट की पहचान करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि हर प्रजाति के पशु के दूध में कुछ खास तरह के गुण मौजूद रहते हैं, जिसके कारण ग्राहक अपनी दैनिक खानपान में विशिष्ट पशु के दूध को ही तवज्जो देता हैं। आजकल विश्व के अनेकों देशों एवं भारत में किसी विशिष्ट पशुधन प्रजाति के दूध तथा उसके तैयार डेयरी उत्पादों के प्रति बहुत मांग रहती हैं। जिस कारण अधिक महँगे दूध में सस्ता एवं कम मांग वाले पशुधन प्रजाति के दूध को मिलाकर निर्मित डेयरी उत्पादों को अधिक दामों में बेचना आजकल आम हो चला हैं। भारत में भी पशुधन प्रजाति आधारित दूध मांग प्रतिदिन बढती ही जा रही है। जैसे आजकल आधुनिक जीवनशैली के कारण होने वाली असंक्रामक रोगों से बचाव के लिए देशी नस्ल की गायों का दूध तथा उससे निर्मित डेयरी उत्पादों की शहरी क्षेत्रों में बहुत मांग रहती हैं। इसी प्रकार डेंगू बुखार के समय छोटे से बडें शहरों, कस्बों, तथा गाँवों में शुद्ध बकरी के दूध की मांग उपलब्धतता के अनुपात में बढ़ जाती हैं, तथा अभी भी गॉवो में बुजुर्ग लोगों के द्वारा बकरी के दूध को छोटे बच्चों के लिए अधिक उपयुक्त कहा जाता हैं, क्योंकि बकरी का दूध छोटे बच्चों के लिए सुपाच्य तथा अनेकों गुणों युक्त होता है जिसे बच्चे आसानी से पचा जाते हैं। भेड़ के दूध की मालिश जोडों के दर्द में आराम दिलाता है। विशिष्ट रासायनिक एवं औषधिय गुण के कारण आजकल जाति विशिष्ट दूध तथा उसके डेयरी उत्पादों की मांग उनके उपलब्धता से ज्यादा है। अभी डेयरी संस्थाओं के द्वारा दूध केवल वसा के प्रतिशत मात्रा के आधार पर ही खरीदा जाता हैं और इसी से इसका मूल्य निर्धारण होता है। जबकि दूध के अन्य घटको जैसे प्रोटीन, मिनरल्स, विटामिन्स तथा अन्य अवयव में भी अन्तर मिलता है। इसलिए पशुधन की विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण, पालन तथा किसानों को अतिरिक्त आमदनी के लिए उनसे मिलने वाले दूध की कीमत पशुधन की प्रजाति विशिष्ट होना अनिवार्य हो गया है। जिससे उन पशुधन प्रजाति के दुध का भी उपयोग किया जा सके। इससे हर तरह के पशुधन की प्रजाति के दूध की उनके पोषण तथा अन्य औषधीय गुण के आधार पर मूल निर्धारण होने से पशुधन विशिष्ट दूध की बिक्री तथा पहचान मिलने में मदद मिलेगी। राजस्थान में ऊँट का दूध भी अलग से एकत्रित कर उसको ऊँट के दूध के नाम से ही बेचा जा रहा हैं। तथा इसकी मांग भी विगत कुछ वर्षो से बढती जा रही हैं। इसी प्रकार कुछ डेयरी संस्थायें बकरी के दूध को एकत्रित/भंडारण करती हैं जिससे विभिन्न प्रकार के डेयरी तथा सौन्दर्य उत्पादों का निर्माण होता है। भेड़ तथा बकरी के दूध, दूध पाउडर, तथा डेयरी उत्पादों की यूरोप ,चीन, अफ्रीका तथा अरब देशों में बहुत मांग रहती है। भेड़ एव बकरी के दूध से निर्मित पनीर की दुनियाभर में विभिन्न व्यापारिक नाम से बिकते है। अभी भारत में भी मवेशी की प्रजाति विशिष्ट दूध एवं उसके उत्पादों की मांग बढती जा रही है। सरकारी संस्थाओं, एनजीओ तथा डेयरी संस्थाओं द्वारा प्रजाति विशिष्ट दूध तथा उसके अन्य उत्पादों के अलग से खरीदने तथा उत्पादों का निर्माण के मांग भी सरकार से की जा रही है।

सरकार के नियंत्रण, व्यापार, मानव स्वास्थ्य, पशु संरक्षण तथा कुछ धार्मिक वजहों से पशुधन की प्रजाति विशिष्ट दूध की पहचान महत्वपूर्ण है। दूध तथा इससे निर्मित डेयरी उत्पादों की पहचान के लिए बहुत सी तकनीकों जैसे इलेक्ट्रोफोरेसिस तथा क्रोमेटोग्राफी का उपयोग किया गया। लेकिन भेड़ एवं बकरी तथा गाय एवं भैंस जो कि एक दूसरे से आंनुवंशिक रूप बहुत पास है उनके दूध को इलेक्ट्रफोरेटिक तकनीक से पहचाना नहीं जा सकता है। यद्यपि क्रोमेटोग्राफी तकनीक जो कि पशुधन के विभिन्न प्रजाति के वसीय अम्लों की प्रतिशतता में अन्तर के द्वारा अलग-अलग प्रजाति के दूध को पहचाना जा सकता है लेकिन यह तकनीक में बहुत ही जटिल श्रमसाध्य (लंबोरियस) पर आधारित है। वर्तमान में डीएनए आधारित तकनीक जैसे पॉलीमरेज चैन रिएक्शन को पशुधन की प्रजाति विशिष्ट उत्पादों (दूध, मांस, एवं बालों आदि) को पहचान के लिए उपयोग कर सकते हैं। जब मवेशी के दूध को निकाला जाता है। तो उसके साथ उसके स्तन ग्रन्थि की कायिक कोशिकाओं (10^4 से 10^6/एमएल) का भी स्त्राव दूध के साथ होता हैं। यही कायिक कोशिका कच्चे, उबले हुए एवं उससे निर्मित डेयरी उत्पादों में भी मौजूद रहती है। प्रयोगशाला में इन कायिक कोशिकाओं से एक निश्चित मात्रा तक डीएनए प्राप्त होता है। मवेशी के जीनोमिक डीएनए में मौजूद माइट्रोकान्ड्रियल डीएनए से पशुधन की प्रजाति विशिष्ट आण्विक चिन्हको से प्रजाति विशिष्ट शुद्ध दूध तथा उसमें विभिन्न मवेशी की प्रजाति के दूध की मिलावट की पहचान सम्भव है। यह तकनीक बहुत ही संवेदनशील है तथा इसके परिणाम पुनरावर्तित होते है। इस तकनीक से मूल्य सवंर्धित उत्पादों (जैसे पनीर, दही, छाछ, आदि) से भी उनकी प्रजाति विशिष्ट दूध से बनाने का पता कर सकते है। यूरोप तथा विश्व के विभन्न देशों में भेड़ एव बकरी के शुद्ध दूध से बने उत्पाद का व्यापारिक स्तर पर व्यापार होता है। इस तकनीक का उपयोग पशुधन की प्रजाति विशिष्ट दूध से निर्मित डेयरी उत्पाद आदि गुणवता बनाये रखने में उपयोग किया जा सकता है।

डीएनए की प्राप्ति- भेड़ एवं बकरी के दूध को 15-50 एमएल सैन्ट्रीफ्यूज ट्यूब में सुबह या शाम के समय एकत्रित कर सकते हैं। ततपश्चात उसको प्रयोगशाला में 2500 आरपीएम पर 10-15 मिनट के लिए सैन्ट्रीफ्यूज किया जाता है, तथा ऊपरी वसा की परत को पीपेट की सहायता से हटा दिया जाता हैं। दूध में उपस्थित कायिक कोशिका जो नीचे ट्यूब में जम जाती हैं उसको दो से तीन बार 2500 आरपीएम पर 10-15 मिनट तक सैन्ट्रीफ्यूज करके धोया जाता हैं। फिर इन कोशिकाओं से व्यावसायिक रूप से उपलब्ध रक्त डीएनए किट से जीनोमिक डीएनए निकाला जाता है। जिसका मात्रात्मक एवं गुणात्मक मापन स्पेक्ट्रोफोटोमीटर एवं ऐगरोस जैल (0.8 प्रतिशत) पर किया जाता है। नैनोड्रोप पर सैम्पलों का 260/280 अनुपात 1.5 से 1.8 के बीच पाया जाने पर आगे उपयोग मे लिया जाता है तथा 0.8 प्रतिशत ऐगरोस जैल पर उत्तम गुणवता वाले डीएनए की पहचान की जाती है।

पीसीआर से पहचान

बकरी एवं भेड़ के माइट्रोकाड्रिया के 12 एस एवं 16 एस राइबोसोमल आरएनए की अनुक्रम के आधार पर पीसीआर आरम्भक (प्राइमर) बनाये गये (बोटेरो एट आल; 2003)। पीसीआर के लिए 15 माइक्रोलीटर के अभिक्रिया मिश्रण में 1-एक्स पीसीआर बफर, 1.5 मिलीमोल्स मैग्नीशियम क्लोराइड, 0.3 माइक्रोमोल्स प्रत्येक अग्रवर्ती एवं प्रतिवर्ती प्राइमर, 0.2 मिलीमोल्स डीऑक्सी राइबो न्यूक्लियोटाइड ट्राइफास्फेट, 1 ईकाई टैंक डीएनए पॉलीमरेज एन्जाइम एवं 50-80 नैनोग्राम बकरी एवं भेड़ का जीनोमिक डीएनए (टेम्पलेट) था। यह अभिक्रिया मिश्रण भेड़ एवं बकरी के एकल (Simplex) पीसीआर के लिए बनाया गया। डुप्लेक्स (Duplex) पीसीआर के लिए 30 माइक्रोलीटर अभिक्रिया मिश्रण में 1-एक्स पीसीआर बफर, 1.5 मिलीमोल्स मैग्नीशियम क्लोराइड, 0.3 माइक्रोलीटर प्रत्येक आग्रवर्ती एवु प्रतिवर्ती भेड़ एवं बकरी के प्राइमर, 0.2 ईकाई टैक डीएनए पॉलीमरेज एन्जाइम एवं 75 नैनोग्राम (समान अनुपात में) भेड़ एवं बकरी के दूध का जीनोमिक डीएनए मिश्रण लिया गया। धनात्मक नियंत्रण के लिए समान अनुपात में भेड़ एवं बकरी के रक्त से निकाले गए जीनोमिक डीएनए का भी पीसीआर अभिक्रिया के लिए उपयोग किया गया। अभिक्रिया मिश्रण को पीसीआर मशीन में निम्नलिखित तापमानीय परिस्थितियों में चलाया गया। प्रारम्भिक विकृतीकरण 94°C तापमान पर 5 मिनट, फिर 35 चक्रीय तापमान क्रम में क्रमशः विकृतीकरण 94°C तापमान पर 30 सैकण्ड, एनीलिग 55°C तापमान पर 1 मिनट एवं विस्तारण 72°C तापमान पर 1 मिनट किया गया। अन्तिम विस्तारण 72°C

तापमान पर 5 मिनट के लिए किया गया। तापमान चरण पूरा होने पर पीसीआर मशीन में संश्लेषित मिश्रण की जॉच 3 प्रतिशत ऐगरोस जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस पर ज्ञात आकार के डीएनए चिन्हक (100 बेसपेयर एवं 50 बेसपेयर) के साथ की गई (चित्र 1 एवं 2)।

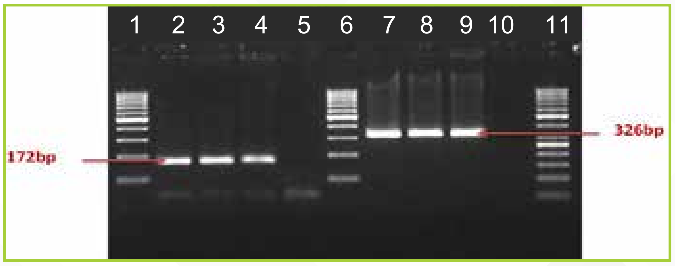

चित्र:-1. भेंड़ एवं बकरी के माइट्रोकोन्ड्रियल चिन्हक का 3 प्रतिशत ऐगरोस जैल ईलक्ट्रोफोरेसिस से प्राप्त बैन्डिग पैटर्न। 1, 6 व 11 : 100 एवं 50 बेसपेयर निश्चित आकार के चिन्हक; 5, 10: नेगेटिव कंट्रोल सैम्पल बिना जीनोमिक डीएनए के; 1 से 2 (दूध से) 3 (रक्त से) भेड़ विशिष्ट 172 बेसपेयर पीसीआर उत्पाद; 7, 8 (दूध से) 9 (रक्त से) बकरी विशिष्ट 326 बेसपेयर पीसीआर उत्पाद (एकल पीसीआर)

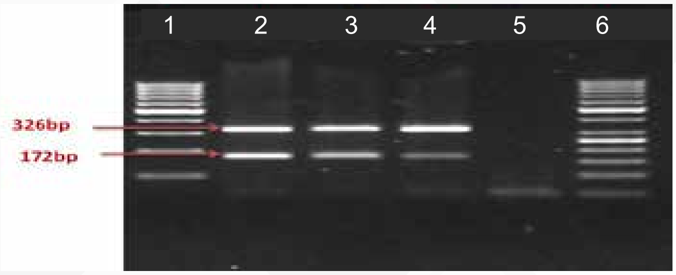

चित्र:- 2 3 प्रतिशत ऐगरोस जैल पर डुप्लेक्स पीसीआर के पीसीआर उत्पाद। 2 से 3 (भेड़ एवं बकरी के दूध से); 4 (भेड़ एवं बकरी के रक्त से) 326 एवं 172 बेसपेयर का पीसीआर उत्पाद; 1 एवं 6: 100 बेसपेयर एवं 50 बेसपेयर निश्चित आकार के चिन्हक; 5: नेगेटिव कंट्रोल।

भेड़ एवं बकरी के माइट्रोकोन्ड्रियल डीएनए आधारित आण्विक चिन्हक में पशुधन की जाति विशिष्ट डीएनए अनुक्रम पाया जाता है, जो कि पीसीआर के लिए आवश्यक प्रारम्भक को बनाने के लिए जरूरी हैं। इससे पशुधन की विभिन्न प्रजाति के उत्पाद जैसे मॉस, दूध, पनीर, एवं पशु फाइबर आदि की पहचान की जा सकती है। एकल पीसीआर आधारित भेड़ के दूध से प्राप्त डीएनए में से 12 एस एवं 16 एस राइबोसोमल आरएनए अनुक्रम से 172 बेसपेयर (bp) का पीसीआर उत्पाद (आवर्धन) तथा इसी प्रकार बकरी के दूध से प्राप्त डीएनए में से 12 एस राईबोसोमल आरएनए अनुक्रम का 326 बेस- पेयर (bp) का पीसीआर उत्पाद (आवर्धन) प्राप्त हुआ। जब दोनों प्रजातियों (भेड़ एवं बकरी) के दूध के डीएनए को 1:1 अनुपातिक मिश्रण करने पर डुप्लेक्स (Duplex) पीसीआर से एक ही अभिक्रिया में दोनों प्रजाति के माइट्रोकोन्ड्रियल डीएनए आधारित पीसीआर उत्पाद (326 एवं 172 बेसपेयर बैण्ड का आवर्धन) प्राप्त हुआ। दोनों तरह के मवेशीयों के दूध के डीएनए की पीसीआर अभिक्रिया में समान मात्रा होने के कारण पीसीआर उत्पाद की आवर्धन क्षमता समान थी। इस प्रकार से पीसीआर आधारित तकनीक से आसानी से 5-10 प्रतिशत तक भेड़ एवं बकरी के दूध की आपस में मिलावट को एक दिन के भीतर प्रयोगशाला में जॉच की जा सकती हैं। हमने प्रयोगशाला में भेड़ एव बकरी के दूध तथा पनीर से उत्तम गुणवंता का डीएनए को निकालने में सफलता प्राप्त की है तथा उनको पीसीआर द्वारा पहचान की तकनीक को विकसित किया है।

निष्कर्ष

व्यापारिक स्तर पर पशुधन की प्रजाति विशिष्ट दूध एवं उसके डेयरी उत्पादों की शुद्धता बनाये रखना उपभोक्ता के लिए किसी उत्पाद की पहचान के लिए आवश्यक हैं। विश्व के विभिन्न देंशो में भेड़ एवं बकरी के दूध तथा इसमें निर्मित डेयरी उत्पाद (जैसे पनीर) की बहुत ज्यादा मांग एवं खपत रहती हैं। यूरोप के विभिन्न देशों ने बकरी के दूध की प्रोटीन प्रतिशत के आधार पर विभिन्न डेयरी उत्पाद विकसित किये हैं। वर्तमान में विभिन्न औषधीय एवं पोषण के गुण के कारण हर पशुधन की प्रजाति के शुद्ध दूध तथा उसके डेयरी उत्पाद की मांग बढती जा रही है। इस मानक परीक्षण से पशुधन के विभिन्न प्रजाति के दूध एवं डेयरी उत्पादों की शुद्धता एवं गुणवत्ता बनाये रखने के लिए उपयोग में ले सकते हैं। इससे पशुधन की प्रजाति विभिन्न उत्पाद की अच्छी मांग के कारण पालक को अच्छा मुनाफा हो सकता हैं। जो कि भेड़ एवं बकरी पालन को बढावा एवं संरक्षण में भी मददगार साबित होगा।

संदर्भ

बोटेरो एम टी, सीवेरा टी, नूसीरा डी, रोसाटी एस, साची पी, एण्ड टूरी आर एम 2003; ए मल्टीप्लेक्स पॉलीमरेज चेन रिएक्शन फार की आइडेन्टीफिकेशन ऑफ काओ गोट एण्ड शीप मिल्क इन डेयरी प्रोड्क्टस /इन्टरनेशनल डेयरी जर्नल 13:277-282.

पशुपालन की दैनिक गतिविधियों के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका

इन्दु देवी, राज कुमार, रमेश चन्द्र शर्मा एवं अर्पिता महापात्रा

भाकृअनुप-केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसन्धान संस्थान, अविकानगर

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय रिपोर्ट (2018) तथा जनसंख्या जनगणना, (2011) के अनुसार भारत में महिलाओं की जनसंख्या 48.46% ज्ञात हुई तथा उनकी साक्षरता दर 64.63% दर्ज की गई जब की पुरूषों मे यह 16.25% की अधिकता के साथ 80.88% दर्ज की गई। भारत एक कृषि प्रधान देश है जहॉ रोजगार की कुल आवश्यकताओं की पूर्ति में कृषि क्षेत्र 50% से अधिक योगदान करता है। इस क्षेत्र में लगभग 70% कृषि श्रमिक, 80% खाद्य उत्पादक तथा 10% लोग जो बुनियादी खाद्य पदार्थो की प्रकिया करते है (डब्लू.डब्लू.डब्लू.विकीजेंडर.ऑर्ग.), वे महिलाएं है जो कृषि उत्पादन में दो-तिहाई से अधिक कार्यबल प्रदान करती है। कृषि में पशुधन क्षेत्र एक अभिन्न अगं है जो ग्रामीण आजीविका के लिए एक प्रमुख संपत्ति है तथा कुल कृषि जीडीपी में 25.8% योगदान करता है (पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग रिपोर्ट, 2018) और यह क्षैत्र अधिकतर महिलाओं के हाथों में है। वास्तव में, पशुपालन नारीकृत हो रहा है। भारत के डेयरी क्षेत्र में 1.5 करोड़ पुरूषों के मुकाबले लगभग 7.5 करोड़ महिलाएं पशु पालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है (ठाकुर और चंदर, 2006) लेकिन उनके योगदान को अभी तक उचित स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वे हकदार हैं। वे हमेशा अदृश्य कर्मी बनी रहती हैं एवं विभिन्न कारणों से महत्पूर्ण प्रौद्योगिकी, ऋण, आमदनी आदि सूचनाओं और सेवाओं तक नहीं पहुॅच पाती।

पशु पालन में महिलाओं का योगदानः- भारत में महिलाएं अपने कुल समय का लगभग एक तिहाई समय कृषि गतिविधियों के लिए योगदान करती है। ये आंकड़े देश के विभिन्न क्षेत्रों मे अलग हो सकते है, पश्चिम बंगाल के लिए ये आंकडे 10% और राजस्थान के लिए 40% से अधिक दर्ज किये गए है। कम उम्र की महिलाएं अधिक उम्र की महिलाओं की तुलना में कृषि को अधिक समय देती है। राजस्थान की 14-19 आयु की लड़कियों के लिए यह आंकड़ा 60% पाया गया है। डेरी पालन मे महिलाएं एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, और विभिन्न गतिविधियों जैसे भोजन, पानी, दूध दोहने, आवास, प्रजनन, पशु स्वास्थ्य देखभाल एवं विपणन आदि में प्रतिदिन लगभग 294.34 मिनट बिताती हैं (थिरुनावुक्कारासु और क्रिस्टी, 2002)। पशुधन प्रबंधन विभिन्न क्षेत्रों के लिए उनका योगदान निम्नानुसार है (मिश्रा और अन्य, 2008)-

1. **खाद्य प्रबंधनः-** पहाड़ी क्षेत्रों में महिलाएं दूर-दराज से चारा इकट्ठा कर परिवहन करती हैं। वे स्थानीय खाद्य संसाधनों के बारे में जानकारी रखती हैं। तथा अपने पशुओं को खिलाने के लिए लाभकारी घास और पेंड़ो की पहचान करने में सक्षम हैं। (चित्र 1ः महिला मशीन द्वारा हरा चारा काटते हुए)

तालिका: खाद्य प्रबंधन में लिंगानुसार योगदान

गतिविधियाँ	केवल महिलाएं (%)	केवल पुरुष (%)	दोंनों (%)
खेतों/सामुदायिक भूमि में चारा संग्रह	88	0	13
बजार से चारा और फीड की खरीद	17	70	13
पशुओं को खिलाना	79	8	13
पशुओं को पानी पीलना	38	52	11
पशुओं की चराई	8	79	13

2. **सामान्य प्रबंधनः-** महिलाएं पशुओं के सामान्य प्रबंधन को सभी गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जैसे जानवरों की सफाई और उनकी शाला की देख रेख, दूध दोहना, उपले

तैयार करना आदि जिसका वर्णन निम्न तालिका में किया गया हैः (चित्र 2: महिला भैंस का दूध निकालते हुए) (स्त्रोतः डब्लूए.डब्लूए.डब्लूए.लाइवस्टॉकपंजाब.गोव.पीके)

तालिका: सामान्य प्रबंधन में लिंगानुसार योगदान

गतिविधियॉं	प्रतिशत योगदान
बर्तनो की सफाई	100%
नवजात बछड़े की देखभाल	100%
शाला की सफाई	89.16%
कम्पोस्ट बनाना	73.33%
पशुओं को दुहना	70-90%
बछड़ा को माँ से प्रथक कर उसका प्रबंधन	66.66%
गोबर का निपटान या उपले तैयार करना	86.66%

3. **स्वास्थ्य और प्रजनन प्रबंधन:-** बीमार जानवरों की देखभाल, गर्भावस्था के दौरान देखभाल और पारंपरिक स्वास्थ्य जैसी गतिविधियां मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा की जाती हैं। हालांकि, घर के बाहर जाने से संबधित गतिविधियों को मुख्य रूप से पुरूषों द्वारा प्रबंधित किया जाता हैः (चित्र 3ः महिला भेड़ों को दवाई पिलाते हुए)

तालिका: स्वास्थ्य और प्रजनन प्रबंधन में लिंगानुसार योगदान

गतिविधियॉं	केवल महिलाएँ (%)	केवल पुरूष (%)	दोंनों (%)
पशुओं के लिए पारंपरिक स्वास्थ्य देखभाल	67	21	13
पशु का टीकाकरण और अस्पताल ले जाना	0	100	0
पशुओं का प्रजनन	0	100	0

4. **प्रसंस्करण और विपणनः-** ग्रामीण महिलाएँ विपणन से संबन्धित कार्यो जैसे कि दूध बेचना, दूध से मूल्यवर्धित उत्पादन बनाना, पशुओं की खरीद और बिक्री करना आदि की तुलना में प्रसंस्करण गतिविधियों में अधिक भाग लेती है।

एक रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान में महिला दिन में औसतन 9.4 घंटे काम करती है जिनमें से वह 3.8 घंटे घरेलू कार्य, 1.5 घंटे पशुओं पर और 4.1 घंटे कताई में बिताती है।

तालिका: विपणन प्रबंधन में लिंगानुसार योगदान

गतिविधियॉं	केवल महिलाएँ (%)	केवल पुरूष (%)	दोंनों (%)
पशुओं की बिक्री	0	96	04
पशुओं की खरीद	0	100	0

महिलाओं के साथ पक्षपात:-

1. **मजदूरी में अतंर:-** हालांकि महिलाएं मजदूरी में पहले से कहीं अधिक कार्यरत हैं परंतु महिलाओं और पुरूषों द्वारा अर्जित मजदूरी में अतंर लगभग सभी देशों में जारी हैं। नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस. रिपोर्ट (2014) के अनुसार महिला और पुरुष की मजदूरी में अंतर पिछले दो दशकों में कम हो गया है पर अभी भी मनरेगा में महिला और पुरुष के औसत दैनिक वेतन में अंतर है (102 बनाम 112 रूपए)। कृषि संबंधित गतिविधियों के लिए भी महिलाओं का औसत वेतन पुरुषों के वेतन की अपेक्षा कम है (101.24 बनाम 168.83 रूपए)।
2. **महिलाओं की अस्वतंत्रता:-** भारत में महिला के अकेले बाहर जाने और किसी भी ग्राम सभा में भाग लेने की स्वतंत्रता में भारी कमी है। यह रवैया विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित किए जा रहे ग्राम जागरूकता शिविरों में महिलाओं की भागीदारी में बाधा डालता है। और इसी कारण उनके पशुपालन संबन्धित तकनीकी ज्ञान मे कमी रहती है। मनरेगा ने बडे पैमाने पर महिलायें कार्यरत है जिसमें महिलाओं की भागीदारी 83.3% परंतु यह उनके कौशल विकास में कोई योगदान नहीं करता।
3. **निर्णय लेने की स्वतंत्रता का अभाव:-** जैसा कि नीचे दी गई तालिका में बताया है, पशुपालन से संबन्धित लगभग सभी कार्यो मे निर्णय अधिकतर पुरूषों द्वारा ही लिया जाता है जबकि अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा निर्वहन किए जाते है (मिश्रा और अन्य, 2008)

तालिका: पशुपालन से संबन्धित कार्यो मे निर्णय लेने में लिंगानुसार योगदान

गतिविधियाँ	केवल महिलाएँ (%)	केवल पुरूष (%)	दोंनों (%)
जानवरों की नस्ल का चयन	33	67	0
शुष्क काल के लिए हरे चारे का भंडारण	88	8	4
अधिशेष सूखे चारे की बिक्री	29	63	8
बाजार से सूखे चारे की खरीद	4	93	6
बाजार में हरा चारा बेचना	45	47	8
पशुओं की बिक्री	13	82	6
दूध बेचना	47	43	10

पशुपालन में महिलाओं की समस्याएँ:-

महिलाएं पशुपालन गतिविधियों में पुरूषों की तुलना में दोगुना से अधिक समय लगाती है, लेकिन उन्हें विभिन्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ मुख्य रूप से लैंगिक पूर्वाग्रह, समाज एवं संस्कृति और स्वयं महिलाओं के रवैये के कारण हैं, क्योंकि वे खुद को कम आंकती हैं। आज के समय भारत की महिलाओं के पास प्रौद्योगिकी और ज्ञान की पहुंच कम है, महिला किसान संगठनों की कमी है तथा तकनीकी ज्ञान के लिए उनका दृष्टिकोण सीमित हैं। महिलाएं गैर-मशीनीकृत कृषि कार्य अधिक करती हैं। जो उन पर अधिक बोझ डालता है। पशुपालन की आर्थिक संबन्धित गतिविधियों जैसे ऋण लेना, पशुओं की खरीद और बिक्री, जानवरों का चयन आदि में उनकी भागीदारी कम हैं। पारंपरिक पितृसत्तात्मक प्रकार की भारतीय संस्कृति के कारण, आर्थिक संबंधित निर्णय पुरूषों द्वारा ही लिया जाता है। इसके अलावा खेतिहर महिलाओं का प्रगतिशील किसानों, अधिकारियों और बैंकों से कम संपर्क रहता है। ये सभी विभिन्न कारण महिलाओं की निर्णय लेने में निम्न भागीदारी के कारक हो सकते हैं।

तालिका:- पशुपालकों का पशु उत्पादन के बारे में जानकारी का ज्ञान अंतर (पांडेय और अन्य, 2014)

	संबन्धित क्षेत्र में ज्ञान (%)	संबन्धित क्षेत्र के ज्ञान में अंतर (%)
पशुओं के आवास व सफाई से सम्बंधित	25.00	75.00
पशु के खाद्य प्रबंधन से सम्बंधित तकनीकी	22.33	77.67
चारा पैदा करने से सम्बंधित प्रबंधन	8.00	92.00
प्रजनन प्रबंधन	32.00	64.00
स्वास्थ्य प्रबंधन	34.00	66.00
संपूर्ण प्रबंधन	40.67	59.33

तलिका:- विभिन्न पहलुओं में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याएं

उत्तरदाताओं द्वारा समस्याओं का सामना	प्रतिशत
दुधारू पशुओं की उच्च लागत, चारा, श्रम, ऋण पर ब्याज, पशु शाला निर्माण संबन्धित आर्थिक समस्या	82.13
शुद्ध पशु नस्ल, उपलब्ध पशुओं की उच्च लागत, चिकित्सीय सहायता, गुणवत्ता चारा संबन्धित आपूर्ति की समस्या	77.50
कोल्ड स्टोरेज की अनुपलब्धता, गॉव से सहकारी समिति तक परिवहन की कमी, दूध उत्पादों की बनाने की उच्च लागत, दूध की कम कीमत से संबन्धित विपणन समस्या	52.00
अन्य विविध समस्याएँ जैसे डेयरी प्रबन्धन, चारा और स्वास्थ्य प्रबन्धन में वैज्ञानिक ज्ञान की कमी, गांवों में चिकित्सा सुविधाओं और बुनियादी सुविधाओं की कमी, पशु रखने में कम रूचि	74.66

5. **महिलाओं को प्रशिक्षण की आवश्यकता:-** प्रशिक्षण ज्ञान एवं कौशल में एक व्यवस्थित सुधार प्रदान करता है जो बदले

में प्रशिक्षुओं को दिए गए कार्यो को प्रभावी ढंग व कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने में मदद करता हैं। पशु पालन से संबन्धित विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी को देखते हुए स्पष्ट है कि उनकी पूर्ण क्षमता तभी ऑकी जा सकती है जब महिलाओं को आवश्यक प्रशिक्षण, तकनीकी ज्ञान और सहायता मिले। उन्हें पशु शाला (73.33%), कृमिनाशक (83.33%), स्वच्छ दूध उत्पादन (70%), पशुओं के संतुलित आहार (60%) के संबन्ध में प्रशिक्षण की आवश्यकता हैं (पांडेय और अन्य, 2014)। गुजरात के पांच गांवों से ज्ञात महिला किसानों (द्त्र150) की प्रशिक्षण की आवश्यकताएं निम्न प्रकार हैं (कथिरिया और अन्य, 2014)।

तालिका:- डेयरी फार्मिंग में महिलाओं की प्रशिक्षण आवश्यकताएं

पशुपालन प्रथा	प्रशिक्षण की आवश्यकता (%)
पशु स्वास्थ्य और रोग नियंत्रण सावधानियां	92.00
पशु का दूध उत्पादन	88.00
पशु स्वच्छता और प्रबन्धन	85.33
दुधारू पशुओं के सामान्य रोग	83.33
गर्भावस्था के दौरान पशुओं को खिलाना	78.67
सूखे भूसे का प्रबंधन	76.67
साइलेज की तैयारी	75.67
संतुलित आहार तैयार करना	73.33
रिकॉर्ड रखने का महत्व	62.00
हे बनाने की विधि एवं तैयारी	68.00
पशु प्रजनन और देखभाल	62.67
चारा काटने वाली मशीन का प्रयोग करना	57.33
अच्छी गुणवत्ता वाले चारे का उत्पादन	50.00
नवजात बछडो़ को दूध पिलाना और उनकी देखभाल करना	48.67
भैंस की उन्नत नस्लों की फीडिंग और देखभाल	44.33
जानवरों की देखभाल और प्रबंधन	39.33
पशुओं को खिलाना	31.33
दुग्ध उत्पादों की तैयारी	28.00
दूध बेचना	22.00
दूध का विपणन	18.37

विभिन्न अध्ययनों के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से बताते हैं कि कौशल ज्ञान, क्षमता, ग्रामीण महिलाओं की आय में सुधार के लिए उनका प्रशिक्षण अति आवश्यक है।

सामान्य अनुशंसा

पशुधन उत्पादों की तेजी से बढ़ती मांग महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए अवसर पैदा कर रही है। इसके अलावा, पशुधन आधारित विकास कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने के लिए पशुधन क्षेत्र, पशु चिकित्सा शिक्षा, अनुसंधान और सेवा वितरण प्रणालियों में लैंगिक पक्षपात को दूर करने की आवश्यकता है।

महिला सशक्तिकरण के निम्न सात मुख्य आधार हैं

निर्णय लेना, ज्ञान तक पहुंच, आत्मसम्मान, आर्थिक सुविधा, पशुधन सेवाएं, सामाजिक समर्थन, बाजार तक पहुंच और परिसंपत्ति स्वामित्व।

1. महिलाओं को यह सुविधा होनी चाहिए कि वे पशुधन संबंधी उद्यम स्थापित करने में सक्षम हों। पशुधन व्यवसाय को पेशे के रूप में शुरू किया जाना चाहिए।
2. महिला आधारित कृषि संस्थाएं एवं सहकारी समितियॉ उसके जीवन को सकारात्मक रूप से बदलने में सबसे महत्वपूर्ण हो सकती है।
3. पशुधन पर महिलाओं की भूमिका पर ध्यान देने के लिए व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है।
4. पुरूषों की तुलना में महिलाओं की पशुपालन के विषय में अधिक ज्ञान और रूचि हो सकती है। इसलिए, पशुधन के संबंध में उनके लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने चाहिए।
5. महिला प्रशिक्षकों के माध्यम से सामुदायिक स्तर पर महिलाओं के प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की जानी चाहिए।

निष्कर्ष:-

भारतीय पशुधन अर्थव्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है परंतु उनमें तकनीकी ज्ञान की कमी है। आमतौर पर यह कहा जाता है कि गरीबी में एक महिला का चेहरा छिपा होता है। यदि कोई महिला सशक्त होती है तो उस घर की आर्थिक, सामाजिक और पोषण संबंधी स्थिति स्वतः सशक्त हो जाती है। महिलाओं की

बाधाओं को समझने और भारत के विभिन्न हिस्सों में महिलाओं को सशक्त बनाने की संभावनाओं की व्यापक भागीदारी और उनके ज्ञान की कमी को ध्यान में रखते हुए अगर उन्हे सशक्त किया जाता है तो निश्चित रूप से उनकी आय और समृद्धि में बढ़ोतरी होगी।

संदर्भ

सेंट्रल स्टेटिस्टिक्स ऑफिस रिपोर्ट. 2018. वीमेन एंड मेन इन इंडिया (ए स्टैटिस्टिकल कंपाइलेशन ऑफ जेंडर रिलेटेड इंडीकेटर्स इन इंडिया). मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.

डब्लू.डब्लू.डब्लू.विकीजेंडर.ऑर्ग. (एचटीटीपीः//डब्लु.डब्लु.डब्लु. विकीजेंडर.ऑर्ग)

पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग वार्षिक रिपोर्ट, 2018.

ठाकुर डी. और चंदर एम. 2006. जेंडर बेस्ड डिफरेंशियल एक्सेस टू इनफार्मेशन अमंग लाइवस्टॉक ओनर्स एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन हाउस होल्ड मिल्क प्रोडक्शन इन काँगड़ा डिस्ट्रिक्ट ऑफ हिमाचल प्रदेश. इंडियन जर्नल ऑफ डेरी साइंस. 59(6)ः 401-404.

थिरुनावुक्कारासु एम एंड क्रिस्टी जे. 2002. सोसिओ-इकनोमिक डाइमेंशन्स ऑफ फीमेल पार्टिसिपेशन इन लाइवस्टॉक रेअरिंगः ए केस स्टडी इन तमिलनाडु. इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एंड इकोनॉमिक्स. 57 (1).

मिश्रा एस, शर्मा एस, वासुदेवन पी, भट्ट आर के, पांडेय एस, सिंग एम, मीणा बी एस, पांडेय एस एन. 2008. जेंडर पार्टिसिपेशन एंड रोल ऑफ वोमेन इन लाइवस्टॉक मैनेजमेंट प्रैक्टिसेज इन बुंदेलखंड रीजन ऑफ सेंट्रल इंडिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रूरल स्टडीज. 15(1)ः 1-9.

नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस. 2014. एम्प्लॉयमेंट एंड अन्नएम्प्लॉयमेंट सिचुएशन इन इंडिया, एन एस एस रिपोर्ट नंबर 554(68.10.1), एन एस एस 68वां राउंड, जुलाई 2011 जून 2012 (मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स-प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया).

पांडेय एस, शर्मा पी, सत्यप्रिया एंड शर्मा आर के. 2014. कैपेसिटी बिल्डिंग ऑफ फार्म वीमेन इन लाइवस्टॉक रिअरिंग. आई.जी. एफ.आर. आई, झाँसी (उत्तर प्रदेश).

कथिरिया जे बी, सरदावा डी ऐ, सनेपारा डी पी, कबरिआ बी बी. 2014. ट्रेनिंग नीड्स ऑफ डेरी फार्मिंग वोमेन एंड कंस्ट्रेंट्स फैसेड बी रूरल वोमेनः ए केस स्टडी ऑफ गुजरात. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंस एंड वेटरनरी मेडिसिन. 2 (2).

शून्य खर्च में हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन: सफल पशुपालन के लिए तकनीकी विकल्प

धर्मेन्द्र कुमार[1] एवं राकेश रंजन[2]

[1]कृषि विज्ञान केंद्र बाँका, बिहार

[2]पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन संस्थान, पटना-800014 (बिहार)

पशुपालन आय कुल कृषि आधारित सकल घरेलु आमदनी का 12% है एवं छोटे और सीमांत किसान की आमदनी में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। हरा चारा पशु के लिए एक महत्वपूर्ण आहार है जिससे पोषक तत्व एवं मिनरल मिलते हैं जो दूध भी बढ़ाता है एवं साथ ही साथ पशु को स्वस्थ रखता है। दूध उत्पादन में कुल खर्च का 70-75% आहार में होता है जिसमे 15-20% खर्च हरे चारे पर होता है, इसलिए आहार के खर्च को कम करके पशुपालन में मुनाफ़ा बढाया जा सकता है। 8-10 लीटर दूध देने वाली पशु को 25-30 किलो हरा चारा, 4 किलो दाना एवं 4-5 किलो सुखा चारा मिलनी चाहिए. लेकिन हरे चारे की उपलब्धता धीरे धीरे कम होते जा रही है जिसके कारण पशुपालक केवल सुखा चारा एवं कुछ समय के लिए खेतो से निकलने वाले हरे घास पर निर्भर रहते है एवं छोटे किसान पशु को चरने के लिए दूर-दूर तक भेजते हैं जिसके कारण दूध उत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ रही है। पशु को प्रतिदिन कम से कम 10 किलो हरा चारा मिलना चाहिए जिससे उसकी विटामिन ए की जरूरत पूरी हो सकती है। लेकिन उपजाऊ जमीन की कमी एवं सिंचाई की व्यवस्था नहीं होने के कारण पशु को सालों भर हरा चारा नहीं मिल पाती है ख़ास कर शहरी क्षेत्रों में जहाँ बाजार की व्यवस्था होने के कारण पशुपालन बहुत सफल है लेकिन पशु को हरा चारा नहीं मिल पाती है। जिसके कारण बाँझपन की बीमारी ज्यादा होती है।

हरा चारे की उपलब्धता में कमी होने के कारण:

i. बहुत तेजी से शहरीकरण होने के कारण पशु को चरने के लिए जमीन की कमी.

ii. जमीन का दिन प्रतिदिन बिभाजन होने के कारण किसान के पास कम जमीन उपलब्ध होने से हरा चारा उत्पादन नहीं करते हैं.

iii. कम जमीन होने के कारण किसान की पहली इच्छा नकदी फसल एवं खाद्य फसल लेने की होती है।

iv. हरा चारा के लिए जमीन उपजाऊ होनी चाहिए एवं वहां सिचाई की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए, ऐसी जमीन पर कोई भी किसान नकदी एवं खाद्य फसल लेना पसंद करते हैं.

v. कुछ क्षेत्र में धान की फसल देर से लगने के कारण रबी हरा चारा लगाने समय ठंढ अधिक पड़ती है जिसके कारण अंकुरण बहुत कम हो पाती है एवं चारा तैयार होने तक में सिचाई की कमी हो जाती है जिसके कारण रबी का हरा चारा नहीं लग पाती है।

vi. छोटे एवं सीमांत किसान खरीफ में फसल से निकाले हुए साधारण घास ही अपने पशु को खिलाते हैं जिससे हरा चारा लगाने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं.

vii. सिंचाई की कमी मुख्य रूप से जायद एवं खरीफ में होती है, इसलिए जिनके पास सिंचाई की व्यवस्था होती है वो इस समय नकदी फसल लेना ज्यादा पसंद करते हैं चूँकि इसमे आमदनी अधिक है।

viii. फार्म में बाड़ नहीं लगा होता है इसलिए दूसरे पशु हरा चारा खा जाते हैं.

ix. मजदूर की कमी होने के कारण हरा चारा खेत से काट कर लाना, मशीन में कटना एवं पशु को खिलाने में काफी परेशानी होती है।

x. जंगली क्षेत्र में जमीन ज्यादा वन बिभाग की होती है, जो उपजाऊ होने के बाद भी वहां हरा चारा उत्पादन नहीं कर सकते हैं.

xi. कुछ क्षेत्र जहाँ पशुपालन बहुत विकसित है, वहां अधिक मांग होने के कारण भी कमी रहती है।

विकल्प:

आज के समय में पशुपालन में बहुत सारी समस्याएं हैं उसमे हरा चारा की अनुपलब्धता एक महत्वपूर्ण समस्या है। इसलिए किसान भी हरा चारा उत्पादन के लिए टिकाऊ तकनीकी विकल्प की आशा कर रहे हैं. हाईड्रोपोनिक तकनीक हरा चारा उत्पादन के लिए एक विकल्प के रूप में आई है। ग्रीनहाउस/ पोलिहाऊस में हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन करने की तकनीक विकसित की जा चुकी है लेकिन साधारण फार्म पर यह सफल नहीं हो पाती है चूँकि इसमे शुरुआत की लागत बहुत अधिक है। इसको ध्यान में रखते हुए हरा चारा उत्पादन के लिए शून्य खर्च में हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन की तकनीक विकसित की गयी है। यह एक ऐसी तकनीक है जिसमे केवल पानी एवं पानी में घुले पोषक तत्व के द्वारा बिना मिट्टी का हरा चारा उत्पादन की जाती है।

हाईड्रोपोनिक क्या है ?

हाईड्रोपोनिक दो शब्द हाईड्रो एवं पोनिक से मिलकर बना है, जिसमे हाईड्रो का मतलब होता है पानी एवं पोनिक का मतलब है काम करने वाला. हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन करने की ऐसी तकनीक है जिसमे केवल पानी से बिना मिटटी के, मुख्य रूप से वातावरण से संरक्षित रूप में किया जाता है। इस विधि में पानी में पौधे की वृद्धि के लिए उपयोगी संतुलित पोषक तत्व भी मिलाये जाते हैं. लेकिन हरा चारा उत्पादन केवल ताजा एवं शुद्ध पानी से भी की जा सकती है इसमे पोषक तत्व मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पोषक तत्व मिलाने से हरे चारे की मात्रा एवं पौष्टिकता में कोई वृद्धि नहीं आती है।

जब हम हाईड्रोपोनिक करते हैं तब उसमे केवल बीज, पानी एवं सूर्य की प्रकाश की केवल आवश्यकता होती है। ७-१० दिन मे जो पौधे तैयार होते हैं उसके लिए ऊर्जा बीज से ही मिल जाती है। जय,जौ, मकई,गेंहूँ, लोबिया, राईसबिन इत्यादि का हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन की जाती है। ज्वार का हाईड्रोपोनिक हरा चारा नही की जाती है चूँकि इसमे हाईड्रोसायनिक एसिड नामक जहर होने की संभावना होती है, जिससे पशु मर भी सकता है। मुख्य रूप से जब ज्वार पशु को ४५ दिन से पहले खिलाया जाता हो तब जहरीला होने की संभावना अधिक रहती है।

हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन क्यों करें:

अधिक पौष्टिक हरा चारा: हाईड्रोपोनिक हरा चारा में खेत में तैयार हरे चारे से 20-25% अधिक प्रोटीन मिलती है, एवं रेशा की मात्रा १३-१४% मात्र होती है। चूँकि इसमे हरा चारा के साथ- साथ बीज भी रहता है। विटामिन ए एवं ई की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता, जिससे पशुओं को बांझपन से बचाती है। पशु जल्दी गर्मी में आएगी

कम समय में उत्पादन: 10-12 दिन में हरा चारा तैयार हो जाती है। जिससे कम समय में हरा चारा की कमी को पूरा किया जा सकता है। जबकि खेत में लगाने पर हरा चारा उत्पादन में 45 दिन का समय लगता है।

पानी की बचत: हाईड्रोपोनिक तकनीक से हरा चारा उत्पादन करने पर 90-95% पानी की बचत होती है। चूँकि इसमे पानी कि केवल स्प्रे की जाती है। हाईड्रोपोनिक तकनीक में पानी की जरुरत 24-32लीटर/ किलो हरा चारा होती है जबकि खेत में लगाने पर एक किलो हरा चारा उत्पादन के लिए 276-713 लीटर पानी की जरुरत होती है।

कम जमीन की जरुरत: इसमे बहुत कम जमीन की जरुरत होती है, 500 वर्ग फिट यानी की 12*12*12 वर्ग फिट के कमरे में 1000 किलो हरा चारा उत्पादन की जा सकती है। जबकि पारंपरिक विधि से 5 एकड़ जमीन की जरुरत होती है। हरा चारा की इतनी मात्रा दूध देने वाली 25 गाय के लिए पर्याप्त है।

सालो भर हरा चारा उत्पादन: पशु के लिए सालों भर हरा चारा उत्पादन की जा सकती है, हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन पर विपरीत मॉनसून, प्राकृतिक आपदा का कोई प्रभाव नहीं होता है एवं घर में हरा चारा उत्पादन कर सकते हैं. भूमिहीन पशुपालक भी अपने पशु के लिए हरा चारा उत्पादन कर सकते हैं.

मजदुर की बचत: इसमे कम मजदुर एवं कम समय लगता है। प्रतिदिन २-३ घंटे काम करने की जरुरत होती है एवं इसमे ज्यादा कोई तकनीक नहीं है इसलिए मजदूर भी बिना कोई परेशानी के कर सकते है। जबकि

खेत में हरा चारा लगाने के लिए खेत की जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई, एवं हट्टी काटने से लेकर खिलाने में मजदूर की जरुरत होती है।

जैविक चारा: यह पूरी तरह जैविक हरा चारा है। इसमे केवल पानी लगता है, किसी तरह की कीटनाशक का उपयोग नहीं होता है। इसलिए इसकी दूध भी अच्छी गुणवत्ता की होती है।

» कम खर्च: इस तकनीक में ज्यादा यंत्र की भी आवश्यक्ता नहीं होती है। बिना कोई खर्च किये हुए हरा चारा उत्पादन कर सकते हैं.हाईड्रोपोनिक हरा चारा उत्पादन से मजदूरी खर्च एवं पिशाई खर्च में बचत होती है चूँकि इस चारे को काट कर खिलाने की जरुरत नहीं है इसलिए मजदूर खर्च भी कम हो जाता है। आप पशु को जो भी अनाज को दर्रा बनाकर खिलाते है उसके एक चौथाई अनाज को हाईड्रोपोनिक हरा चारा बनाकर खिलाने से 2 रुपये प्रति किलो पिसाई का खर्च भी बच जाएगा।

चारे की कम बर्बादी: यह बहुत स्वादिष्ट होता है इसलिए पशु बहुत चाव से खाती है.इसका जड़ भी बहुत मुलायम होती है इसलिए पूरा चारा पशु खा जाती है, जबकि सामान्य चारे की मुख्य रूप से पत्ते एवं तना पशु खाती है, और कड़े तने को भी छोड़ देती है।

» 1 किलो बीज से 4-5 किलो हरा चारा उत्पादन की जाती है।

» हाईड्रोपोनिक हरा चारा खिलाने से दूध में 10-15% की बढ़ोतरी होती है इसके साथ साथ डेन की खर्च में कमी आती है एवं पशु भी स्वस्थ्य रहती है।

उगाने के तरीके

» बीज से टूटे हुए दाने को हटा दें.

» बीज में पानी डालें एवं 5 मिनट के लिए छोड़ दें, इसके बाद जो बीज पानी के ऊपर तैर रहा है उसे बाहर निकाल दें. बीज को हाथ से रगड़ कर साफ़ कर दें

» इस पानी को फेंक दें एवं फिर से साफ़ पानी उसमे डालें. 2-3 बार ऐसा करने से सभी गंदगी साफ़ हो जायेगी.

» इसके बाद साफ़ पानी डालकर बीज को 24 घंटे के लिए पानी में फूलने दें

» 24 घंटे बाद पानी निकाल दें एवं 2-3 बार साफ़ पानी से धो दें.

» ट्रे में अच्छी तरह फैला दें फिर इसे अंकुरण के लिए जूट के बोरा से ढक दें

» सुबह शाम हल्का पानी का छिडकाव करते रहें, जिससे उसमे नमी बना रहे.

» जब अंकुरण अच्छी तरह से आ जाए तब जुट के बोरे को हटा दें एवं पानी का छिड़काव करते रहे. ध्यान रहे की केवल नमी बने रहे इतना ही पानी देना है। अधिक पानी जमा होने पर बीज सड़ने लगती है।

» १०-१२ दिन में यह हरा चारा तैयार हो जायेगी, तैयार चारे को बिना काटे हुए गाय, भैंस, बकरी, सूअर, खरगोश एवं मुर्गी को खिला सकते हैं.

विभिन्न किसान द्वारा हरा चारा उत्पादन

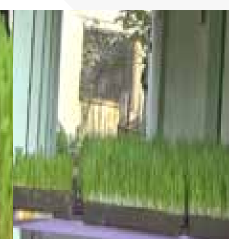

बांस का रैक बनाकर

कमरे की सतह पर

घर में खाली रैक पर

पलंग के निचे

राजस्थान की विभिन्न बकरी की नस्लें

हेमलता चौहान, जी.सी. गहलोत एवं सुनीता मीणा

राजस्थान पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

भारत में कुल 34 बकरी की नस्लें पंजीकृत की गई। पशुधन की जनगणना के अनुसार, 2012 में भारत में कुल बकरी आबादी (3.82%) में गिरावट आई है, जबकि राजस्थान में बकरी की आबादी में 0.76 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राजस्थान की मुख्य बकरी की नस्लें मारवाड़ी, सिरोही, झाकराना, बरबरी एवं जमुनापरी है। इनमें से मारवाड़ी और सिरोही बकरी का अन्य नस्लों की तुलना में अधिक महत्व है। शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्र में बकरी पालन आय का मुख्य स्रोत है।

मारवाड़ी बकरी का मूल क्षेत्र जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर और पाली है। यह नस्ल मुख्य रूप से मांस के उद्देश्य के लिए उपयोग की जाती है। मारवाड़ी बकरी मुख्य रूप से छोटे सिर और पतली पूंछ के साथ काले रंग की होती है। दोनों लिंगों में छोटे नुकीले सींग होते हैं, जो ऊपर और पीछे की ओर निर्देशित होते हैं। कान छोटे और चपटे होते हैं। मारवाड़ी बकरी नस्ल सुधार के लिए बीकानेर, राजस्थान में आईसीएआर प्रायोजित "अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (बकरी सुधार पर एआईसीआरपी)" के तहत मारवाड़ी बकरी का रखरखाव किया जाता है।

सिरोही बकरी दोहरी प्रकार की नस्ल है। इसका उपयोग दूध और मांस के लिए किया जाता है। इसका मूल क्षेत्र सिरोही, जालोर, अजमेर नागौर, उदयपुर, राजसमंद, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, बांसवाड़ा राजस्थान में है। सिरोही बकरियां मध्यम से बड़े आकार की होती है। प्रमुख रंग भूरे और भूरे रंग के हल्के से गहरे भूरे रंग के पैच (चित्तीदार भूरे) होते हैं। कान आमतौर पर सपाट और पत्ती जैसे, मध्यम आकार और नीचे की ओर लटकती हुई पेंडुलस के रूप में होते हैं। सिरोही बकरी सुधार पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (सिरोही बकरी), पशुधन अनुसंधान स्टेशन, वल्लभनगर, उदयपुर और पशुधन अनुसंधान स्टेशन, बोजुंडा, चित्तौड़गढ़ स्थापित है। इसकी एक उन्नत इकाई केन्द्रीय भेड़ एवं अनुसंधान संस्थान अविकानगर में भी है। पशुधन अनुसंधान

स्टेशन, बीछवाल, में "सिरोही बकरी प्रजनन परियोजना" चलाई जा रही है

झकराना दुधारू प्रकार की नस्ल है जो मूल क्षेत्र अलवर से है। गरीब और भूमिहीन किसान या ग्रामीण लोग मांस, दूध और अन्य उत्पादों के लिए बकरी का पालन करते हैं। झकराना बकरी के कोट का रंग सफेद धब्बे के साथ काला है।

किसानों और ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति में बकरी के महत्व के कारण राजस्थान राज्य सरकार ने बकरी के सुधार और विकास के लिए एक नीति बनाई। बकरी प्रजनन नीति की प्रमुख चुनौतियां चरागाह का संकोचन है, राज्य में ऊन और मांस के उपयोग के लिए उपयुक्त विपणन बुनियादी ढांचे और उद्योग की कमी और बकरी की गुणवत्ता बनाये रखना है।

बकरी नस्लों के विकास और सुधार के लिए इन विधियों का उपयोग कर सकते है: - चयनात्मक प्रजनन और उन्नयन (अप-ग्रेडिंग), महत्वपूर्ण देशी नस्लों का संरक्षण, सुधारित बकरों का पालन-पोषण और वितरण, महत्वपूर्ण यौन संचारित रोगों के लिए परीक्षण के बाद बकरे का वितरण, बंध्याकरण और अवांछनीय बकरे की छँटाई।

बकरी राज्य नीति के साथ-साथ इन बकरी नस्लों में सुधार और संरक्षण पशु चिकित्सा संस्थानों और विश्वविद्यालयों की मदद से किया जा सकता है।

उपसंहार: राजस्थान में, विभिन्न बकरी की नस्लों को किसानों और ग्रामीणों द्वारा पाला जाता है। सभी नस्लों में से मारवाड़ी, सिरोही और जखराना महत्वपूर्ण नस्लें हैं। ये बकरी की नस्लें राजस्थान की पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल हैं और दूध और मांस के उद्देश्य के लिए उपयोग की जाती हैं।

पशुओं के रोगवाहक (वैक्टर) जनित रोग

करम चन्द एवं एस. के. विश्वास

भाकृअनुप -भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, परिसर मुक्तेश्वर -263 138 (उत्तराखण्ड)

रोग वाहक ऐसे जीवित जीव हैं जो मनुष्यों या पशुओं के बीच संक्रामक रोगों को प्रसारित करते हैं। इनमें से कई रोगवाहक खून चूसने वाले कीट होते हैं जो सक्रंमित मनुष्य या पशु से रक्त भोजन के दौरान रोग पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवों को निगला करते हैं और तत्पश्चात दूसरे स्वस्थ पशु के रक्त भोजन के दौरान इन जीवों को प्रसारित कर उन्हें सक्रंमित करते हैं। रोगवाहकों में मच्छर सबसे ज्ञात वैक्टर है तथा अन्य रोगवाहकों में किलनी, मक्खियां, पिस्सू एवं कुछ जलीय घोंघे शामिल हैं। ये रोगवाहक सूक्ष्मजीव जैसे कि विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ इत्यादि को प्रसारित करते हैं। अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि वैश्विक तापवृदि के कारण रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों और उनके रोगवाहकों के संभावित प्रसार क्षेत्र का विस्तार हुआ है। यहाँ हम संक्षेप में रोगवाहकों द्वारा प्रसारित होने वाले रोग और उनके रोकथाम एवं नियंत्रण की चर्चा कर रहे हैं।

नीलसर्ना (ब्लूटंग) रोग

यह रोग ब्लूटंग विषाणु के कारण होता है जो कयूलीकवाइडस मच्छर द्वारा फैलता है। असंक्रमित वैक्टर सक्रंमित पशु से रक्त भोजन लेता है और एक नए असंक्रमित पशु को रोग संचारित करता है। इस रोग की उपस्थिति वैक्टर पर निर्भर करती है, जो मुख्य रूप से जुलाई और नवम्बर के बीच काफी सक्रिय होते हैं। दुनिया भर में 1400 से अधिक क्यूलीक्वाइडस की प्रजातियां है जिनमें से 20 से भी कम ब्लूटंग विषाणु के वास्तविक या संभव वैक्टर है। नीर्लसना रोग से भारत तथा दूसरे कई देशों में भेड़ उत्पादन पर भारी असर पड़ता है। इसलिए आर्थिक दृष्टि से यह रोग बहुत महत्वपूर्ण है। इस रोग से नुकसान मुख्य रूप से मृत्यु दर, कम उत्पादन और कम प्रजनन के कारण होता है। भेड़ों में नीर्लसना के लक्षणः तीव्र बुखार, अवसाद, भुख न लगना, अत्याधिक लार निकलना, चेहरे व जीभ की सूजन, जीभ का नीला होना, नाक का बहना, पाँव में छाले पड़ना, लंगड़ापन, गर्भपात, पशु का कमजोर होना और अंततः मृत्यु हो जाना है। मवेशी और बकरियों में संक्रमण आमतौर पर लक्षण रहित होता है लेकिन अफ्रीका के कुछ मवेशी में, भेड़ों जैसे लक्षण देखे गए हैं। उत्तर अमेरिका के सफेद पूँछ हिरण में ब्लूटंग विषाणु एक घातक रक्तस्रावी रोग का कारण है।

नीर्लसना रोग का नियंत्रण बहुत कठिन है अतः अतिसवेदनशील पशुओं को कयूलीकवाइडस कीट से दूर रखना चाहिए और कीट नाशक डालकर कीट को नियंत्रित करने का प्रयास किया जा सकता है। इस रोग का कोई निर्धारित उपचार नहीं है लेकिन घावों पर एंटीसेप्टिक मलहम आदि का प्रयोग किया जा सकता है। टीके दुनियां भर में बड़े पैमाने पर उपयोग किये जाते हैं और भारत में भी

क्यूलीकवाइडस

एक पेंटावैलट टीका उपलब्ध है। नीलर्सना मनुष्य को संक्रमित नहीं करता और फलस्वरुप इस रोग का कोई सार्वजनिक महत्व नहीं है।

अल्पकालिक ज्वर (एफिमरल फीवर)

अल्पकालिक ज्वर गोपशुओं का विषाणु जनित रोग है जिसे सामान्यता त्रिदिवसीय ज्वर भी कहा जाता है। इस रोग का संचरण प्राथमिक रूप से बालू मच्छरों और मक्खियों के द्वारा होता है। यह एफेमरो विषाणु के कारण होता है। इस रोग के मुख्य लक्षणः तीव्र ज्वर, ज्वर के पश्चात गर्दन, पीठ, सिर एवं टांगों की मांसपेशियों में अकडन, अचानक शारीरिक सुस्ती एवं लंगडापन, खाना एवं जुगाली बंद होना, लार चलना एवं दांत किटकिटाना, कब्ज, खांसना, नाक व आँखों से स्त्राव, पशुओं के उत्पादन क्षमता में कमी और अंततः पशु तीन दिनों में स्वस्थ हो जाता है। इस रोग का कोई शर्तिया इलाज उपलब्ध नहीं है। पशुओं को द्वितीय संक्रमण से बचाने के लिए प्रतिजैविका का उपयोग करना चाहिए यदि पशुओं का कोई औषधीय चिकित्सा न भी की जाए तो पशु प्रायः तीन दिन बाद स्वस्थ हो जाता है।

पैपीलोमा (मस्सा)

यह गोपशुओ का पैपीलोमा विषाणु द्वारा फैलने वाला रोग है । इस रोग का संचरण प्रत्यक्ष एवं कीटो द्वारा होता है। इस रोग का प्रमुख लक्षण, एकाधिक पैपीलोमा (मस्सा) त्वचा और श्लैष्मिक सतहों पर आम तौर पर देखा जाता है। गोपशुओ में, मस्सा सामान्यतः सिर, गर्दन, कंधे और कभी-कभी पीठ और पेट पर होता है। आमतौर पर पैपीलोमा अपने आप ही सीमित हो जाता है। यदि मस्से का आकर अधिक हो तो सर्जरी द्वारा हटाया जा सकता है। बछड़ों में पहला टीका 4-6 सप्ताह की उम्र में, दूसरा टीका उसके 4-6 सप्ताह बाद और तत्पश्चात् 1 वर्ष में टीकाकरण करना चाहिए।

बबेसिओसिस

यह एक घातक बीमारी है जिसका संचारण किलनियों (टिक) तथा चिचड़ों द्वारा होता है इसलिए इसे टिक फीवर भी कहते हैं।

बबेसिओसिस रोग रक्त परजीवी (प्रोटोजोआ) के कारण होता है जो एककोशिकीय जीव है। बबेसिया परजीवी की चार प्रमुख प्रजातियाँ होती है तथा यह चारों प्रजातियाँ गाय तथा भैंस को प्रभावित करती हैं। इन सभी प्रजातियों में से बबेसिया बाइजेमिना प्रमुख प्रजाति हैं जो भारतीय उप-महाद्वीप के पशुओं में बीमारी का मुख्य कारण है। बबेसिया प्रजाति के परजीवी पशुओं के रक्त में किलनी के माध्यम से प्रवेश कर जाते हैं तथा वे रक्त की लाल कोशिकाओं में जाकर अपना संख्या बढ़ाने लगते है जिसके फलस्वरूप लाल रक्त कोशिकाए नष्ट होने लगती है। लाल रक्त कोशिकाओं में मौजूद हीमोग्लोबिन मूत्र के द्वारा निकलता है जिसके कारण मूत्र का रंग कॉफी के रंग का हो जाता है। कभी-कभी पशु को खून वाले दस्त भी लग जाते हैं।

इस रोग के प्रमुख लक्षण, तेज बुखार, दुग्ध उत्पादन में कमी, खून की कमी, दुर्बलता तथा भूख की कमी, मूत्र का लाल होना, पहले दस्त लगना तथा उसके बाद कब्जी होना इत्यादि है। पशु के उपचार हेतु बेरेनिल नामक दवा का टीका पशु के भार के अनुसार माँस में दिया जाता है तथा खून बढ़ाने वाली दवाओं का भी प्रयोग किया जाता है। इस बीमारी से पशुओं को बचाने के लिए उन्हें किलनियों के प्रकोप से बचाना चाहिए एवं समय-समय पर बाड़े में किलनीनाशक दवाई का छिड़काव करना चाहिए।

रिफ्ट वैली ज्वर

रिफ्ट वैली ज्वर एक विषाणु जनित रोग है। यह रोग फलेवोवायरस से होता है। यह रोग सक्रंमित पशु के रक्त को छूने से या सक्रंमित मच्छर के काटने से फैलता है। इस रोग से गाय, भेड़ बकरी एवं ऊँट जैसे पशु प्रभावित होते हैं। आमतौर पर यह रोग सक्रंमित मच्छरों द्वारा इन पशुओं को काटने से फैलता है। इस रोग को सबसे पहले केन्या की रिफ्ट वैली के मवेशियों में देखा गया था। यह एक जुनोटिक रोग है जो पशुओं से मनुष्यों में फैलता है। इस रोग के मनुष्य में लक्षणः तीव्र ज्वर, मांसपेशियों में दर्द, भुख न लगना, उल्टी इत्यादि होते हैं। इस रोग के गंभीर लक्षण रक्तस्राव ज्वर जिसमें मृत्यु की संभावना 50 प्रतिशत तक होती है।

मनुष्यों एवं पशुओं में इस रोग की रोकथाम, रोग के विरूद्ध पशुओं में टीकाकरण होती है। भेड़ व बकरी, गाय और ऊँट की तुलना में इस रोग के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। रिफ्ट वैली ज्वर से सक्रंमित 90 प्रतिशत से अधिक मेमनों की अक्सर मृत्यु हो जाती है। पशु में इस रोग का विषाणु मुख्य रूप से एडीज प्रजाति के मच्छरों के काटने से फैलता है जो सक्रंमित पशुओं के रक्त भोजन से प्राप्त होते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए अन्य रोगवाहक जनित रोग की तरह रोगवाहक का नियंत्रण करना है।

मंकी फीवर

यह एक विषाणु जनित रोग है जो क्यासानूर फोरेस्ट वायरस के कारण होता है। इसलिए इसे क्यासानूर फोरेस्ट डिजीज भी कहते हैं। यह वायरस फलेवोवायरस प्रजाति का है। वायरस और रोग दोनों का नाम कर्नाटक के एक जिले कयासानूर के नाम पर पड़ा क्योंकि 1957 में सबसे पहले इस जिले में इस रोग की पहचान की गई थी।

इस रोग का नाम मंकी फीवर इसलिए पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र में एक साथ काफी बंदरों की मौत हो गई थी जो इस रोग से संबंधित थी। यह एक जुनोटिक रोग है जो जानवरों से मनुष्यों में फैलता है। यह रोग सक्रंमित जानवर के सीधे संपर्क में आने से फैलता है। इसके अलावा किसी सक्रंमित कीट (टिक) के काटने से यह रोग होता है जो पहले किसी सक्रंमित जानवर को काटकर सक्रंमित हो गया हो। गाय, भेड़ व बकरी इस रोग के विषाणु के लिए संवेदनशील होते हैं। यह रोग हीमोफाइसेलिस नामक टिक द्वारा फैलता है। मनुष्य में इस रोग के लक्षण: तेज बुखार, ठंड लगना, मांस पेशियों में दर्द, सिर दर्द, उल्टी, फोटोफोबिया आँखों में सुजन इत्यादि होते हैं।

इस रोग से बचाव हेतु संभावित क्षेत्रों में सक्रंमित बदरों की पहचान करना अति आवश्यक है। रोग संभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जांच करना भी महत्वपूर्ण है। संभावित क्षेत्रों में कीटों की नियंत्रण हेतु कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए। रोग के उपचार के लिए अभी कोई दवा उपलब्ध नहीं है।

पशुओं के लिए चुकन्दर एक महत्वपूर्ण चारा फसल

सूर्यपाल सिहं, हर्षिता सिंह एवं सज्जन सिंह

चौधरी चरण सिहं हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार-125004 (हरियाणा)

देसी पशु अब विदेशी चारे का स्वाद चखेंगे। वैज्ञानिकों ने मवेशियों को वर्शभर हरा चारा उपलब्ध करवाने के उद्धेश्य से चारे की नई फसल तैयार की है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अब तक इस चारा फसल का उत्पादन नींदरलैण्ड ब्रिटेन बेलारूस न्यूजीलैंड और फ्रांस मे किया जाता रहा है। लेकिन मरूधरा में फोडर बीट के अच्छे परिणाम सामने आए है। यह चारा ना केवल किसान मांग को पूरा करेगा। साथ ही पशु दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के चलते किसान की आय भी बढ़ायेगा। इस चारे का स्वाद खट्टा-मीठा होने से पशु इसे चाव से खाते है। गौरतलब है कि पश्चिमी राजस्थान में फरवरी से जून तक गर्मियों के दिनों में हरे चारे की कमी हो जाती है। इस समस्या को देखते हुए वैज्ञानिकों ने चारा चुकन्दर (फोडर बीट) तैयार की है। यह प्रति हैक्टयर 700 से 800 क्विंटल हरे चारे का उत्पादन देती है। चारा चुकन्दर अत्यधिक उपज देने वाली जमीकन्दीय फसल है। दूसरी चारा फसलों की तुलना में यह कम क्षेत्रफल और कम समय में अधिक उत्पादन देती है। कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि नीदंरलैंड और न्यूजीलैंड के डेयरी उद्योग में इस तरह के चारे का उपयोग काफी समय से हो रहा है। इसी को देखते हुए अनुसंधान कार्य शुरू किया और सफलता हासिल की है।

किसानों को चारा उत्पादन लाभकारी व्यवसाय बनाना है तो कम समय में अधिक लाभ देने वाली फसलों पर किसानों का अपना ध्यान केन्द्रीत करना होगा। चुकन्दर एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल है जिसे किसान भाई सब्जी और चारा के रूप में उपयोग के साथ-साथ कच्चे का सेवन सलाद के रूप में शादी विवाह में अपना अलग स्थान व पहचान रखती है। चुकन्दर जड वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण फसल है। इसकी अपनी विशेषता है पहाडों से मरू क्षेत्र तक इसका उत्पादन बेखुबी किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी दोमट बालुई या यु कहिए कि सभी प्रकार की मिट्टी में चुंकदर का उत्पादन किया जा सकता है। चुंकदर को लवणीय क्षेत्रो में भी आसानी से उगाया जा सकता है। 6-7 पी0एच मान की मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। चुकन्दर खेती के लिए रेतीली भूमि की जुताई 2 से 3 बार करनी चाहिए. चिकनी मिट्टी की पहली जुताई पलटू के हल से करे। हल चला कर सुहागे से समतल कर ले तथा मिट्टी को बिल्कुल भुरभुरी ना करे। इसके बाद 5 इंच ऊँचा व 2 फीट चैडा बैड बना सीधी बीज की बुआई करे। बीज दर निर्धारण खेत में नमी और चुकंदर की किस्म के अनुसार तय करें। साधारणत 4 से 6 किलोग्राम प्रति एकड बीज की आवश्यकता पडती है। प्रति एकड 3000 से 4000 पौधे 10 से 12 सेंटीमीटर की दुरी पर जिसमें लाईन की दुरी 25 से 30 सेंटीमीटर हो पौधे वृद्धि के अनुकुल है। आम तौर पर बुआई का समय अक्तूबर से नवम्बर तक उपयुक्त होता है बुआई से पहले पलेवा कर बीज छोटी-छोटी क्यारियां बना कर लाईन में बिजाई करें। बीज को बोने से पहले पानी में 8-10 घन्टे भिगो कर छाया में सुखा ले और उसके बाद आधुनिक यन्त्रों या देसी हल से समतल खेत या तैयार किए हुए बैड पर बिजाई करें। बुआई से पहले खेत तैयार करते समय 10-12 क्विंटल या प्रति एकड गोबर की खाद खेत में डाले। रसायनिक खादों का कम से कम उपयोग करें। अगर जरूरत पडे तो युरिया डी0एस0पी0 और पोटास 50.70 और 40 कि0 ग्रा0 प्रति एकड प्रयोग कर सकते है। पानी की जरूरत मौसम पर निर्भर करती है सर्दियों और बरसात में कम सिंचाई की जरूरत है। पहली सिंचाई बुआई के 10-15 दिन बाद में महीने भर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। फसल तैयार होने पर फसल में नमी की मात्रा कम कर दे।

उद्देश्य

1. वैज्ञानिक विधि व सलाह से तैयार फसल में लगभग 65-90 टन प्रति हैक्टेयर चुकंदर का उत्पादन सम्भावित है। अनुकुल वातावरण व मिट्टी से उत्पादन अधिक होने की संभावना हमेशा रहती है। चुकंदर की उन्नत किस्मों जैसे- इग्लोपोली, ऐ0जे0पोली, ईरो टाइप ई, रोमांस काया, बी जे डब्लू-674, एम0एस0एच-9, यू एच-35 आदि के बीजो का वातावरण के अनुकूल प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। किस्म का चुनाव क्षेत्र विशेष के अनुसार कृषि वैज्ञानिको की सलाह से

करे। स्थनियें कृषि विज्ञान केन्द्र के विषय विशेषज्ञ से सलाह-मशवरा अनिवार्य है। केवल उन्ही किस्मों का उपयोग करे जो कम समय में तैयार हो कर अधिक उत्पादन दे। चुकंदर मात्र 90 दिन में पुरी तरह मण्डी में जाने के लिए तैयार हो जाता है और मण्डी में इसकी कीमत भी किसान को अच्छी मिलती है।

2. जैसा की उपरोक्त में बताया गया है कि 90 दिन में 65-90 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन जोकि मांग और आपूर्ति के हिसाब से 1500 रूपये से लेकर 5000 रूपये प्रति क्विंटल बेची जा सकती है लालपती वाली चुकंदर की मांग आजकल पांच तारा होटल बड़े-बड़े आयोजनों व शाही शादियों में होने के कारण इसके मूल्य में वृद्धि होना स्वाभाविक है। अतः मांग के अनुसार उत्पादन कर किसान भाई इस सब्जी फसल से अधिक लाभ अर्जन कर सकते है।

3. देश के अनेक भागो में परम्परागत गेंहू-चावल चक्र वाली फसले ही उगाई जाती है जिसके कारण धरती की उर्वा शक्ति का हनन हुआ व क्षीण हुई। धरती में अन्धाधुन्ध रसायनिक खादो के उपयोग के कारण कार्बन की मात्रा कम हुई है। इस अवस्था में इस फसल चक्र को तोड़कर ऐसी फसलों को तलाशना होगा जो किसान कों इस फसल चक्र से होने वाले लाभ में अधिक लाभकारी है। चुकंदर उसी श्रेणी की एक बहुउपयोगी फसल है। जिसकी अधिक कीमत भाई अधिक लाभ लाभ प्राप्त कर सकते है।

4. चुकंदर जड़ वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जैसा कि विदित है चुकंदर विभिन्न उद्देश्यों के लिए उगाई जाती है। इसका उपयोग मुख्यतः सलाद तथा जूस में किया जाता है। रेसा और रसायन इसमें प्रचूर मात्रा में पाये जाते है जोकि हमारे लिऐ उत्तम खाद्य है और हमें खाद्य सुरक्षा प्रदान करते है विशेष रूप से उन तत्वो के लिऐ जिनकी हमारे भोजन में दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है।

उपयोगिता

1. चुकंदर सलाद सब्जी व जूस के रूप में आम व खास द्वारा दैनिक रूप् में उपयोगी है। चुकंदर में चीनी 8 से 10 प्रतिशत, प्रोटीन 1.5 से 2 प्रतिशत, मैग्निशयम 3 से 5 प्रतिशत तथा अन्य तत्व जैसे कैल्शियम, फोस्फोरस, आयरन, आयोड़ीन, मैगनीज, विटामिन बी और सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है इसलिए यह हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

2. चुकंदर बारहो महीने की खेती है जो हम साल भर सब्जी, सलाद व अन्य व्यंजन देती रहती है। जब भी सब्जियों का अभाव होता है इसको उपयोग में लाया जा सकता है। अधिक उत्पादन की अवस्था में सुखा कर इसकी जड़ो का उपयोग किया जा सकता है। खुदाई बडी व मीठी जड़ो की करे तथा यह खुदाई एक समय मे न कर बाजार की मांग के अनुसार करे। जिससे भण्ड़ारण की समस्या से निजात के साथ-साथ बाजार भाव भी किसान को अधिक मिलेगा और उपभोक्ता को ताजा व अच्छी गुणवत्ता वाली सब्जी उपलब्ध होगी। अधिक लाभ व मण्ड़ी भाव लेने के लिए जड़ को कटने न दे व ग्रेडिंग व सफाई कर बाजार में भेजे।

3. वर्षभर पशुओं के लिए हरा चारा उपल्बध करना एक बड़ी चुनौती है। खेत जोत कम होने के साथ-साथ चारा उत्पादन क्षेत्र में कमी इस समस्या को ओर गम्भीर बना देता है इस अवस्था में चुकंदर एक विकल्प में रूप में बहुत उपयोगी है आजतक तक चुकंदर को युरोपिय देशों पशुओ के चारे के रूप में प्रयोग किया जा रहा था। लेकिन चारे और चीनी की मांग ने चुक्रंदर फसल की और हमारे किसानो का ध्यान आकर्षित किया। आजकल इसका उत्पादन पंजाब, हरियाणा, राज्यस्थान पहाड़ी क्षेत्रों और दुर दक्षिण के क्षेत्रो में भी खुाब होने लगा है। चुकंदर से पैदा होने वाले सहउत्पाद, फोटर बीट व शुगर बीट पशु आहार का अंग बन चुके है। प्रति एकड़ 700 से 800 क्विटल हरा चारा इसमें आसानी से प्रापत हो जाता है। यह फसल कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन देती है। जिसकी आज हमें आवश्यकता है। यह पशुओं को उनकी शारिरिक आवश्यकता के अनुसार कार्बोहाईड्रेटस, प्रोटीन खनिज तत्व व विटामिन उपल्बध करता है। व पशुओ के लिए अत्यंत स्वादिष्ट व पोषक भी है। दुधारू पशुओ में इसके सेवन से उनकी उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की गई है।

अतः किसान भाई व्यावसायिक खेती करना चाहे तो कम लागत में चुकंदर की खेती अधिक लाभप्रद है।

बुन्देलखण्ड में बकरी पालन -समस्या व समाधान

साकेत भूषण

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा -281122 (उत्तर प्रदेश)

बुन्देलखण्ड मध्य भारत का अर्धशुष्क पठारी क्षेत्र है जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य के जिले (चित्रकूट, बॉदा, झॉसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा और ललितपुर) तथा मध्यप्रदेश के जिले (छतरपुर, टीकमगढ़, दमोह, सागर दतिया, पन्ना आदि) सम्मिलित हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जलवायु दशायें विषम हैं जहॉ ग्रीष्मकाल में तापमान 40 डिग्री से0ग्रे0 से ऊपर रहता है वहीं शीतकाल में 1 डिग्री सें0ग्रे0 से नीचे चला जाता है। क्षेत्र में सूखा एक स्थाई समस्या बन चुका है। यह क्षेत्र लगभग 69,000 वर्ग किमी में फैला हुआ है तथा इसका 37 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की 86 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि व पशु पालन पर निर्भर है। इस क्षेत्र में भूमि की किस्म, जल उपलब्धता, बाजार सुविधा, साक्षरता, ग्रामीण रोजगार, कृषकों के संसाधन, आय के स्त्रोत व कृषकों की भूमि मल्कियत का आकार आदि में काफी भिन्नतायें पाई जाती हैं। वन, अनुपयोगी व बंजर जमीन 50 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में है जबकि स्थायी चारागाह और अन्य चरने योग्य मैदान केवल 9 प्रतिशत है वहीं वृक्षों और घासों ने कुल भौगोलिक क्षेत्र का 0 6 प्रतिशत भाग घेरा हुआ है। सन 1996 के पशुधन गणना में भेड़ के अतिरिक्त मुख्य पशुधन जातियॉ जैसे गाय, भैंस और बकरी में वार्षिक वृद्धि दर पायी गयी थी। इस क्षेत्र की मुख्य नदियॉ यमुना, बेतवा, केन, बगाहीन, टोंस, पाहुज, धसान और चम्वल है। जल धाराओं द्वारा अधिक संख्या में कटाव, सूखे और अपेक्षाकृत ऊँचे मुहाने के कारण इन नदियों का सिंचाई की दृष्टि से पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सकता जिससे सिंचाई मुख्यत नहरों तालाबों और जलाशयों पर निर्भर हैं। क्षेत्र में अच्छा पूर्ण व समान मानसून न होने से सिंचाई की समस्या बनी रहती है तथा सूखे जैसी स्थिति बन जाती है।

समस्यायें

विभिन्न कार्यो के लिये व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व में वृद्धि तथा भूमि के कुप्रबन्धन के कारण वन क्षेत्र में भारी कमी आई हैं। इस कारण ग्रामीणों के लिये ईधन, चारा और भोजन के पारम्परिक स्त्रोत में भी तीव्र गति से कमी होती जा रही है। सीमित जल संसाधन तथा जल संरक्षण न होने के कारण ये सभी कारक कृषि उत्पादकता को प्रभावित कर रहे हैं। लगभग पूरे साल बुन्देलखण्ड के निवासी कृषि व घरेलू उपयोग के लिये जल की कमी का सामना करते हैं। सारे जल स्त्रोत मानसून पर निर्भर है। अतः ज्यादातर कृषि एक फसल आधारित है तथा फसलो की सिंचाई वर्षा, तालाबों तथा व्यक्तिगत कुओं पर निर्भर है। जलाशयों का पुनः जल संचयन भी वर्षा पर निर्भर है। बचे हुये व्यक्तिगत तथा संरक्षित वनों में टीक, महुआ, बबूल, बेर, ठाक, बेल और झाड़ियॉ है। जैसे-जैसे वन विलुप्त हो रहे हैं वैसे-वैसे भूमि के नीचे वर्षा जल का संचयन घट रहा है। पारंम्परिक जलाशयों पर कब्जा करके उस पर खेती व मकान बनाने से भी भूजल स्तर घटता जा रहा हैं। भूमि में लाल, काली और बलुई मिट्टी की अधिकता के कारण भूमि नमी को बनाये रखने योग्य नहीं है। जल तथा भूसंरक्षण के न होने तथा वनों के विनाश के कारण इस क्षेत्र की भूमि व जल स्त्रोत खराब होते जा रहे है जो भूमि की उत्पादकता को कम कर रहे है। क्षेत्र में भूमि संरक्षण न होना एक स्थायी समस्या है जो तेज हवाओं, बाढ़, निम्न गुणवत्ता की मिटटी के साथ और बढ़ रही है। प्रभावी मानसून के अभावों में इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन काफी कठिन है। इस क्षेत्र के अनेक किसान उन्नत बकरी व अन्य पशुधन के अभाव में अपनी मूलभूत आवश्यकतों को पूर्ण करने में अक्षम है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में साक्षरता स्तर विशेषतः महिलाओं में निम्न है और शिशु मत्युदर अधिक हैं। गॉवों से परिवारों के वैकल्पिक जीवनयापन के लिए अस्थायी और दीर्घकालिक विस्थापन भी इस क्षेत्र में बढ़ रहा है।

प्रभावी कार्यक्रमों के अभाव में इस क्षेत्र के कृषकों के पास बहुत कम आधुनिक कृषि तकनीकी पहुँची है। इस क्षेत्र में जीवनयापन का मुख्य स्त्रोत कृषि, पशुपालन और फल व सब्जी उत्पादन है। गेहूँ, चना और तिलहन इस क्षेत्र की प्रमुख फसलें है। भूमिहीन और सीमान्त

कृषक समाान्यतः 1-5 बकरी पालते हैं। केवल कुछ सीमान्त कषक 1-2 गाय और भैंस रखते हैं। क्षेत्र में अधिकाँश बकरियाँ अवर्णित हैं और विभिन्न ग्रेड की जखराना, जमुनापारी, सिरोही और बरबरी नस्ल उपलब्ध हैं। अधिकांशतः मजदूर, भूमिहीन कृषक और गाँवों के पिछड़े वर्गो के परिवार अपने जीवनयापन के लिए बकरी पालन कर रहे हैं। कम संख्या में बकरी पालन (1-5 बकरियाँ), अवर्णित बकरियाँ, चारे की कमी, जानवर की निम्न उत्पादकता, रोगो की समस्या और बकरी पालन के वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव में इस उपक्रम का किसान पूर्णतः दोहन नहीं कर पाते है। उत्पाद के मुल्यवर्धन के ज्ञान की कमी के कारण किसान बकरी के दूध व माँस उत्पादों के उत्पादन बनाने में असमर्थ है। बकरी पालन में कम लागत तथा बकरी-घर के लिऐ कम क्षेत्र की आवश्यकता होती है और परिवार के सदस्य आसानी से इन्हें पाल सकते हैं। अतः बकरी पालन मजदूरों, भूमिहीन किसानों, सीमान्त और छोटे किसानों के जीवनयापन सम्बन्धी सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

चित्र 1: बकरी एवं अन्य कृषि विशेषज्ञो का बुंदेलखण्ड के गाँवों का भ्रमण तथा वहाँ की समस्याओं तथा उनके निराकरण पर चर्चा करते हुये द्य

बकरियाँ सूखे की दशाओं में पूर्ण उत्पादन देने के लिए सक्षम है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के काफी भाग में पथरीली पहाड़ियाँ, नदियों के पठार और कृषि अनुपयोगी क्षेत्र है। यह क्षेत्र पेड़, झाड़ी और बहुवार्षिक घासों के रोपण के द्वारा चरागाहों के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते है। इस क्षेत्र को भविष्य की किसी भयावनी स्थिति से बचाने के लिए गरीबी रेखा से नीचे रहने वोले लोगों के रोजगार जीवन यापन, सुरक्षा, भोजन व पोषणता की तुरन्त आवश्यकता है। विभिन्न कृषि तकनीकि और उनकी सम्मिलित विधाओं के साथ आधुनिक बकरी पालन के लिये तकनीक विकसित की गयी है जिससे कृषक परिवारों की गरीबी दूर की जा सके।

बुन्देलखण्ड में पायी जाने वाली अधिकाँश बकरिया अवर्णित है। इनका शरीर मध्यम आकार होने के साथ रंग काला, भूरा एवं सफेद होता है लेकिन इसमे काला रंग प्रमुख है। काले रंग की बकरियो का पूरा बाहरी आवरण काला होता है लेकिन कान एवं नाक के पास सफेद रंग के धब्बे भी पाये जाते है। इसके अतिरिक्त कुछ बकरियो के शरीर का रंग पूरा सफेद एवं आकार लगभग काले बकरियो की तरह होता है। वयस्क बकरे का वजन लगभग 25-30 कि०ग्रा० होता है। इस क्षेत्र की बकरिया माँस उत्पादन के लिए ज्यादा उपयुक्त है क्योकि ये दूध बहुत कम देती है। बकरियो के नस्ल सूधार के लिए इस क्षेत्र मे कोई विशेष प्रजनन प्रणाली नही चल रही है जिसके कारण यहाँ की बकरियो का औसत वृद्धि दर एवं दुग्ध उत्पादन कम है।

चित्र 2: बुंदेलखण्ड का किसान अपनी बकरी के साथ

बकरिया एक वर्ष मे प्रजनन के लिए परिपक्व हो जाती है लेकिन जननाँगो मे संक्रमण अथवा खनिज तत्वो की कमी के कारण समय पर गर्मी मे नही आ पाती है। बकरियो में गर्भ काल लगभग 155 से 160 दिन का होता है इस तरह से इनको 1 से 1.5 वर्ष में दो बार प्रजनन कराने पर 2 से 4 मेमने पैदा हो जाने पर अच्छा लाभ प्राप्त हो सकता है। बकरियो का पालन घरेलू स्तर पर होने के कारण इनका कोई विशेष प्रबंधन नही होता है। यहाँ पर किसान लगभग 2-5 बकरी रखने के कारण इनके लिए अलग बाडे का निर्माण नही करते।

वे घर में एक किनारे प्रत्येक बकरी को रस्सी से बॉध कर रखते हैं। किसान घर में प्रत्येक बकरी की विकास दर, परिपक्वता, मेमनो का पैदा होना, ब्यात, दुध का उत्पादन, आहार की आवश्यकता एवं बिमारियो का विवरण नही रखता है। किसानो को बकरी पालन के आर्थिक महत्व की कुछ सूक्ष्म बिन्दूओ की जानकारी नही होने के कारण वे उन पर उचित ध्यान नही देते। पशु पालको को मेमनो के जन्म के बाद बकरियो में खीस का स्रावण एवं उसका महत्व, अवयस्क मेमनो में रूमेन के विकास के लिये हरे चारे को मेमनो को खिलाना, बधियाकरण आदि के बारे मे उचित जानकारी नही होने के कारण आर्थिंक हानि होती हैं। बकरियो में जीवाणु, विषाणु एवं परजीवी के द्धारा विभिन्न प्रकार की बिमारिया होती हैं। कभी कभी इन बिमारियो से बकरियो मे मत्यु दर बहूत अधिक होती है जैसे पी पी आर., पाश्चुलोरोसिस. निमोनिया से। किसानो को बिमारियो की रोकथाम के लिये टीकाकरण की जानकारी नही हैं। इसके अतिरिक्त उपापचय की गडबडी के कारण एवं पोषक तत्वो की कमी से भी बिमारिया होती है। खनिज तत्वो की कमी के कारण बकरियो मे उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता मे कमी आ जाती हैं। इस क्षेत्र मे बकरियो के दोनो उत्पाद दूध एवं मॉस की बिक्री के लिए संगठित बाजार नही हैं किसान गॉव मे ही दलाल के द्धारा बकरो की बिक्री करते हैं छोटे बाजारो मे साप्ताहिक पशु मेला का आयोजन होता है जिसमे सभी प्रकार के पशुओ की बिक्री होती है। पिछले कुछ वर्षो मे बडे उद्यमी के द्धारा ब्यवसाय के रूप मे अपनाने के कारण एवं आधुनिक बूचड़खानो के निमार्ण होने से इनके बाजारीकरण मे सूधार हो रहा हैं।

चित्र 3: बुंदेलखण्ड में एक गाँव की सारी बकरियाँ चरने के लिये जाते हुये द्य

समाधान

- बकरी पालन आधारित समन्वित कृषि द्वारा पशुधन व फसलों के उत्पादन में वृद्धि की जाये।
- बकरी दुग्ध तथा मॉस का मूल्यवर्धन करना व उनका अधिक लाभ के लिये बाजारीकरण किया जाये।
- क्षेत्र मे चारा, मिट्टी और जल स्त्रोतों का विकास, संरक्षण व प्रबन्धन किया जाये।
- दीर्घकालिक रोजगार व भरण पोषण के अवसरों का विकास करने के लिए किसानों की क्षमता का विकास, योग्यता का निर्माण एवं स्वयं-सहायता समूहों का गठन किया जाये।
- उत्तम पशुधन का प्रयोग हो। इसके लिए उन्नत प्रजातियों की बकरियों एवं तथा चारा स्त्रोतों का विकास किया जाये।
- दुग्ध, मॉस तथा उनके उत्पादों का मूल्यवर्धन। पनीर, सुगंधित दुग्ध, कुल्फी, मॉस क्यूब्स व मीट सोसेज बना कर मूल्यवर्धन एवं इन सभी का बाजारीकरण किया जाये।
- नमी संरक्षण के द्वारा जल उपलब्धता का उन्नतीकरण करना तथा जल संरक्षण के साधनों जैसे मेंडे, खेत-तालाब तथा कुओं को विकसित किया जाय।
- फसलों की आधुनिक किस्में उगा कर वातावरणीय मित्रवत पादप सुरक्षा के द्वारा वर्ष में कम से कम एक या उससे अधिक फसलें ली जायें।
- गरीबी उन्मूलन के लिए गरीब सीमान्त कृषकों से वापसी प्रक्रिया के आधार पर पॉच बकरियॉ प्रति कृषक दी जायें तथा तीन कृषकों के बीच एक उन्न्ति प्रजाति का बकरा दिया जाय। बकरी वापसी के बाद उनको नये कृषकों को इन्हीं शर्तों पर देकर यह चैन चलायी जाये।
- बकरियों में अंतःप्रजनन रोकने के लिए किसानों को बॉटे गये बकरों को प्रतिवर्ष आपस में पुनः बदलाव किया जाये।
- बकरी के दुग्ध से दुर्गन्ध हटाने के लिऐ बकरों को बकरियों के साथ बाड़ों में न रखने के लिये किसानों को बताया जाये।
- कृषकों कों सलाह सेवा प्रदान करने के लिए एवं कार्यक्रमों की प्रगति के मूल्यॉकन करने के लिये समय-समय पर गोष्ठी व समूह वार्तालाप का आयोजन किया जाये।
- ग्राम स्तर पर चयनित पढ़े लिखे युवाओं को स्वयं रोजगार के तहत पशुचिकित्सा एवं फसल सुरक्षा का प्रशिक्षण दिया जायें तथा बेहतर बाजारीकरण के लिए महिलाओं व पुरूषों का स्वयं सहायता समूह गठित किया जाये।

बीज व वनस्पतियों से पशुओं की बीमारियों का इलाज़

सुर्यपाल सिंह एवं हर्षिता सिंह

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार -125001 (हरियाणा)

परम्परागत औषधीय पौधे और घर में उपलब्ध बीज जैसे धनिया, जीरा, अजवायन आदि के प्रयोग से तकरीबन 25-30 साल पहले तक लोग छोटी मोटी बीमारियों का इलाज घरेलू तरीके से कर लेते थे। घर-घर में तुलसी, गेंदा के फूल और अन्य पौधे होते थे तो पेट दर्द, छोटी-मोटी चोट, बुखार आदि होने पर घरेलू इलाज ही काम आते थे। ग्रामीण व्यवस्था में पशुओं का उपचार भी इन्ही पौधों से किया जाता था। आधुनिकता के इस दौर में हम परम्परागत ज्ञान को भूलते गए। लोग परंपरागत चिकित्सा पद्धति से दूर होते जा रहे हैं। परंपरागत चिकित्सा के ज्ञान और इसके साथ औषधीय पेड़ पौधे को भी बचाना जरूरी है। हम नई नई पद्धति अपना कर औषधीय पेड़ पौधे खत्म कर रहे हैं। शहरों की अपेक्षा गांवों में अभी भी लोग परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों से ही काम चलाते हैं। आज हम कुछ ऐसे पोधो की बात करेंगे जो पशुओं की बीमारियों के उपचार में काम आते हैं।

पशु रोग:

थनैला रोग (MastItIs)

थनैला दुधारू पशुओं को लगने वाला एक रोग है। यह बीमारी समान्यतः गाय, भैंस एवं बकरी समेत तकरीबन उन सभी पशुओं में पायी जाती है, जो अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। थनैला बीमारी पशुओं में कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, फफूँद एवं यीस्ट तथा मोल्ड के संक्रमण से होता हैं। इसके अलावा चोट तथा मौसमी प्रतिकूलताओं के कारण भी थनैला हो जाता हैं। यह बीमारी दूध देने वाले पशुओं एवं उनके पशुपालको के लिए चिंता का विषय बना रहता है। इस बीमारी से पशुपालकों की आर्थिक स्थिति भी प्रभावित होती है।

उपचार: ग्वार पठा २५० ग्राम, हल्दी पाउडर या गांठ ५० ग्राम, चूना १५ ग्राम, दो निम्बू और १०० ग्राम गुड; ग्वार पठा २५० ग्राम, हल्दी पाउडर या गांठ ५० ग्राम, चूना १५ ग्राम को मिला ले जिससे एक लाल रंग की पेस्ट बन जायेगी। इसमे १५०-२०० मिली लीटर पानी मिला कर अयन पर दिन में दस बार पांच दिन तक पर लेप करे और दो निम्बू प्रतिदिन दो बार सुबह शाम तीन दिन पशु को खिलाएं अवश्य लाभ मिलेगा। अगर दूध में खून आता हैं तो मुट्ठी भर कढ़ी पत्ता और गुड की पेस्ट बना कर पशु को तब तक खिलाये जब तक खून बंद न हो।

अयन में सूजन

प्रथम बार ब्याने वाले पशुओं में अयन की सूजन साधारण दैहिक क्रिया मानी जाती हैं। अगर यह समस्या अधिक हैं तो यह खीस के उतरने और दूध देने में पशु की लिए दिक्कत कर सकती हैं। समस्या लम्बे समय तक बनी रहे तो थनेला रोग की सम्भावना भी बनी रहती हैं।

उपचार: लहसुन २ गांठ, २०० ग्राम तिल या सरसों का तेल, एक मुट्ठी हल्दी पाउडर। तेल को ग्राम कर उसमे हल्दी पाउडर और कटी हुए लहसुन डाल ले। उबलने से पहले जब ये सुगंध देने लगे इसे आग से उतार ले और ठंडा होने दे। इसकी जोर-जोर से प्रभावित भाग पर घुमावदार मालिश दिन में ३-४ बार ४-५ दिन तक करे। अयन में सूजन के इलाज में यह बहुत लाभकारी व उपयोगी दवा है।

चिचड़ी रोग

चिचड़ीयां, मच्छरों की तरह, चमड़ी पर बैठते ही काटना शुरू नहीं करतीं हैं। यह पहले चमड़ी पर चिपकती हैं, जिसमें 10 मिनट से 2 घण्टे लगते हैं। चमड़ी पर सही जगह पर चिपकने के बाद, ये चमड़ी में सुराख करके रक्त चूसना शुरू कर कर देती हैं। इस दौरान चिचड़ी चिपकने वाला पदार्थ भी छोड़ती है, जो चिचड़ी को, चमड़ी के साथ मजबूती से चिपकने में सहायता प्रदान करता है। चिचड़ीयां चमड़ी को सुन्न करने वाला पदार्थ भी छोड़ती हैं, जिससे पशु को दर्द कम होता है और चिचड़ीयां आराम से पशु का खून चूसती रहती हैं। एक चिचड़ी दिन में 0.5 से 3.0 मि.ली. खून चूस लेती है। खून चूसने के दौरान चिचड़ीयां पशुओं में बीमारी के कीटाणु भी छोड़ देती हैं। एक अकेली चिचड़ी, जिसमें बीमारी के कीटाणु हों, बीमारी फैलाने

के लिए काफी है, इन बाह्य परजीवियों का प्रकोप हर जगह देखने को मिलता है। यह प्रकोप किसी एक जगह पर कम मिलता है तो किसी अन्य जगह पर ज्यादा। इनका प्रकोप मौसम के अनुसार कम-या-ज्यादा देखने को मिलता है। ये बाह्य परजीवी हमारे पशुधन के साथ-साथ मनुष्यों को भी हानि पंहुचाते हैं। बहुत से बाह्य परजीवी एक पशु से दूसरे पशु में बीमारी फैलाने का कारण बनते हैं।

उपचार: लहसुन १० डोडी, एक मुट्ठी नीम के पते और एक मुट्ठी निमोले, वच की जड़ १० ग्राम, हल्दी पाउडर २० ग्राम, एक मुट्ठी तुलसी के पते और रायिमुनिया के पते मुट्ठीभर। लेकर इन सबको मिलाकर पिस ले और १ लीटर पानी में घोल बना लें तथा इसे छलनी से या कपडे से छान कर एक बोतल में भर ले। दोपहर के वक्त धूप में इसको पशु के शरीर और ठान में तब तक छिडकाव करे जब तक चिचड़ी खत्म न हो जाये।

जेर न गिराना

गाय व भैंसों में ब्याने के बाद जेर का बाहर न निकलना अन्य पशुओं की अपेक्षा काफी ज्यादा पाया जाता है। सामान्यत:ब्याने के 3-8 घंटे के बीच जेर बाहर निकल जाती है। लेकिन कई बार 8 घंटे से अधिक समय बीतने के बाद भी जेर बाहर नहीं निकलती। कभी कभी यह भी देखा गया है कि आधी जेर टूट कर निकल जाती है तथा आधी गर्भाश्य में ही रह जाती है। जेर के गर्भाश्य में रूकने से अंदर ही सड़ने लगती है तथा योनि द्वार से बदबूदार मटमैले रंग का द्रव्य पदार्थ निकलने लगता है। इससे पशु को भूख कम लगती है तथा दूध का उत्पादन कम हो जाता है । कभी कभी उसे बुखार भी हो जाता है। गर्भाश्य में संक्रमण के कारण पशु स्ट्रेनिंग (गर्भाश्य को बाहर निकालने की कोशिश) करने लगता है जिससे योनि अथवा गर्भाश्य तथा कई बार गुदा भी बाहर निकल आते हैं तथा बीमारी जटिल रूप ले लेती है।

उपचार :१ मूली, १.५ किलोग्राम भिन्डी गुड़ और नमक ले ले। प्रत्येक भिन्डी गुड़ के दो टुकड़े कर ले। पशु ब्याने के २ घंटे बाद एक पूरी मूली पशु को खिलाये अगर पशु जेर फिर भी नहीं गिराता तो १.५ कि०ग्रा० भिन्डी गुड नमक के साथ खिलाएं। यह लाभकारी सिद्ध होता है। १ मूली ७-८ दिन तक रोज खिलाते रहें।

फूल दिखाना

बच्चा जनने के समय के आस-पास भैंसों की एक प्रमुख समस्या है योनि एवं बच्चेदानी का योनिद्वार से बाहर आ जाना। इसे फूल दिखाना, शरीर निकलना तथा योनि अपभ्रंश जैसे नामों से भी जाना जाता है। फूल दिखाने की समस्या गर्भावस्था के आखिरी महीनों से लेकर बच्चा देने के 2-3 महीने तक कभी भी हो सकती है। बच्चा जनने (प्रसव) की दृष्टि से यह समस्या तीन प्रकार से हो सकती है:

1. बच्चा जनने से पहले (प्रसव पूर्व अपभ्रंश)
2. बच्चा जनने के दौरान (प्रसव कालीन अपभ्रंश)
3. बच्चा जनने के कुछ दिनों बाद (प्रसवोपरांत अपभ्रंश)

उपचार: एक पत्ता ग्वार पठा रस, एक चुटकी हल्दी का पाउडर, दो मुट्ठीभर छुई मुई के पत्ते ले लें। ग्वारपाठा रस को तब तक धोते रहो जब तक उसका चिपचिपापन खत्म न हो जाये। अब इस तरल में एक चुंटी हल्दी पाउडर दल कर तब तक गर्म करें जब तक ये आधा न रह जाये। इसको ठंडा होने दे। छुई मुई के पते को पिस कर पेस्ट बना ले। फूल को अच्छी तरह पानी से साफ कर उस पर ठंडा किया हुआ तरल को छिडकाव करें और जब ये सुख जाये तो छुई मुई के पते के पेस्ट का लेप कर दे। बार बार इसको दोहराते रहे जब तक ठीक से उपचार न हो।

दस्त

खूनीदस्त या पेचिश एक प्रकार का आंत्रशोध रोग है। इस रोग का मलाशय पर प्रभाव पड़ता है तथा पतला दस्त और खूनी बदबूयुक्त पेचिश की समस्या होती है। इस रोग से मुख्तय: पक्षी, भेड़ बकरियां, कुत्ते बिल्लियां बछड़े-बछड़ियां प्रभावित होते हैं। यह आमतौर से चार माह से दो साल तक के बछड़ों को प्रभावित करता है लाल पेचिश, खूनी पेचिश, खूनी दस्त, काक्सीडिया रूग्णता आदि इस रोग के अन्य नाम हैं। काक्सीडिया नामक प्रोटोजोआ इस रोग का प्रमुख कारण है तथाइसकी अलग-अलग जातियां हैं। छूतलगा चारा, पानी तथा चारागाह इस रोग को फैलाते हैं। अतिसार,पतला दस्त अथवा खूनी पेचिश इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं जो कि गाय भैंस के बछड़ों या कटड़ों में पाए जाते हैं। शुरुआत में यह रक्त अल्प मात्रा में आता है और तीव्रावस्था प्राप्त होते ही खून के साथ पखाना होता है। इस रोग के कारण भूख प्रभावित होती है तथा स्वास्थ्य

में गिरावट आती है। पशु की म्यूकस मेम्ब्रेन पीली पड़ने लगती है। रोग के कारण पशु में कमजोरी हो जाती है तथा उसे प्यास अधिक लगने लगती है। पशु दुर्बल होने लगता है तीव्र ज्वर का शिकार हो जाता है। इस रोग से बछड़े प्राय: निमोनिया ग्रस्त हो जाते हैं। पशु का पिछला धड़ कमजोर हो जाता है और वह खड़े रहने में असमर्थ हो जाता है। रोग अधिक गंभीर होने पर पखाने में तरलयुक्त रक्त आता है तथा चौथे या पांचवें दिन रोगी पशु मर जाता है।

उपचार: मेथी के बीज १० ग्राम, १ प्याज , १ गांठ लहसुन की,१० ग्राम जीरा के बीज ,५ ग्राम खसखस के बीज, १० ग्राम काली मिर्च, 5 ग्राम हिंग ,हल्दी १० ग्राम, १०० ग्राम गुड और मुट्ठीभर कड़ीपत्ता ले। सभी बीजो को फ्राईपैन में डाल कर तब तक गरम करे जब तक धुआ निकलने लगे। ठंडा कर इनको पिस कर पाउडर बना ले। बची हुए सामान के साथ मिलकर इसकी पेस्ट बना गोलिया बना कर २-३ दिन तक दिन में १ बार पशु को खिलते रहे जब तक दस्त रुक न जाये।

बार बार फुराव करना

भारत में डेयरी फार्मिंग और डेयरी उद्योग में बड़े नुकसान के लिए पशुओं का बांझपन ज़िम्मेदार है। पशुओं में, दूध देने के 10-30 प्रतिशत मामले बांझपन और प्रजनन विकारों से प्रभावित हो सकते हैं। अच्छा प्रजनन या बछड़े प्राप्त होने की उच्च दर हासिल करने के लिए नर और मादा दोनों पशुओं को अच्छी तरह से खिलाया-पिलाया जाना चाहिए और रोगों से मुक्त रखा जाना चाहिए। बांझ पशु को पालना एक आर्थिक बोझ होता है और ज्यादातर देशों में ऐसे जानवरों को बूचड़खानों में भेज दिया जाता है। गायों और भैंसों दोनों का यौन (कामोत्तेजना) 18-21 दिन में एक बार 18-24 घंटे के लिए होता है। लेकिन भैंस में, चक्र गुपचुप तरीके से होता है और किसानों के लिए एक बड़ी समस्या प्रस्तुत करता है। किसानों के अल-सुबह से देर रात तक 4-5 बार जानवरों की सघन निगरानी करनी चाहिए। उत्तेजना का गलत अनुमान बांझपन के स्तर में वृद्धि कर सकता है। उत्तेजित पशुओं में दृश्य लक्षणों का अनुमान लगाना काफी कौशलपूर्ण बात है। जो किसान अच्छा रिकॉर्ड बनाए रखते हैं और जानवरों के हरकतें देखने में अधिक समय बिताते हैं, बेहतर परिणाम प्राप्त करते हैं।

उपचार:

1. देसी इलाज गर्मी के लक्षण दिखाने के पहले दिन या २ दिन बाद शुरू करना चाहिए। गुड और नमक के साथ निम्नलिखित तरीके से पशु का इलाज करे।
2. पांच दिन तक एक सफ़ेद मूली प्रतिदिन खिलाये
3. एक पता गवारपठा प्रतिदिन ४ दिन तक
4. चार मुट्ठी सहजन के पते प्रतिदिन ४ दिन तक
5. चार मुट्ठी हडजोड के तने प्रतिदिन ४ दिन तक
6. चार मुट्ठी कड़ी के पते हल्दी के साथ प्रतिदिन ४ दिन तक लाभ ने होने की अवस्था में इलाज को दोहराएँ।

बुखार या ज्वर

शरीर का एक सामान्य तापक्रम होता है, जिससे ताप बढ़े तो ज्वर का होना कहा जाता है। ठंड का असर मानव ही नहीं, जानवरों में भी देखने को मिलता है। बुखार के लक्षण:बुखार में जानवर खाना बंद कर देते हैं।जानवर का शरीर तपने लगता है।जानवर का मुंह सूख जाता है।बचाव के उपाय:गुनगुना पानी पिलाएं।पशुदाने की मात्रा बढ़ा दें।जानवर को नमक और गुड़ दें।धूप में जानवर को बांधें व शाम को ठंड में बाहर न रखें।अधिक ठंड होने पर कंबल-बोरी से जानवर को ढक दें।

उपचार : १० ग्राम धनिया के बीज, १० ग्राम काली मिर्च , १० ग्राम जीरा के बीज को १५ मिनट तक पानी में भिगो ले। इसमे १० ग्राम हल्दी पाउडर, २ पोथी लहसुन, १ मुट्ठी तुलसी के पते,१० ग्राम शुष्कदालचीनी के पते, ५ पान के पते, २ छोटे प्याज की गांठी, २० ग्राम चिरायता के पते का पाउडर, १ मुट्ठी नीम के और तुलसीदल को १०० ग्राम गुड के साथ मिला कर पीसते बना ले। सुबहशाम थोड़ी थोड़ी मात्रा में खिलने से ज्वर ठीक हो जाएगा।

मुह खुर पका रोग

विभक्त-खुर वाले पशुओं का अत्यन्त संक्रामक एवं घातक विषाणुजनित रोग है। यह गाय, भैंस मुह और खुर पर घाव पैदा करता हैं जो समय पाकर व इलाज होने पर यह छाले व जख्म भर जाते हैं परन्तु संकर पशुओं में यह रोग कभी-कभी मौत का कारण भी बन सकता है। यह एक विषाणु जनित रोग हैं। प्रभावित पशु के मुँह से गिरने वाले लार एवं पैर के घाव के संसर्ग में आने वाले वस्तुओं पुआल, भूसा, घास आदि को जला देना चाहिए या जमीन

में गड्ढा खोदकर चूना के साथ गाड़ दिया जाना चाहिए। मुंहपका-खुरपका रोग किसी भी उम्र की गायें एवं उनके बच्चों में हो सकता है। इसके लिए कोई भी मौसम निश्चित नहीं है, कहने का मतलब यह हे कि यह रोग कभी भी गांव में फैल सकता है। हालांकि गाय में इस रोग से मौत तो नहीं होती फिर भी दुधारू पशु सूख जाते हैं। इस रोग का क्योंकि कोई इलाज नहीं है इसलिए रोग होने से पहले ही उसके टीके लगवा लेना फायदेमन्द है

उपचार : जैसा की विदित हैं कि मुह्खुर पका रोग से बचाव महत्वपूर्ण जो टीकाकरण से संभव हैं। रोग की अवस्था में मुह और खुरों के आसपास घाव बन जाते हैं जिसके कारन पशु को खाने पिने और चलने में दिकत होती हैं। इन घाव के उपचार के लिए निम्नलिखित घरेलु दवाओ का प्रयोग कर पशु को इस कष्ट से आराम दिलाया जा सकता हैं। मुट्ठी मुट्ठी भर खोकली, मेहँदी, तुलसी और नीम के पते में २० ग्राम हल्दी पाउडर और १० लहसुन की गांठ डाल ले और ठीक से मिलाये। २५० मिलिलिटर तिल या नारियल तेल में उबाले तथा ठंडा होने देघाव को अच्छी तरह साफ कर इसका सीधे या साफ कपडे पर लगा कर उपयोग करे। अगर घाव में कीड़े हैं तो काम्फेर्युक्त नारियल का तेल पहले दिन लगाये उसके बाद इस दवा का प्रयोग करे।

पेट के कीड़े

दुर्गन्ध व दूषित आहार के कारण पेट में कीड़े पड़ जाते है । जो अन्दर ही अन्दर पशु का रक्त चूसकर अत्यन्त कमज़ोर कर देते है । इन सफ़ेद रंग के कीड़ों को पशु के गोबर में सहजता से देख सकते हैं । पेटदर्द व भूख की वृद्धि होने पर भी कमज़ोरी , खाँसी , आँखों से कम दिखना , ख़ून की कमी , त्वचा का स्वाभाविक रंग बदल जाने से इस रोग को सहज ही जाना जा सकता हैं । पशुओं को सड़ा - गला खानें या पोंखर- तालाब का गन्दा पानी पीने आदि कारणों से प्राय: पशुओं के पेट में कीड़े पड़ जाते है । यह रोग प्राय: छोटे पशुओं यानि बछड़ों को होता हैं , किन्तु कभी- कभी बड़े पशुओं को भी हो जाता हैं । इस रोग से ग्रस्त पशु चारा- दाना तो बराबर खाता- पिता रहता है , किन्तु उसका शरीर नहीं पनपता हैं । वह प्रतिदिन दूबला होता जाता हैं । ध्यान से देखने पर उसके गोबर में छोटे- छोटे कीड़े चलते हुए दिखाई देते है मुख्यत: यह कीड़े दो प्रकार के होते हैं - १- लम्बे कीड़े , २- गोल कीड़े । छोटे बछड़े प्राय: मिट्टी खाने लगते हैं , जिससे उनके पेट में लम्बे कीड़े हो जाते हैं । इन्हीं कीड़ों के कारण उन्हें अक्सर क़ब्ज़ हो जाती हैं अथवा मैटमेले रंग के बदबूदार दस्त आने लगते है ।

उपचार: एक प्याज , सरसों के बीज १० ग्राम, लहसुन की ५ गांठ, मुट्ठीभर नीम और छोटा हल्कुसा के पते, १० ग्राम जीरा और ५० ग्राम करेला, हल्दी और काली मिर्च ५-५ ग्राम और १००-१०० ग्राम केले का तना तथा गुड ले ले। सभी बीजो को आधा घंटे लिए भिगो कर बाकि सब के साथ मिला कर पिस ले। इस पिसे हुए पेस्ट की गोलिया बना कर नमक के साथ दिन में एक बार तीन दिन खिलाने से पेट के कीड़े साफ़ हो जायेंगे।

चेचक

इस रोग को “कैटिल प्लेग” भी कहते हैं । यह रोग फटे खुरों वाले तथा जूगाली करने वाले पशुओं का सबसे अधिक भंयकर छूत रोग हैं । इस रोग के विषाणु पशु की लार, झाग, आँख, नाक से बहने वाले पानी एवं मल- मूत्र में पाये जाते हैं बाद में रक्त द्वारा ही प्लीहा, यकृत तथा लसीका (लिम्फ ग्रन्थियाँ) आदि अवयवों में फैल जाते हैं । ये सर्दी तथा नमी में बढ़ते रहते हैं तथा सुरक्षित रहते हैं किन्तु सूर्य की तेज़ धूप में नष्ट हो जाते हैं । ये रोग हवा, पानी, चारे - दाने, बर्तन तथा टहल करने वाले व्यक्ति के द्वारा एक रोगी पशु से अन्य पशुओं में फैलता चला जाता हैं । यह रोग इस रोग से मृत पशुओं की खाल खींचने से भी फैलता हैं । किसी स्वस्थ पशु को इस रोग की छूत लगने के बाद उसमे छ: दिन के बाद इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।। सबसे पहले पशु को तेज़ बुखार चढ़ता हैं । बखार १०४डिग्री फारेनहाइट से १०६ डिग्री फारेनहाइट तक हो जाता हैं । जोकि ४८ घन्टों में अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता हैं । इस दशा में पशु अत्यधिक सुस्त होकर थर-थर काँपने लगता हैं तथा उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं । आँखों की पुतलियाँ सिकुड़ जाती हैं तथा पीठ कमानी की भाँति मुड़ जाती हैं । पशु चारा-दाना खाना और जूगाली करना बन्द कर देता हैं । पेट में क़ब्ज़ हो जाती हैं तथा १-२ दिन के बाद पशु पतला गोबर करने लगता हैं, फिर उसमें आँव आने लगती हैं । कभी- कभी मल त्याग में ख़ून के क़तरे भी आते हैं तथा यह गोबर बहुत ही दुर्गन्धित होता हैं । रोगी पशु को प्यास अधिक लगती हैं, वह दाँत पीसता हैं, उसके पुट्ठे ऐंठने लगते हैं, कान तथा गर्दन लटक जाती हैं । नाड़ी की गति ७० से १०० प्रति मिनट तक होती हैं । पशु की आँखों से पानी तथा कीचड़ बहने लगता हैं । पशु की दशा बहुत शोचनीय हो जाती हैं । लगभग ७ वें दिन से ९ वें दिन तक पशु के होंठों के भीतर की ओर मसूड़ों तथा मुँह की श्लैष्मिक झिल्ली पर आलपिन की नोंक की भाँति छोटे-छोटे काँटेदार छालें निकल आते हैं, जोकि बाद में

बढ़कर फफोलों का रूप धारण कर लेते हैं। इन फफोलों पर भूसी जैसी छाई रहती हैं। इसी प्रकार के छालें बाद में - पशु की आँतों में भी जाते हैं। दस्तों की तीव्रता और मुख के छालों की वजह से कुछ भी खा- पी न सकने के कारण पशु दुर्बल होकर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह जाता हैं। सामान्यत: ८-१० दिन तक पशु इस दशा में जीवन - मृत्यु से संघर्ष करता हुआ मर जाता हैं। किन्तु यदि २०-२२ दिन तक पशु इस रोग को झेल जाता हैं , तो प्राय: बच भी जाता हैं। यह रोग गाय , भैंस , बैल आदि पशुओं की ही भाँति भेड़- बकरी में। भी होता हैं जोकि एक ही प्रकार के रोग विषाणुओं द्वारा उत्पन्न होता हैं , किन्तु भेड़ - बकरियों में इसके लक्षण गाय से अलग होते हैं। चेचक ग्रस्त पशु को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए। जिस जगह सर्दी - गर्मी , तेज़ हवा आदि न हो - ऐसे स्थान में रोगी पशु को रखना चाहिए तथा उस स्थान पर सदैव गन्धक का धूआँ देना चाहिए। आदि उसे दस्त न हों तो ऐसी दशा में जूलाब देना चाहिए। माता निरोधक टीका लगवा देना सर्वोत्तम उपाय हैं।

उपचार: अरण्डी तेल २५० ग्राम , गर्म पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए। सरसों का तेल २५० ग्राम और सोंठपावडर २ तौला देना चाहिए। चावल का माण्ड आधा शेर और नमक २ तौला (१ खुराक) पिलानी चाहिए। त्रिफला का काढ़ा (हरड़, बहेड़ा, आँवला - प्रत्येक आधा-आधा छटांक) पिलाना चाहिए। हल्दी १ छटांक, और केरला की पत्ती का रस आधा पाँव पिलाना चाहिए। परवल का पत्ता , नीम का पत्ता, पारिजात (हारश्रगाँर) का पत्ता, गुरूच, अरूस, नागरमोथा, चिरायता और कुटकी - प्रत्येक १-१ तौला लेकर काढ़ा बनाकर पिलायें। भटकटैया की जड १ छटांक और मिर्च आधी छटांक का काढ़ा बनाकर पिलायें। प्याज़ का रस २५० ग्राम दिन में २ बार पशु को पिलाना चाहिए। बेल पत्थर की की पत्ती पीसकर और मट्ठा मिलाकर पिलाना चाहिए। माता निकलने से पहले तीन दिन तक पशुओं को २०-२५ सेमल के बीज ४-४ घन्टे के अन्तर पर खिलाने से पशुओं के शरीर में रोगप्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती हैं और पशु माता रोग के घातक प्रभाव से बचे रहते हैं। तथा बिमार होने का ख़तरा टल जाता हैं। औषधि - कपूर और कलमीशोरा ९-९ माशा , धतुरे के बीजों का बारीक पिसा हुआ चूर्ण और चिरायता ३-३ माशा तथा देशी शराब आधा पाँव लें। पहले कपूर को शराब में घोल लें तदुपरान्त अन्य दवाओं को उसमें घोल लें और पशु को पिला दें। माता रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने में यह योग वाले मादा पंशुओं को होती हैं। उनके थनों पर आरम्भ में छोटी- छोटी फुन्सियाँ होती हैं। जो ४-५ दिन में मवादयुक्त होकर लगभग डेढ़ सप्ताह तक बढ़ती रहती हैं। उसके बाद उनका शुष्क होना शुरू हो जाता हैं और लगभग २० दिनों तक सुखकर खत्म हो जाती हैं। रोगी पशु का दूधँ घट जाता हैं। और बुखार भी हो जाता हैं। इस रोगी पशु का दूध पीने वाले व्यक्ति को भी बुखार हो जाता हैं। मनुष्य को इस बिमारी से बिमार पशु का दूधँ नहीं पीना चाहिए। ब्लकि यह दूधँ रोगी पशु को ही पिला देना चाहिए।

उपचार: नीम की हरी पत्तियाँ रोगी बहुत प्रभावी हैं। हिना (मेहन्दी) के पत्ते २ तौला, नीम के फूल २ तौला, चिरायता १ तौला लेकर सभी को पानी में पकाकर छाकर नमक मिलाकर पशु को नाल द्वारा पिलाने से लाभकारी सिद्ध होता हैं। बबूल की पत्ती ८ तौला, कत्था ३ तौला, चूना ९ माशा, सभी को बारीक पीसकर देशी शराब १२ तौला, आधा शेर पानी में मिलाकर पशु को नाल द्वारा पिलाने से अतिगुणकारी होता हैं। चूने का पानी आधा शेर, अफ़ीम ३ माशा, बबूल का गोंद आधा पाँव लेकर चूने के के पानी में अफ़ीम व गोंद को अच्छी तरह मिलाकर घोल लें। इसके बाद इस दवा की तीन खुराक बना लें और एक दिन में ४ -४ घन्टे बाद पशु को पिलानी चाहिए।

चेचक (काऊपाक्स)

यह बिमारी हमेशा दूधँ देने पशु को नित्यप्रति खिलानी चाहिए। हरड़ २ तौला, बहेड़ा २ तौला, आँवला २ तौला, लेकर इन सब को १ किलो पानी में डालकर काढ़ा बनाकर गुनगुना पशु को नाल द्वारा पिलाने से आराम आता हैं। अलसी का माण्ड और नमक (कच्ची अलसी आधा शेर कुटकर आधा पाँव नमक और ढाई शेर पानी में ख़ूब पकाकर माण्ड बना लें) लेकर रोगी पशु को पिलाने से आराम आता हैं। फिटकरी या नीम की पत्तियों के ऊबाले हुए जल से थनों को धोयें इससे रोग के फैलने ख़तरा नहीं रहता हैं। घाव पर थोड़ी सी नीम की पत्ती ,थोड़ी लालमिर्च दोनों को पीसकर थोड़ा सिन्दुर डालकर मिलाकर एक मिट्टी के बर्तन में रख दें। उसमें थोड़ा सा पानी डालकर जिससे वह सुखँ न जाए पतला सा करके किसी नर्म कपडे से पशु के घाओं पर लगना चाहिए।

उपरोक्त में वर्णित बीज और वनस्पति के उपयोग से बीन धन खर्च किये बहुत सी बीमारियों का उपचार कर सकते हैं।

जीवन का आधार है - स्तम्भ कोशिकाएँ

अनुज कुमार सिंह सिकरवार, जूही पाठक एवं एस.डी. खर्चे

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, मखदूम, मथुरा-281122

सभी जीवों के शरीर का निर्माण कोशिकाओं तथा विभिन्न अंगों का पोषण रक्त के माध्यम से होता है। इन दोनों की निर्माण कारक हैं- स्तम्भ कोशिकाएँ (स्टेम सेल्स), जो सभी जीवधारियों के शरीर में पायी जाती हैं। ये जीवधारी के शरीर रूपी भवन के निर्माण की ईंटें तथा उसकी टूट-फूट को सही/मरम्मत करने की सामग्री भी हैं। इनमें शरीर के किसी भी अंग को विकसित करने की क्षमता होती है और ये किसी भी प्रकार की कोशिका में परिवर्तित हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में स्तम्भ कोशिका ऐसी अविकसित कोशिका है,जो विकसित कोशिका के रूप में विशिष्टता अर्जित करने की क्षमता रखती है। स्तम्भ कोशिका शरीर के किसी भी अंग के निर्माण का सामर्थ रखती है। शरीर में कहीं भी क्षति/टूट-फूट होने पर स्तम्भ कोशिकाएँ तत्काल सक्रिय हो जाती हैं। ये शरीर के सूक्ष्म चिकित्सकों की सेना की भाँति कार्य करती हैं और मनुष्य को समय से पहले वृद्ध होने से बचाती हैं। इनको शरीर की किसी भी कोशिका की मरम्मत के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

आजकल स्तम्भ कोशिकाओं के माध्यम से 'क्लोनिंग' के क्षेत्र में अद्भुत तथा विस्मरणीय योगदान दिया जा रहा है। इसके साथ ही जैव प्रौद्योगिकी ने चिकित्सा के क्षेत्र में एक नयी शाखा 'स्तम्भ कोशिका चिकित्सा' (स्टेम सेल्स थैरेपी) को जन्म दिया है। इसमें उन कोशिकाओं का अध्ययन किया जाता है जिनमें वृद्धि, विभाजन तथा विभेदन कर नए ऊतक निर्माण की क्षमता हो। सबसे पहले रक्त निर्माण करने वाले ऊतकों से इस चिकित्सा का विचार और प्रयोग शुरू हुआ। मानव शरीर की सभी कोशिकाओं का निर्माण स्तम्भ कोशिकाओं द्वारा किया जाता है। मानव शरीर के प्रत्येक अंग के लिए विशेष प्रकार की स्तम्भ कोशिकाएँ होती हैं।

क्लोनिंग से भिन्न स्टेम सेल चिकित्सा

क्लोनिंग और स्टेम सेल दोनों अलग-अलग हैं। क्लोनिंग में जीव का प्रतिरूप तैयार होता है। यह प्रतिरूप डीएनए से तैयार होता है। डीएनए कोशिका में पाया जाता है, जबकि कोशिका से वही अंग बनाया जा सकता हैं जिस अंग को बनाने के लिए वह कोशिका निर्धारित हो। यदि किसी कारण हृदय या किसी अन्य अंग की कोशिकाएँ खराब हो गई हैं, इन्हें सुधारने/मरम्मत करने के लिए स्तम्भ कोशिकाओं का इस्तेमाल किया जा सकता है। अगर आँख की कोर्निया की कोशिकाएँ खराब/नष्ट हो जाएँ, उस दशा में स्तम्भ कोशिकाओं से उन्हें विकसित कर प्रत्यारोपित किया जा सकता है। ऐसे ही मानव के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्व विटामिन-सी को रोगों के उपचार के उद्देश्य से स्तम्भ कोशिका उत्पन्न करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अस्थि (हड्डी) मज्जा से प्राप्त होने वाली स्तम्भ कोशिकाएँ जीवनभर शरीर में रक्त बनाती हैं। स्तम्भ कोशिकाओं को कैन्सर और दूसरे अति गम्भीर तथा प्राण घातक रोगों के उपचार हेतु प्रत्यारोपण कर पूरी रक्त प्रणाली को पुनर्संचित किया जा सकता है।

स्तम्भ कोशिका के प्रकार

» जनन क्षमता के आधार पर

स्तम्भ कोशिका को जनन क्षमता के आधार पर पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार है- टोटीपोटेण्ट, प्लूरियोपोटेण्ट, मल्टीपोटेण्ट, ओलीगोपोटेण्ट तथा यूनीपोटेण्ट।

1. **टोटीपोटेण्ट:** यह स्तम्भ कोशिकाएँ अण्डाणु और शुक्राणुओं के संलयन से उत्पन्न निषेचित अण्डाणु के कुछ विभाजनों द्वारा प्राप्त होती हैं। ये सम्पूर्ण जीव को बनाने में सक्षम होती है। यह स्तम्भ कोशिका मानव शरीर की सभी प्रकार की कोशिकाओं में विभाजित हो सकती हैं। इसे प्रारम्भिक भ्रूणीय अवस्था (लगभग 5 दिन) में प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु इसे प्राप्त करने के क्रम में भ्रूण की मृत्यु हो सकती है। इसलिए यह चिकित्सीय प्रयोग के लिए प्रतिबन्धित है। अनुसंधान और अध्ययन हेतु इस स्तम्भ कोशिका की प्राप्ति प्रयोगशाला में विकसित भ्रूण से की जाती है।

2. **प्लूरीपोटेन्ट -** यह टोटीपोटेण्ट के विभाजन से प्राप्त होती हैं। यह स्तम्भ कोशिकाएँ भी अण्डाणु तथा शुक्राणुओं के संलयन से उत्पन्न होती हैं, किन्तु निषेचित अण्डाणु के विभाजनों से प्राप्त ब्लास्टोसिस्ट अवस्था के भीतर आन्तरिक द्रव्यमान कोशिका के रूप में उत्पन्न होता है। ये स्तम्भ कोशिकाएँ प्लेसेण्टा को छोड़कर शरीर के किसी भी प्रकार के ऊतक को बना सकती हैं। इन्हें मानव शरीर में पाये जाने वाले अधिकतर कोशिकाओं और ऊतकों के निर्माण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इसे चिकित्सीय दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण 'स्तम्भ कोशिका' माना जाता है।
3. **मल्टीपोटेन्ट स्तम्भ कोशिका-** इस प्रकार की कोशिकाओं का सीमित सीमा/क्षमता/सामर्थ होता है। जैसे- अस्थि मज्जा मल्टीपोटेण्ट स्तम्भ कोशिका होती है जो लाल रक्त कोशिकाओं, सफेद कोशिकाओं तथा प्लेटलेट्स मिजेनकाइमल स्तम्भ कोशिका, हिमेटोपोइटिक स्तम्भ कोशिका आदि को उत्पन्न /जन्म देती है। इस प्रकार ये कोशिकाएँ प्रायः शरीर में मृत कोशिकाओं को इनके द्वारा बदलने के अच्छे स्रोत के रूप में कार्य करती है।
4. **ओलीगोपोटेन्ट स्तम्भ कोशिका-** इस प्रकार की कोशिकाओं के उदाहरणों में (वयस्क) लिम्फाइड या मायलोमा स्तम्भ कोशिकाएँ तथा प्रजनन कोशिकाएँ शामिल है।
5. **यूनीपोटेन्ट स्तम्भ कोशिका-** इस प्रकार की कोशिकाएँ केवल स्वयं की कोशिकाएँ बना सकती हैं। लेकिन स्वयं स्तम्भ कोशिका बनाने के लिए इन्हें स्तम्भ कोशिका लेबल करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वयस्क माँसपेशीय स्तम्भ कोशिका इत्यादि।

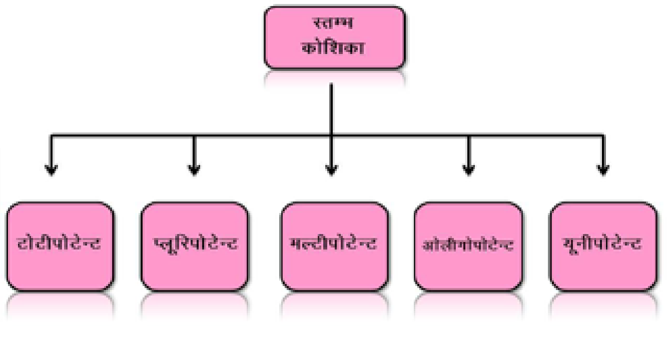

» **स्रोत के आधार पर**

इसके अलावा स्तम्भ कोशिकाओं को उनके स्रोत के आधार पर भी बाँटा गया है। स्तम्भ कोशिकाओं को वैज्ञानिक उपयोग के स्रोत के आधार पर भ्रूणीय तथा वयस्क में विभाजित किया है। भ्रूण स्तम्भ कोशिकाएँ ब्लास्टोसिस्ट (एक बहुत ही प्रारम्भिक भ्रूण) के आन्तरिक कोशिका द्रव्यमान से ली जाती है और वयस्क स्टेम कोशिकाएँ परिपक्व ऊतक से ली जाती है।

1. **भ्रूणीय स्तम्भ कोशिका (एम्ब्रियोनिक स्टेम सेल)-**भ्रूण स्टेम कोशिकाओं स्व-प्रतिकृति प्लुरिपोटेंट कोशिकाऐं हैं जो मूल रूप से अविनाशी है। भ्रूण स्टेम कोशिकाऐं आम तौर पर चार या पांच दिन पुरानी होती है और कोशिका की ब्लास्टोसिस्ट अवस्था में सूक्ष्म खोखली गेंद के रूप में होती है। अन्तर द्रव्यमान व्युत्पन्न कोशिकाऐं लगातार बढ़ती रहती है और उन्हें अनिश्चित काल तक दोहराती रहती है और फिर शरीर की किसी भी प्रकार की कोशिका को बनाने की क्षमता को बनाए रखती है। मानव शरीर की रचना अगणित या असंख्य कोशिकाओं से मिलकर होती है। कोशिकाओं के अपने कार्य होते हैं। यह स्तम्भ कोशिका विभाजित होने के पश्चात् भी पुनः पूर्ण रूप धारण कर लेती हैं। इससे करीब-करीब शरीर की सभी कोशिकाओं को निर्मित किया जा सकता है। दूसरी कोशिकाएँ विभाजन होने पर क्षतिग्रस्त हो सकती है। अधिकतर स्तम्भ कोशिकाएँ भ्रूण से प्राप्त की जाती हैं जो जन्म के समय से ही सुरक्षित रखी जाती हैं। इनके अलावा बाद में उत्पन्न में हुए किसी छोटे भाई या बहन के जन्म के समय सुरक्षित रखी कोशिकाएँ भी सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

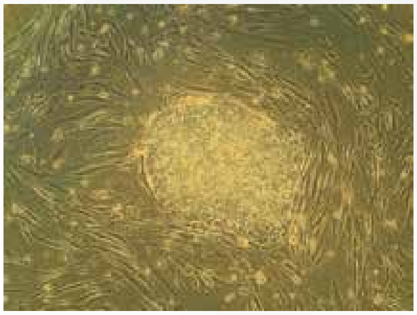

एम्ब्रियोनिक स्टेम सेल
(साभार - विकीपीडिया)

स्टेम कोशिकाऐं मुख्य रूप से इन विट्रो फर्टिलाइजेशन, भ्रूण या भ्रूण के माध्यम से प्राप्त वैकल्पिक गर्भपात द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार आन्तरिक कोशिका द्रव्यमान (इनर सेल मॉस) को प्रतिरक्षा-शल्य चिकित्सा द्वारा पृथक किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के एम्ब्रियोनिक स्टेम कोशिका को पृथक किया जा सकता है। जैसे -

1. भ्रूण जीवीय कोशिका
2. एम्निओटिक उपकला कोशिका

जैव वैज्ञानिक इन स्तम्भ कोशिकाओं को अनुसंधानशालाओं में विकसित कर रहे हैं क्योंकि यह शरीर के किसी भी अंग और तन्तु को बनाने में भी सक्षम हैं। यही इस स्तम्म कोशिका की विशेषता है। सन् 1960 में कनाडा के वैज्ञानिकों अर्नेस्ट ए मुकलॉक तथा जेम्स ई टिल की खोज के पश्चात् स्तम्भ कोशिकाओं के उपयोग को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इनके द्वारा किसी भी अंग की मरम्मत कर उसे सुधारा जा सकेगा। इन्हीं स्तम्भ कोशिकाओं से रक्त, त्वचा, हड्डी, मस्तिष्क आदि का निर्माण किया जा सकता है। इन स्तम्भ कोशिकाओं को स्वस्थ कोशिकाओं में विकसित करने में उपयोग किया जा सकता है।

2. **गैर भ्रूण स्टेम कोशिकाएँ-** इन्हें वयस्क स्तम्भ कोशिका भी कहा जाता है। नैतिक बाध्यता के कारण भ्रूणीय स्तम्भ कोशिकाओं की जगह व्यस्क स्तम्भ सेल कोशिकाओं का व्यापक उपयोग होने लगा है। व्यस्क स्तम्भ कोशिका अविभाजित वह मल्टीपोटेंट कोशिकाऐं है जो भ्रूण के विकास के बाद सम्पूर्ण शरीर के विकसित ऊतकों में पायी जाती हैं जो कि कोशिका विभाजन के द्वारा मृत कोशिकाओं एवं क्षतिग्रस्त ऊतकों को पुनःरूत्पादन करती है। एक जीवित जीव में व्यस्क स्तम्भ कोशिकाओं की प्राथमिक भूमिका ऊतक को बनाए रखने एवं जिस अंग में वे पाए जाते है उसकी मरम्मत करने की होती है।

मानव के विकास के प्रारम्भिक चरणों में व्यस्क स्तम्भ कोशिकाओं की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। जैसे कि मानव शरीर में रक्त बनाने का कार्य 'हिमेटोपोइटिक' नामक रक्त स्तम्भ कोशिकाएँ करती है। यह स्तम्भ कोशिकाएँ भ्रूण के गर्भ नाल और अस्थि मज्जा में होती है।

परिपक्व स्तम्भ कोशिकाएँ विशिष्ट परिपक्व शरीर के ऊतकों के साथ-साथ जन्म के बाद नाभि और प्लेसेण्टा से प्राप्त कि जा सकती है । इस प्रकार की कोशिकाओं का उपयोग पुनर्योजी चिकित्सा के लिए किया जाता है। इन कोशिकाओं का लगभग 30 वर्षों के लिए सुरक्षित उपयोग किया जा सकता है।

परिपक्व ऊतकों में व्यस्क स्टेम कोशिकाओं की उत्पत्ति अभी भी शोध में है एवं कुछ व्यस्क स्टेम कोशिका निम्न है -

- अस्थि मज्जा हिमेटोपोइटिक स्टेम कोशिका
- अस्थि मज्जा स्ट्रोमल स्टेम कोशिका
- मिजेनकाइमल स्टेम कोशिका
- तंत्रिका स्टेम कोशिका
- अग्नाशयी स्टेम काशिका
- त्वचीय स्टेम कोशिका
- शुक्राणुजन्य स्टेम कोशिका

प्रेरित प्लुरिपोटेंट स्टेम सेल (इन्डूस्ड प्लुरिपोटेंट स्टेम सेल)

हाल ही में वैज्ञानिकों ने दैहिक कोशिकाओं में प्रेरित जीन को जोड़कर प्रेरित प्लुरिपोटेंट स्टेम कोशिका का निर्माण किया है। ताकाहासी एवं यामानाका नामक वैज्ञानिकों ने दैहिक कोशिकाओं की रिप्रोग्रामिन द्वारा प्लुरिपोटेंट कोशिकाऐं उत्पन्न की। ये प्रेरित प्लुरिपोटेंट कोशिकाऐं भ्रूणीय स्टेम कोशिका की तरह समान विशेषताऐं रखती हैं, क्योंकि प्रयोगशाला में किये गए प्रयोग के आधार पर प्रेरित प्लुरिपोटेंट स्तम्भ कोशिका, भ्रूणीय स्टेम कोशिका की रूपरेखा, मार्करों के द्वारा व्यक्त करना, सामान्य कैरियोटाइपिंग, तीन प्राथमिक परतों में विभाजित करने की क्षमता को बनाये रखती है। इस प्रकार प्रेरित प्लुरिपोटेंट व्यस्क कोशिकाऐं जिन्हें भ्रूण स्टेम कोशिकाओं के परिभाषित गुणों को बनाए रखने के लिए जीनों और कारकों को व्यक्त करने के लिए मुख्य रूप से अभिव्यक्त करने के लिए भ्रूणीय स्टेम कोशिका समान आनुवंशिक रूप पुनः दिया गया है।

भविष्य की स्टेम सेल चिकित्सा

आजकल बच्चों के जन्म के समय गर्भनाल से स्टेम सेल लिए जा रहे हैं जिन्हें स्टेम सेल बैकों में -196 डिग्री सेल्सियस तापमान पर स्टोर कर दिया जाता है। कुछ समय पहले जब फिल्म स्टार संजय दत्त और मान्यता ने अपने जुड़वां बच्चों के स्टेम सेल एक बैंक में जमा कराए थे तो इसकी खासी चर्चा हुई थी। अनुमान है कि देश में लाखों लोग अब तक ऐसा कर चुके हैं। अकेले स्टेम सेल बैंकिंग का कारोबार ही देश में सौ करोड़ से ऊपर पहुंच चुका है। बैंक इसके लिए एक मुश्त 70 से 80 हजार रुपये तथा प्रतिवर्श 5-10 हजार रुपये का शुल्क लेते हैं। यूं कभी दुर्घटना और बीमारी के कारण शरीर के किसी अंग को क्षति पहुंचती है तो बैंक में जमा स्टेम सेल लेकर उनसे प्रयोगशाला में कोशिकाएं तैयार की जा सकती हैं तथा उन्हें क्षतिग्रस्त अंग में प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

एक बच्चे के स्टेम सेल से खून के रिश्ते के सभी लोगों के लिए कोशिकाएं तैयार की जा सकती हैं। भ्रूण या गर्भनाल से एकत्र किए गए स्टेम सेल ज्यादा उपयोगी रहे हैं। गर्भनाल को अभी तक बेकार की वस्तु समझा जाता था तथा काट कर कूड़े में फेंक दिया जाता था। अब यही भावी बीमारियों से मुक्ति का जरिया बन चुकी है। वयस्क व्यक्ति के रक्त या बोनमैरो से एकत्र किए गए स्टेम सेल के विकसित होने की गति धीमी है, जबकि भ्रूण कोशिकाओं से हर अंग की कोशिका विकसित हो जाती है। बीमार व्यक्ति को खून के रिश्ते के व्यक्ति के स्टेम सेल से उपचार किया जा सकता है। मसलन यदि कोई व्यक्ति रक्त कैंसर से ग्रस्त है तो ऐसे में खून के रिश्ते के व्यक्ति के बोनमैरो से स्टेम सेल लेकर उन्हें प्रयोगशाला में तैयार किया जाएगा तथा बीमार व्यक्ति को प्रत्यारोपित कर दिया जाएगा। ये कोशिकाएं कैंसर की वजह से नष्ट हो रही कोशिकाओं को बदल देंगी।

ये कोशिकाएं विभाजित होकर ऐसी कोशिकाएं बनातीं हैं, जो पूर्ण सक्षम होतीं हैं अर्थात विभाजित होने पर प्रत्येक कोशिका सम्पूर्ण जीव बना सकती है। ये कोशिकाएं विभाजित और विभेदित होकर विशेष कोशिकाएं बनातीं हैं, जो प्रत्येक ऊतक को पुनर्जीवित करने की क्षमता रखतीं हैं। इन्हें बहु-सक्षम कोशिकाएं कहते हैं। ये कोशिकाएं प्रत्येक ऊतक में संरक्षित रहतीं हैं, तथा ऊतकों में कोशिका जनन तथा पुनः संरचना के लिए उपयोगी होती हैं। इनके स्थान पर आंशिक सक्षम कोशिकाएं भी प्रयोग की जा सकतीं हैं। इनका लाभ यह है कि किसी भी प्रकार के ऊतक विभेदन के लिए इन्हें प्रेरित किया जा सकता है, क्योंकि ये भ्रूण से प्राप्त की जाती है। हृदय रोग तथा मधुमेह के निदान में, विभेदित कोशिकाओं का बड़ा महत्व है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में भी विशेषतः तंत्रिकाओं का प्रत्यारोपण इनकी अवस्थाओं में सुधार लाने की क्षमता रखता है। क्षतिग्रस्त अंगों की मरम्मत भी इनसे की जा सकती है।

स्तम्भ कोशिका उपचार के अंतर्गत विभिन्न रोगों के निदान के लिए स्तंभ कोशिका का प्रयोग किया जाता है। भारत में भी इसका प्रयोग होने लगा है। इसकी सहायता से कॉर्निया प्रत्यारोपण में और हृदयाघात के कारण क्षतिग्रस्त मांसपेशियों के उपचार में सफलता मिली है। सन् 2009 में अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण ही स्टेम कोशिका का एकमात्र घोषित अनुप्रयोग हुआ है। अधिकांशत: रोग के उपचार में प्रयुक्त स्टेम कोशिका रोगी की ही कोशिका होती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि बाद में चिकित्सकीय असुविधा न हो। पार्किसन रोग में भी इसका प्रयोग किया जा रहा है। न्यूरोमस्कूलर रोग, आर्थराइटिस, मस्तिष्क चोट, मधुमेह, डायस्ट्रोफी, पक्षाघात, अल्जाइमर जैसे रोगों के लिए स्टेम सेल उपचार को काफी प्रभावी माना जा रहा है। प्रयोगशाला में बनाई गई स्टेम कोशिकाएँ निकट भविष्य में कई प्रकार के रक्त कैंसर का उपचार कर सकती हैं। इस प्रक्रिया द्वारा दांत का उपचार भी संभव है।

एक जापानी स्टेम कोशिका वैज्ञानिक युकियो नाकामुरा के अनुसार एप्लास्टिक एनीमिया यानि लाल रक्त कणिकाओं की कमी और थैलीसीमिया का स्टेम कोशिका तकनीक से उपचार संभव है। इस तकनीक में भ्रूणीय स्टेम कोशिकाओं का उपयोग नहीं होता, अतएव यह नैतिक विवादों से परे है। कैंसर-रोधी तत्वों के माध्यम से रक्त कैंसर कोशिकाओं को समाप्त करने के साथ सामान्य हीमेटोपोयोटिक कोशिकाओं को भी समाप्त कर दिया जाता है। एप्लास्टिक एनीमिया और थलेसेमिया मरीजों को बार-बार रक्त के घटकों की आवश्यकता रहती है, व सामान्यतया रोगी के समान रक्त समूह वाले दाता हर समय उपलब्ध होना मुश्किल होता है। इसलिये उनके दल ने ऐसी तकनीक विकसित की है, जिससे प्रयोगशाला में अन्य कोशिकाओं से लाल रक्त कणिकाओं का उत्पादन किया जा सकता है। इसे पशुओं में सुरक्षित और प्रभावी तरीके से साबित किया जा चुका है।

कैलिफोर्निया के स्क्रिप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट के अनुसंधानकर्ताओं की टीम ने एसएनपी जीनोटाइप नामक उपकरण के उपयोग करते हुए वैज्ञानिकों ने एक सरल तकनीक खोजी है। इस तकनीक से मानव की भ्रूणीय स्टेम कोशिकाओं की लाइन का निर्धारण संभव होगा। स्टेम कोशिकाओं की लाइनों के जातीय मूल ज्ञात करने हेतु एक नयी तकनीक अविष्कृत की है, जिससे विभिन्न रोगों के इलाज के लिए प्रभावी दवाओं तथा चिकित्सा पद्धतियों को तैयार करना संभव होगा। स्टेम कोशिका लाइन लगातार विभाजित होने वाली कोशिकाओं का एक समूह है जो स्टेम कोशिकाओं के एकल पैतृक समूह से निर्मित होता है। अभी तक प्रयोगशालाओं में प्रयोग हो रहे स्टेम कोशिका समूह अधिकतर काकेसियन और पूर्वी एशियाई आबादियों से हैं जबकि अफ्रीकी मूल के लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। जातीय मूल के अंग दाताओं और प्राप्तकर्ताओं के बीच असंगति से ऊतक प्रत्यारोपण संबंधी चिकित्सकीय परिणाम प्रभावित होते हैं एवं जातीय पृष्ठभूमि के आधार पर विशिष्ट दवाइयों की क्षमता और उनके सुरक्षित उपयोग की जानकारी भी प्राप्त होती है। जातीय मूल की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण होती है, जिसे हर स्टेम कोशिका लाइन के साथ उपलब्ध किया जाना चाहिए। जो कोई भी स्टेम कोशिका के साथ काम करने वाला हो उसे इस प्रकार का विश्लेषण करना चाहिए।

स्टेम कोशिका उपचार एक प्रकार की हस्तक्षेप इलाज पद्धति है, जिसके तहत चोट अथवा विकार के उपचार हेतु क्षतिग्रस्त ऊतकों में नयी कोशिकायें प्रवेश कराई जाती हैं। कई चिकित्सीय शोधकर्ताओं का मानना है कि स्टेम कोशिका द्वारा उपचार में मानव विकारों का कायाकल्प कर पीड़ा हरने की क्षमता है। स्टेम कोशिकाओं में, स्वयं पुनर्निर्मित होकर अलग-अलग स्तरों में आगामी नस्लों की योग्यताओं में आंशिक बदलाव के साथ निर्माण करने की क्षमता के चलते, ऊतकों को बनाने की महत्वपूर्ण खूबी तथा शरीर के विकार युक्त, एवं क्षतिग्रस्त हिस्सों को अस्वीकार होने के जोखिम एवं दुष्प्रभावों के बगैर बदलने की क्षमता है।

विभिन्न किस्मों की स्टेम कोशिका चिकित्सा पद्धतियां मौजूद है, किंतु अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण के उल्लेखनीय अपवाद को छोड़ अधिकांश प्रायोगात्मक चरणों में ही हैं और महंगी भी हैं।चिकित्सीय शोधकर्ताओं को आशा है कि वयस्क और भ्रूण स्टेम कोशिका शीघ्र ही कैंसर, डायबिटीज प्रकार 1, पर्किन्सन रोग, हंटिंग्टन रोग, सेलियाक रोग, हृदय रोग, मांसपेशियों के विकार, स्नायविक विकार और अन्य कई रोगों का उपचार करने में सफल होगी। इसके बावजूद भी, स्टेम कोशिका द्वारा उपचार को चिकित्सा क्षेत्रों में लागू किये जाने से पहले, प्रत्यारोपण प्रक्रिया में स्टेम कोशिकाओं का व्यवहार और साथ ही स्टेम कोशिकाओं के विकारग्रस्त/चोटिल सूक्ष्म परिसर के साथ अंत:क्रिया आदि पर अधिकाधिक अनुसंधान अनिवार्य हो जाता है।

30 सालों से भी अधिक समय से अस्थि मज्जा का और हाल में ही गर्भनाल रूधिर स्टेम कोशिकाओं का उपयोग कैंसर रोग से पीड़ित रोगियों की ल्यूकेमिया एवं लिम्फोमा जैसी स्थितियों में चिकित्सा हेतु किया जाता रहा है। कीमोथेरेपी के दौरान अधिकांश बढ़ती कोशिकाओं को सायटोटॉक्सिक अभिकारकों के प्रयोग से नष्ट किया जाता है। हालांकि यह अभिकारक ल्यूकेमिया अथवा नियोप्लास्टिक कोशिका एवं अस्थि मज्जा में स्थित हिमेटोपोटिक स्टेम कोशिकाओं में भेद करने में असमर्थ होते हैं। पारंपरिक कीमोथेरेपी चिकित्सा की पद्धति से उत्पन्न इन दुष्प्रभावों को दूर करने का प्रयास स्टेम कोशिका प्रत्यारोपण द्वारा किया जाता है।

कई बीमारियों का इलाज करती है स्टेम सेल

- रक्त संबंधी रोगों, जैसे- एनीमिया, थैलीसीमिया, रक्त कैंसर, सिकल सेल एनीमिया आदि का।
- छतिग्रस्त ऊतकों को इसके द्वारा बदला जा सकता है जिससे कई असाध्य रोगो का उपचार किया जा सकता है, जैसे - इसके द्वारा रेटिना का निर्माण करके नेत्रहीनता को दूर किया गया है (प्रयोगाशला में)।
- इसके द्वारा मधुमेह और हृदय संबंधी रोगों का स्थायी उपचार किया जा सकता है।
- मस्तिष्क संबंधी रोग, जैसे- अल्जाइमर, पार्किंसन का भी उपचार किया जा सकता है।
- भविष्य में अंगो के निर्माण के द्वारा अंग प्रत्यारोपण भी संभव होगा।
- वर्तमान में असम्भव समस्या जैसे,- गंजेपन और दांतों का विकास भी किया जा सकता है।

कुछ सफल भारतीय केस

भारत में भी करीब दस वर्ष पूर्व डॉ. वेणुगोपाल ने एम्स में रोगी के बोनमैरो से स्टेम सेल लेकर लैब में कत्रिम कोशिकाएं उगा कर दिल की क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को बदला था। कोलकाता में एक युवक के क्षतिग्रस्त स्पाइनल कॉर्ड को ऐसी कोशिकाओं से ठीक किया गया। कुछ मामलों में क्षतिग्रस्त कॉर्निया ठीक किया गया है। भारत में सरकारी अस्पतालों के साथ.साथ निजी अस्पतालों में भी स्टेम सेल के जरिये इलाज हो रहा है, क्योंकि अन्य देशों की तुलना में भारत में इलाज सस्ता एवं अच्छा होने के कारण पड़ोसी देशों से बड़े पैमाने पर मरीज यहां आ रहे ।

निष्कर्ष

वैज्ञानिकों के अनुसार विश्व में अब तक 75 किस्म की बीमारियों में स्टेम सेल का उपयोग हो चुका है। इन कोशिकाओं से दांत भी उगाए जा सकते हैं। मांसपेशियों की मरम्मत तो आम बात है। इसी प्रकार अल्जाइमर, दिल की बीमारियों, कैंसर, आर्थराइटिस जैसी लाइलाज बीमारियों का इलाज इस तकनीक में है। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि भविष्य में स्टेम सेल पर इतना अधिक कार्य बढ़ चुका होगा कि इससे प्रयोगशाला में कृत्रिम अंग जैसे गुर्दे, हृदय, लिवर आदि तैयार करना संभव हो सकेगा। हालांकि वैज्ञानिकों का एक बड़ा वर्ग नैतिकता के मुद्दों को लेकर इस पर सहमत नहीं है।

अनाम से "घुर्रा" तक-इतिहास, चित्रण, प्रलेखन और पंजीकरण

ज्ञानेन्द्र कुमार गौड़, प्रशांत बोरो, मंजूनाथ पटेल एवं एन आर साहू

भाकृअनुप - भारतीय पशुचिकित्सा अनुंसधान संस्थान, इज्जतनगर-243122

मानव आहार में पशु जन्य प्रोटीन का अत्यंत महत्व है। सस्ती एवं गुणवत्ता युक्त पशुजन्य प्रोटीन उपलब्ध कराने में सूकरों का सार्थक योगदान है। हमारे देश में सूकरों की कुल संख्या 10.29 मिलियन है जो कुल पशु संख्या का 2.01% है। सूकरों की कुल संख्या में 7.84 मिलियन स्वदेशी एवं 2.45 मिलियन संकर हैं। पिछले वर्षो में (2007-2012) संकर सूकरों की संख्या में 2.8% की वृद्धि एंव स्वदेशी सूकरों की संख्या में 10.37% की कमी हुई है। सूकरों की सर्वाधिक संख्या आसाम, उत्तर प्रदेश, मेघालय एंव नागालैंड में है। देश का कुल माँस उत्पादन 7.4 मिलियन टन है जिसमें सूकरों का योगदान 6.35 प्रतिशत है। वर्ष 2017 तक स्वदेशी सूकरों की 7 जातियों को पंजीकृत किया जा चुका है। आवश्यकता है कि स्वदेशी सूकरों की शेष संख्या का भी चित्रण, अभिलेखन एंव पंजीकरण किया जाय जिससे उनकी आनुवाँशिक विकास की रूपरेखा तैयार की जा सके। इसी क्रम में भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर द्वारा स्थानीय सूकरों का चित्रण एवं अभिलेखन किया गया एवं 8वी जाति "घुर्रा" के रूप में उनका पंजीकरण कराया गया।

घुर्रा नस्ल का संक्षिप्त इतिहास

उत्तर प्रदेश के बरेली, बदाँयू, पीलीभीत, सीतापुर जिलों में सूकरों को लंबे समय से पाला जा रहा है। प्रारंभ में वे देशी सूकरों के नाम से जाने जाते थे। उसके बाद उन्हें अपने प्रजनन क्षेत्र में घुर्रा सूकरों के नाम से नामित किया गया। देशी सूकरों को स्थानीय सूकर (बरेली) के नाम से भी जाना जाता है। घुर्र घुर्र की आवाज के बोलने के कारण देशी सूकरों को बरेली क्षेत्र में घुर्रा कहा जाता है। घुर्रा सूकरों का प्रजनन क्षेत्र 27°58´-28°58´ उत्तर देशान्तर एंव 78°93´-80°66´ पूर्व अक्षाँश के बीच है।

घुर्रा सूकर 1982-83 में तकनीकी कार्यक्रम में संशोधन के साथ अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (सूकर) का हिस्सा बन गये थे जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि प्रत्येक अनुसंधान केंद्र में 32 मादा एवं 8 नर के साथ देशी नस्ल की एक प्रजनन इकाई स्थापित की जाएगी। यह भी निर्णय लिया गया कि 32 मादाओं में 3 पीढियों तक शुद्ध प्रजनन करके अनुकूल परिस्थितियों में उत्पादित स्वदेशी सूकरों के प्रदर्शन गुणों का अध्ययन किया जाये और बाद में इसी प्रजनन इकाई के भीतर 50% संकर पैदा करके उनके प्रदर्शन गुणों का अध्ययन किया जाये। बरेली के बाजार और आसपास के जिलों में व्यापक सर्वेक्षण के बाद एक समिति द्वारा स्वदेशी सूकरों की अपूर्ति आईवीआरआई में 8 अगस्त, 1983 से शुरू हुई। कुल 78 स्वेदशी सूकरों (25 नर और 53 मादा) को 31 अक्टूबर, 1983 तक खरीदा गया। कुल 42 मादाओं को 8 नर द्वारा प्रजनित किया गया, जिनमें से 1.25 औसत गर्भाधान दर के साथ 40 ने गर्भ धारण किया। तीन मादाओं ने जन्म के समय 30 शावक (औसत 10) पैदा किये। जन्म के समय शावक का औसत भार 1.0 किग्रा था और मृत्यु दर 20.45% थी। मृत्यु के प्रमुख कारण अंडर डवलपमेंट, स्वाइन फीवर आदि थे।

तदुपराँत देशी सूकरों के झुंड में चयनात्मक प्रजनन को लागू किया गया और प्रक्षेत्र परिस्थितियों में उत्पादन, प्रजनन और मांस सम्बंधित गुणों का मूल्यांकन किया गया। स्थानीय उपलब्ध आहारों के आधार पर संतुलित पोषण की आवश्यकता निर्धारित करने के लिए भी अध्ययन किए गए। विभिन्न रोगों की घटनाओं को भी देखा गया और विभिन्न वर्षों में प्रलेखित किया गया। 1994 - 95 तक आईवीआरआई यूनिट में घुर्रा सूकरों का रख-रखाव किया गया था। संकर सूकरों में लैंड्रेस सूकरों की आनुवंशिकता को 75% तक पहुँचाने के लिए 2010-11 में 14 स्वदेशी सूकरों को फिर से आईवीआरआई में खरीदा गया। 2016 तक संकर प्रजनन के तहत उनका उपयोग किया गया। वर्ष 2018 एंव 2019 में झुंड को सुदृढ़ करने के लिये पुनः घुर्रा सूकरों को सम्मिलत किया गया। अखिल भारतीय समन्वित परियोजना (सूकर) की वार्षिक बैठक-2015 में देशी सूकरों के चित्रण, अभिलेखन एंव पंजीकरण पर जोर दिया गया। परिणाम स्वरूप 2015-16 के दौरान घुर्रा सूकरों का

प्रारंभिक सर्वेक्षण उनके चरित्रांकन और प्रलेखन के लिए बरेली जिले में आरंम्भ किया गया। इस उद्देश्य के लिए कुल 632 सूकरों का सर्वेक्षण किया गया। आईवीआरआई एवं प्रक्षेत्र में 30 से अधिक पीढ़ियों के अन्त्त प्रजनन के प्रमाण उपलब्ध हैं।

घुर्रा सूकरों की संख्या

अधिकाँशतः घुर्रा सूकरों को बाल्मिकी समाज द्वारा पाला जा रहा है। प्रति झुँड़ सूकरों की औसत संख्या लगभग 16 है जिसमें 60% मादा, 10% नर एवं 30% शावक होते हैं। पशु गणना 2012 से प्राप्त सूकर संख्या के बर्हिवेशन से ज्ञात हुआ है कि घुर्रा सूकरों की प्रक्षेत्र में संख्या लगभग 12000 है।

घुर्रा सूकरों के बाह्य शारीरिक गुण

पत्ती के आकार वाले छोटे एंव खड़े कान, लम्बी एंव सीधी थूथन, चपटा पेट एवं मघ्यम लम्बे बाल घुर्रा सूकरों के मुख्य बाह्य गुण हैं। इन सूकरों का रंग मुख्यतः काला होता है जबकि कुछ सूकर धूसर (3%) भी होते हैं। कुछ सूकरों में टाँगो का घुटने से निचला हिस्सा सफेद होता है तथा माथे पर सफेद टीका एंव पूछ का सिरा भी सफेद मिलता है। इन सूकरों का स्वभाव जंगली सूकरों की तरह होता है। गर्दन से कंधे तक खडे बालों की मोटी रेखा घुर्रा सूकरों की मुख्य पहचान है। सिर लम्बा, चेहरा त्रिभुजाकार, संकीर्ण एव मुडी पूँछ, छोटा आकार घुर्रा सूकरों के अन्य लक्षण हैं।

घुर्रा सूकरों के प्रर्दशन गुण

घुर्रा सूकरों के वृद्धि गुण तालिका 1 में दिये गये हैं। शावकों का जन्म पर औसत भार 0.85 किग्रा, दूध छोडते समय (वीनिंग) औसत भार 13.37 किग्रा एंव 6 महीने पर औसत भार 46.87 किग्रा पाया गया। नर एवं मादा सूकरों में वयस्क भार क्रमशः 52 एंव 55 किग्रा थे। घुर्रा सूकरों का 52-54 किग्रा पर वध किया जाता है।

तलिका 1ः घुर्रा सूकरों में वृद्वि गुण

शावक/ सूकर	नर			मादा		
भार (किग्रा)	औसत	सीमा	संख्या	औसत	सीमा	संख्या
जन्म	0.84±0.05	0.5-0.9	70	0.86±0.15	0.6-1.0	78
वीनिंग	12.86±0.15	11-15	70	13.59±0.27	12-16	78
3 माह	21.07±0.10	20-25	19	22.39±0.20	20-26	34
6 माह	45.85±1.13	42-48	65	47.89±1.08	42-51	125
1 वर्ष	52.34±1.03	50-58	9	53.04±0.70	52-60	14
वध के समय	52.05±0.64	50-60	15	54.96±0.61	52-65	15
वयस्क	52.34±1.03	50-58	9	53.04±0.70	52-60	14

घुर्रा सूकरों की शारीरिक माप तालिका 2 में दी गयी है। वक्ष परिधि का औसत व्यस्क पशुओं में 73.23 सेमी था। शारीरिक लम्बाई मादा सूकरों में 64.16 एंव नर सूकरों में 57.89 सेमी पायी गयी। वयस्क सूकरों में स्कन्ध पर ऊँचाई का माध्य 51.87 सेमी था। आँकडों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि मादा घुर्रा सूकरों में सभी शारीरिक माप नर की तुलना में अधिक थे।

तलिका 2ः वयस्क घुर्रा सूकरों की शारीरिक माप

शारीरिक माप (सेमी)	नर			मादा		
	औसत	सीमा	संख्या	औसत	सीमा	संख्या
वक्ष परिधि	70.08±1.21	60.82	65	76.38±2.50	62.85	125
शारीरिक लम्बाई	57.89±1.01	50.58	65	64.16±1.36	51.68	125
स्कन्ध पर ऊँचाई	47.21±1.01	45.51	65	56.54±1.06	52.60	125

घुर्रा सूकरों को मुख्यतः माँस के लिये पाला जाता है यद्यपि इनके मल एंव बाल भी प्रयोग में लाये जाते हैं। घुर्रा सूकरों के माँस गुण तालिका 3 में दिये गये हैं। शव भार गर्म एवं ठंडे का औसत क्रमशः 36.37 एवं 35.07 क्रिगा पाया गया। शव लम्बाई का माध्य नर सूकरों में 61 सेमी तथा मादा सूकरों में 60.31 सेमी था। गर्म एंव ठंड़ी ड्रैसिंग प्रतिशत का औसत व्यस्क सूकरों में क्रमशः 69.73 तथा 67.78 पाया गया। बैकफैट मोटाई का माध्य नर सूकरों में 2.46 सेमी तथा मादा सूकरों में 2.86 सेमी था। लीन प्रतिशत मादा सूकरों (36.23 सेमी) में नर सूकरों (35.34 सेमी) की तुलना में अधिक था। घुर्रा सूकरों में आहार परिवर्तन क्षमता का औसत 4.61 पाया गया।

तलिका 3: घुर्रा सूकरों में माँस गुण

माँस गुण		नर			मादा		
		औसत	सीमा	संख्या	औसत	सीमा	संख्या
भार (किग्रा)	गर्म	35.94±0.44	32-38	20	36.80±0.63	32-40	15
	ठंडा	34.94±0.23	31-36	20	35.20±0.19	32-37	15
शव लम्बाई (सेमी)		61.0±0.52	58-63	20	60.31±0.27	58-62	15
ड्रैसिंग प्रतिशत	गर्म	69.31±0.46	68-70	20	70.16±0.25	69-71	15
	ठंडा	67.31±0.15	68-70	20	68.26±0.20	69-71	15
बैकफैट मोटाई		2.46±0. 99	2.3-2.7	20	2.86±0.24	2.6-2.9	15
लीन प्रतिशत		35.34±2.27	34-36	20	36.23±1.96	35-37	15
आहार परिवर्तन क्षमता		4.24	3.7-5.0	55	4.97	4.4-5.4	40

घुर्रा सूकरों के प्रजनन गुण तालिका 4 में दिये गये हैं। नर सूकरों की प्रजनन आयु 225 दिन पायी गयी जबकि मादा सूकरों में प्रथम बार मद औसत 256 दिन पर देखा गया। औसत सूकरियाँ प्रथम बार 1 वर्ष (365 दिन) में ब्यायीं। दो ब्यातों के अन्तराल का औसत 213 दिन पाया गया। शावकों की जन्म पर औसत संख्या एवं भार क्रमशः 6.85 एवं 5.83 किग्रा थे। दूध छुडाते समय (वीनिंग) शावकों की संख्या 5.65 पायी गयी। सूकरियों की उत्पादन अवधि का औसत 66 महीने था जिसम वे औसतन 6.77 बार ब्यायीं।

तलिका 4: घुर्रा सूकरों के प्रजनन गुण

गुण	औसत	सीमा	संख्या
अ. नर			
प्रथम मद आयु (दिन)	225.3±4.2	210-240	148
ब. मादा			
प्रथम मद आयु (दिन)	256.5±3.3	240-270	148
मदचक्र (दिन)	21.5 ± 0.6	21-24	148
मदकाल (घंटे)	60.26±2.20	48-72	148
प्रथम प्रजनन आयु (दिन)	251.3 ±5.4	240-280	148
प्रथम ब्यांत आयु (दिन)	364.8±3.9	300-360	148
ब्यांत अंतराल (दिन)	213.4±9.1	160-240	148
जन्म पर शावकों की संख्या	6.85±0.16	5.0-8.0	148
जन्म पर शावकों का भार (किग्रा)	5.83±0.18	4.0-10.0	148
वीनिंग पर शावकों की संख्या	5.65±0.21	4.0-6.0	148
कुल ब्यातों की संख्या	6.77±0.19	5-9	148
कुल उत्पादन अवधि (माह)	66.0 ± 2.52	36-72	148

घुर्रा सूकरों का आनुवांशिक चित्रण

घुर्रा सूकरों की आनुवांशिक विविधता की जाँच माइक्रोसेटेलाइट मार्करों के 15 सेट द्वारा की गई थी, जिन्हें सूकरों के लिए आईएसएजी एफएओ द्वारा अनुशंसित किया गया था। विभिन्न गाँवों के आनुवांशिक रूप से असंबंधित सूकरों से कुल 40 रक्त नमूने एकत्र किये गए थे। सूकरों की जीनोटाइपिंग एलील आकार के आधार पर की गयी थी। सभी 15 (100 प्रतिशत) मार्कर बहुरूपी थे। विभिन्न मार्कर लोसाई पर एलील की संख्या 4 से 21 तक तथा एलील आकार 88 से 243 बीपी तक था। घुर्रा सूकरों में दर्शित (एनए) और प्रभावी एलील्स (एनई) की औसत संख्या क्रमशः 8.5±0.99 और 5.01±0.57 थी। औसत दर्शित (एचओ) एव अपेक्षित (एचइ) विषमयुग्मजी क्रमशः 0.47±0.04 और 0.71±0.05 थी। पीआईसी (बहुरूपता सूचना प्रकरण) मान 0.25 (एसडब्लुआर1941) से 0.91 (एस0005) तक था। एसडब्लुआर1941, एसडब्लु2008 और एस0226 को छोड़कर सभी लोसाई में उच्च पीआईसी मान थे जो यह संकेत देते हैं कि ये मार्कर घुर्रा नस्ल के लक्षण वर्णन के लिए अत्यधिक जानकारी पूर्ण हैं।

आइएसएजी लोकस	आइएसएजी प्राइमर नम्बर	एनए	एनइ	एचओ	एचइ	ऐलीलिक सीमा	पीआईसी	एफ मान
एस 0026	1	6.00	7.96	0.63	0.87	88-96	0.87	0.27
एस 0005	3	21.00	11.51	0.73	0.91	203-243	0.91	0.21
एसडब्लु 2410	4	8.00	4.64	0.60	0.78	104-122	0.78	0.24
एसडब्ल 830	5	10.00	4.33	0.31	0.77	178-202	0.76	0.60
एसडब्ल 632	8	10.00	3.73	0.55	0.73	148-168	0.73	0.25
एसडब्लआर1941	9	4.00	1.34	0.15	0.26	202-216	0.25	0.40
एसडब्ल 122	13	8.00	5.26	0.48	0.81	107-121	0.81	0.41
टाइजीएफ 1	17	7.00	5.30	0.43	0.81	195-207	0.81	0.47
एसडब्ल 2406	18	13.00	6.02	0.62	0.83	223-235	0.83	0.26
एसडब्ल 72	19	6.00	4.03	0.41	0.17	100-112	0.74	0.45
एस 0226	20	4.00	3.07	0.27	0.67	192-198	0.66	0.60
एसडब्ल 2008	22	5.00	2.38	0.33	0.58	95-103	0.56	0.42
एस 0101	24	8.00	5.18	0.45	0.81	200-216	0.80	0.45
एस 0143	26	9.00	4.09	0.56	0.76	151-167	0.75	0.26
एस 0068	27	9.00	4.95	0.32	0.80	219-239	0.80	0.60
एस 0178	28	8.00	6.29	0.62	0.84	108-124	0.84	0.27

मांस की गुणवत्ता वाले जीन (आरवाईआर1, पीआरकेएजी3, एचएफएबीपी, एमवाईएफ5, एमसी4आर) के लिए घुर्रा सूकरों की जाँच की गई। परिणामों से पता चला है कि आरवाईआर1 लोकस (100% एनएन जीनोटाइप), एचएफएबीपी लोकस (100% एचएच जीनोटाइप) और एमवाईएफ5 लोकस (100% डीडी जीनोटाइप) के लिये घुर्रा सूकर मोनोमोर्फिक थे। समयुग्मज आरआर और विषमयुग्मज क्यूआर जीनोटाइप 89 और 11% आवृत्ति के साथ पीआरकेएजी3 लोकस पर पाये गए। इस लोकस पर जंगली (आर) और उत्परिवर्ती (क्यू) एलील की आवृत्ति 95 और 5% थी। एमसी4 आर एसएनपी में तीन जीनोटाइप थे; 5% आवृत्ति के साथ समयुग्मज एए, 53% आवृत्ति के साथ विषमयुग्मज एजी और 45% आवृत्ति के साथ समयुग्मज जीजी। ए और जी एलील की आवृत्ति क्रमशः 32 और 68% थी। एनएन जीनोटाइप के लिए आरवाईआर1, एचएच जोनोटाइप के लिए एचएफएबीपी और डीडी

जीनोटाइप के लिए एमवाईएफ5 लोकस का मोनोमॉर्फिक होना दर्शाता है कि माँस गुणवत्ता के अनुकूल जीन घुर्रा सूकरों में स्थिर हो गये हैं। पीआरकेएजी3 पर आरआर जीनाटाइप (89%) और एमसी4आर लोकस पर जीजी जीनोटाइप (42%) की उच्च आवृत्ति ने घुर्रा सूकरों में अनुकूल जीनोटाइप के अस्तित्व की व्याख्या की।

घुर्रा सूकरों की प्रबंध प्रक्रिया

इन सूकरों को लंबे समय से समाज के गरीब और कमजोर वर्ग द्वारा पाला जाता रहा है। महिलाओं की तुलना में घुर्रा सूकरों के प्रबंधन में प्ररूषों की अधिक भागेदारी है। अधिकांशतः इन सूकरों को कम प्रबंधन के साथ पारंपरिक प्रबंधन प्रणाली के तहत रखा जा रहा है। समान्यतः उन्हें गलियों एवं बाजार में खुला छोड़कर पाला जा रहा है। घुर्रा सूकरों मे प्राकृतिक प्रजनन प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। अधिकांशतः सूकर पालक अपने सूकरों को रात के समय ही घर में रखते हैं। सूकर पालकों द्वारा घुर्रा सूकरों के लिये मिट्टी के फर्श और कच्ची छत के साथ कच्चे घर का उपयोग किया जा रहा है। सामान्यतः छत की उचाई 1.5 से 2 मी0 रखी जाती है।

अधिकांशतः सूकर पालक लकडी की खोर मे एक दिन मे एक बार सूकरों को आहार प्रदान करते हैं। इन सूकरों को रसोई के कचरे और बची सब्जियों के साथ-साथ कुछ मात्रा मे दाना भी दिया जाता है। गेहूँ की भूसी और चावल की पॉलिश दाना मिश्रण के प्रमुख भाग हैं। नलकूप पेयजल का मुख्य स्त्रोत हैं। सूकर पालक सूकर गृह को रोजाना साफ नहीं करते हैं। अधिकांशतः सूकर पालक घुर्रा सूकरों को कई कारणों से पसंद करते हैं जैसे कि उनमें बीमारियों का कम होना, निडरता और कठोर जलवायु के लिए उनकी अनुकूलनशीलता। ये सूकर निडर होकर कुत्तों के हमलों को सहन करते हैं और बिना किसी नुकसान के अपने शावकों को बचाते हैं। माँस में वसा की मात्रा अधिक होने के कारण कुछ सूकर पालक घुर्रा नस्ल को अधिक पसंद करते हैं। सूकर पालक 10 से 12 महीने की आयु में घुर्रा सूकरों को स्थानीय बाजार में बेच देते हैं। किसी भी बीमारी के लिए इन सूकरों में टीका नहीं लगाया जाता है। आवश्यकता के अनुरूप कभी कभी घुर्रा सूकरों को पेट के कीडों की दवाई दी जाती है। सामन्यतः सूकर पालक 6 से 25 घुर्रा सूकरों की इकाई पाल रहे है।

घुर्रा संरक्षण एवं विकास कार्यक्रम

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर द्वारा घुर्रा नस्ल को सूकरों की 8वी स्वदेशी नस्ल के रूप में पंजीकृत कराया गया है (रजिस्ट्रेशन नम्बरः इंड़िया_पिग_2000_घुर्रा_09008)। संस्थान द्वारा घुर्रा सूकरों के संरक्षण एवं विकास के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। संस्थान के सूकर उत्पादन प्रक्षेत्र पर वर्ष 2017 में घुर्रा नस्ल को पुनः लाया गया। शावकों की जन्म पर संख्या एवं शारीरिक भार के आधार पर उत्तम सूकरों का चयन करके लगभग 50 सूकरों के झुँड़ को संस्थान में पाला जा रहा है। अन्तः प्रजनन को रोकने के लिये 2-3 उत्तम नरों को प्रत्येक वर्ष स्थानीय प्रक्षेत्र से खरीदा जा रहा है। साथ ही घुर्रा सूकरों में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक (वीर्य एकत्रीकरण एवं गर्भाधान) का मानकीकरण भी किया जा रहा है।

स्थानीय प्रक्षेत्र में घुर्रा सूकरों के पालने पर संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा बल दिया जा रहा हैं। घुर्रा नस्ल के उत्तम शावक सूकर पालकों को किफायती दर पर दिये जा रहे हैं। सूकर पालकों को स्वदेशी नस्ल घुर्रा के पालने से होने वाले लाभों से अवगत कराया जा रहा है। आने वाले 5 वर्षों में घुर्रा नस्ल के उत्तम नरों से प्राप्त वीर्य को एकत्र कर सूकर पालको के घर पर पहुँचाना एवं शुद्ध नस्लीय मादाओं में कृत्रिम गर्भाधान करना संस्थान का मुख्य ध्येय है। इन प्रयासों के कार्यान्वयन से न केवल घुर्रा सूकरों का संरक्षण होगा वरन आगामी वर्षों में आनुवाँशिक विकास को प्राप्त करके यह जाति सूकर पालकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहयोगी होगी।

घुर्रा सूकरों के चित्र

किसानों के लिए मोबाइल एप्लिकेशन और मोबाइल फोन विशेषताओं का उपयोग

सुनेष, अशोक ब्लहारा एवं सज्जन सिंह

भाकृअनुप - केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार

भारतीय अर्थव्यवस्था का कृषि सबसे महत्वपूर्ण अंग है। देश के समग्र आर्थिक विकास में कृषि महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देश की लगभग आधी से अधिक आबादी कृषि व्यवसाय व उसके सहयोगी व्यवसाय से जुड़ी हुई है। लगातार कम हो रही कृषि भूमि तथा जलवायु परिवर्तन के कारण किसानों की कृषि उत्पादकता प्रभावित हो रही है। पारम्परिक तरीकों से कृषि कार्य करके लघु और सीमांत किसान अपना मेहन्ताना भी नहीं निकाल पाते। अच्छा जीवन यापन और खुशहाल जिन्दगी के लिए किसानों को पारम्परिक कृषि विधियां छोड़कर आधुनिक तकनीकों को अपनाना होगा जिससे की किसान मौसम की विषम परिस्थितियों से बचकर फसल की अच्छी पैदावार ले सके। कृषि व्यवसाय को किसान साल भर मेहनत करके भी लगातार आय का साधन नही बना सकते। इसके लिए किसान को कृषि सम्बन्धित व्यवसाय जैसे की पशुपालन की तरफ ध्यानदेना चाहिए ताकि उससे प्राप्त होने वाले उत्पादों से निरन्तर आय का साधन उत्पन्न कर सके। भारत में सदियों से कृषि और पशुपालन हो रहा है। किसान पीढ़ी दर पीढ़ी अपने कृषि और पशुपालन से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान को आगे बढाते हैं। किसी भी व्यवसाय को लाभकारी बनाने के लिए ज्ञान का प्रचार और प्रसार सही तरीके से होना चाहिए। यदि सही समय पर सूचना न मिले तो व्यवसाय में आर्थिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। स्थायी कृषि और पशुपालन के लिए आधुनिक तकनीको और उन्नत प्रोधौगिकियों के माध्यम से किसानों को कृषि, मौसम, फसलों की नई किस्मों, वैज्ञानिक तरीके से पशुपालन, उत्पादन और गुणवता नियंत्रण से सम्बंधित जानकारियां सही समय पर किसानों तक पहुचाना आज के समय में एक बड़ी चुनौती है। वर्तमान तकनीकी युग में हमारे किसानों को आधुनिक और उन्नत तकनीक और प्रासंगिक जानकारी के बारे में अवगत कराने के लिए विभिन्न तरीको का पता लगाना आवश्यक हो गया है क्योंकि ये न केवल सटीक निर्णय लेने में मदद करें बल्कि उत्पादकता बढाने में भी योगदान दे। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी नेआज के समय में विश्व में हर क्षेत्र में अपना पूरा र्वचस्व स्थापित कर रखा है। इसके बिना आज हर नागरिक अपने आप को अधूरा मानता है। कृषि व्यवसाय भी इससे अछूता नहीं है। सरकार ने किसानों तक उन्नत तकनीकों और अच्छी कृषि प्रणाली की जानकारी पहुचाने के लिए कृषि विस्तार सेवाएं प्रारम्भ की हैं। परन्तु कृषि विस्तारकों की संख्या सीमित होने के कारण हर किसान इन सेवाओं का लाभ नहीं उठा सकता इस अन्तर को भरने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकीयां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं । किसानों के लिए सही सूचना प्रणाली में आई.सी.टी. की मुख्य भूमिका है। आई.सी.टी. के माध्यम से सही सूचना प्रणाली किसानों को बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए उनकी खेती की उपज, कटाई, कटाई के बाद की खेती के लिए अच्छी कृषि पद्धतियों का अभ्यास करने और उपज का विपणन करने की सुविधा प्रदान करती है। आई.सी.टी. की महत्ता को देखते हुए कृषि में आई.सी.टी., ई-कृषि से सम्बन्धित अनुसंधान और अनुप्रयोग का एक प्रमुख क्षेत्र बन गया है।

मोबाइल फोन जिसका उपयोग आम और खास के लिए जरुरी सा हो गया है, आई.सी.टी. का एक मुख्य साधन है जिसकी सहायता से कम समय में धरती के किसी-भी कोने तक सूचना को पहुँचाया जा सकता है। मोबाइल फोन ने ग्रामीण किसान के लिए सूचना और संचार की लागत को काफी कम कर दिया है। इस तकनीक ने ग्रामीण किसानों को कृषि मुद्दो, कृषि के विकास में आने वाली समस्याओं और इसके उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त करने के नए अवसर प्रदान किए है। मोबाइल फोन का उपयोग करने से किसान अपना समय और आने-जाने की लागत को बचा सकता है। क्योंकि कई फसलों को अधिक देखभाल और श्रम की आवश्यकता होती है। ऐसे समय में किसान को अपना खेत छोड़कर जाने की जरूरत नहीं होती। वह सम्भावित जानकारी अपने मोबाइल फोन पर ही प्राप्त कर सकता है। भारत में आधुनिक तकनीकों से लैंस मोबाइल फोन की संख्या लगातार बढ़ रही है क्योंकि यह एक बहुउद्देशीय यन्त्र की तरह काम करता है। समार्ट फोन तकनीक ने मोबाइल

फोन को और भी अधिक सशक्त बना दिया है। समार्ट फोन बनाने वाली कंपनियाँ आए दिन नई नई तकनीको से लैस फोन बाजार में उतार रही है। तथा बाजार में प्रतिस्पर्धा के कारण इनकी कीमत भी आम-आदमी की पहुंच में आ गई है। इसलिए ग्रामीण किसान आसानी से इसे खरीद सकता है।

मोबाइल फोन को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए सरकार डिजिटल इंडिया आंदोलन के अन्तर्गत, स्टार्टअप और तकनीकी कंपनियों के साथ मिलकर ग्रामीण किसानों के लिए मोबाइल एप्लिकेशन विकसित करने के लिए अग्रसर है। मोबाइल ऐप्स एक साफ्टवेयर एप्लिकेशन है। जिसे विशेष रूप से छोटे और वायरलैस उपकरणों जैसे समार्टफोन और टेबलैट पर उपयोग करने के लिए विकसित किया गया है। कृषि और पशुपालन सम्बन्धित मोबाइल एप्स की सहायता से किसान मौसम, फसलों के भाव, मिट्टी की स्वास्थ्य जांच, बीजों की किस्मों, प्राकृतिक संसाधनो का प्रबन्धन, पशुओं के खान-पान, स्वास्थय संबंधी जानकारी प्राप्त कर सकते है। ये ऐप दुनिया भर से किसानों को आपस में जोड़ रही है और आने वाली पीढियो के लिए भूमि की उत्पादकता को अधिकतम करने के तरीको को सांझा करते हुए ज्ञान प्रदान करती है। इस प्रकार का ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि उत्पादक बढ़ती हुई आबादी की खाधान कपड़ा और ईधन की जरूरतों को पूरा करने के लिए यह अनिवार्य हो गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अन्तर्गत आने वाले शोध संस्थान और विभिन्न राज्यों के कृषि विश्वविद्यालय किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए हमेशा तत्पर रहते है। मोबाइल ऐप्स की ताकत को समझते हुए इन संस्थानों ने कृषि और उनसे सम्बंधित व्यवसायों के लिए जैसे की विभिन्न प्रकार की फसलों, बागवानी, मत्सय पालन, पशुपालन, डेयरी पशुपालन, मधुमक्खी पालन और प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन आदि क्षेत्रों के लिए सौ से भी ज्यादा ऐप्स का प्रक्षेपण किया है। इन ऐप्स को गूगल प्ले स्टोर से डाउनलोड किया जा सकता है।

मोबाइल फोन और एप्स तकनीक के उपयोग करने के फायदे

1. कुछ साल पहले समाचार और देश-विदेश की खबर सुनने के लिए रेडियो अलग से खरीदा जाता था। किसान रेडियो के माध्यम से कृषि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते थे। अब रेडियो कार्यक्रम सुनने के लिए अलग से रेडियो खरीदने की आवश्यकता नहीं है। मोबाइल फोन से ही हम रेडियो के कार्यक्रम प्रसारकों के साथ आसानी से प्रशन -उतर कार्यक्रमों में भाग ले सकते है।
2. वर्तमान तकनीकी युग मे लगभग हर मोबाइल फोन में कैमरा है। किसान इस कैमरे का उपयोग अपनी प्रभावित फसल की तस्वीरे लेने मे कर सकता है और उन्हे दूसरी एप्स या पोर्टल पर भेज सकता है जो फसलों की बीमारियों और उनको ठीक करने के तरीको के बारे में बताती है। कृत्रिम बुद्धि एल्गोरिदम का प्रयोग करके उन तस्वीरों का विशलेषण किया जाता है और परिणाम व्यक्तिगत किसान को तुरन्त वापस कर दिए जाते है।
3. कृषि में भौगोलिक सूचना प्रणाली दुनिया भर में फसल उत्पादन में तेजी से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जिससे किसानों को उत्पादन बढ़ाने, लागत कम करने और अपने भूमि संसाधनों को अधिक कुशलता से प्रबंधित करने में मदद मिल रही है। किसान भौगोलिक सूचना प्रणाली का प्रयोग अपने समार्ट मोबाइल फोन की सहायता से कर सकता है। किसान भू-टैग के माध्यम से कृषि मानचित्रण से किसी भी खेत की भूमि की मिट्टी और सिंचाई की निगरानी और प्रबंधन कर सकता है।
4. सूचना और संचार के माध्यमों में सोशल मिडिया ने अहम स्थान बना रखा है। आज हर नागरिक के मोबाइल फोन में वॉट्सएप, फेसबुक और यू-ट्यूब, ये तीन सोशल मिडिया एप्स जरूर मिलेगें। इन सबका उपयोग करने के लिए अलग से कम्पयूटर लेने की आवश्यकता नहीं है। सोशल मिडिया एक ऐसा मंच है जिसके माध्यम से अलग-अलग समुदाय के लोग अपने विचारों, अनुभवों और नई नई ज्ञानवर्धक तकनीकों को सांझा करते है। किसान अपने मोबाइल फोन में सोशल मिडिया का उपयोग अपने व्यवसाय के अनुसार जानकारी,अपने उत्पादों के विपणन तथा दूसरे किसानो से अपनी सफलता की कहानी सांझा करने में कर सकते है। जिससे की बाकी के किसान प्रगतिशील किसानों से प्रेरणा ले सके और अपने व्यापार में सुधार कर सके।

5. किसान मोबाइल फोन में बेब ब्राऊजर की सहायता से दुनिया भर की जानकारी प्राप्त कर सकता है। वह सरकारी संस्थानों की बेबसाइट पर जाकर अपने फसल या पशुपालन से सम्बंधित जानकारी प्राप्त कर सकता है। अगर कोई किसान शिक्षित नहीं है तो वह गूगल माइक की सहायता से बोलकर जानकारी प्राप्त कर सकता है। किसानों से सम्बंधित कई पोर्टल है जैसे की 'एम-किसान', जिन पर अपने मोबाइल फोन की सहायता से पंजीकरण कर सकते है। तथा समय -समय पर फसलों, मौसम, मिट्टी, और फसलों के बाजार भाव की जानकारी प्राप्त कर सकते है।

6. कृषि एक व्यवसाय है और इसमें रिकार्ड रखना एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। व्यवसाय चाहे कोई भी हो, जब तक रिकार्ड प्रबन्धन सही ना हो तब तक वह फायदे का सौदा नहीं हो सकता। ज्यादातर किसान रिकार्ड प्रबंधन को समय की बर्बादी मानते है। प्रगतिशील किसान बनने के लिए समय और संसाधनों का अच्छी तरह प्रबंधन करना एक जरूरत है। किसान मोबाइल फोन में अपने खेती या पशुपालन से सम्बन्धित जानकारी को रिकार्ड के रूप में संग्रहित कर सकता है। इसके लिए अलग से किसी रजिस्टर की आवश्यकता नही पड़ती । आजकल समार्ट मोबाइल फोन में कई तरह की सुविधाए है। जैसे नोट्स के माध्यम से दैनिक खर्चे कृषि गतिविधियों का ब्यौरा लिख सकता है।

7. किसान मोबाइल फोन से लघु संदेश सेवा का भी फायदा उठा सकते है। देश मे कई ऐसे सरकारी संस्थान है जो किसानों के कल्याण और उनके हित के लिए कार्य कर रही है। लगभग सभी कृषि, पशुपालन सम्बंधित संस्थानों और कृषि विश्वविद्यालों ने किसानों लिए निशुल्क लघु संदेश सेवा प्रारम्भ कर रखी है किसान पोर्टल पर किसान पंजीकरण करवाकर जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस सेवा का लाभ उठाने के लिए किसान को अपना मोबाइल नम्बर संस्थान पर पंजीकरण करवाना पड़ेगा।लघु संदेश सेवा के माध्यम से किसानों तक मौसम, फसल, मिट्टी की जानकारी, पशुओं के रखरखाव के बारे में पशुओं के टीकाकरण जैसे विषयों पर जानकारी देते है।

8. किसान पूरे देश में टोल फ्री नम्बर के माध्यम से किसान कॉल सेंटर पर फोन कर सकते है। टोल फ्री न० पर फोन करने का कोई शुल्क नहीं लगता तथा किसान घर बैठे अपने खेतों और पशुपालन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है।

प्रजनन क्षमता में सुधार के लिए भैंस की ब्रीडिंग

शिवम् भारद्वाज[1] एवं संजीव सिंह[2]

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संसाधन, करनाल-132001

[2]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001

भारत 1998 के बाद से दुनिया के दुग्ध उत्पादक देशों में पहले स्थान पर है तथा दुनिया में सबसे बड़ी गोजातीय आबादी भारत में ही है ((डी.ऐ.डी.एफ वार्षिक रिपोर्ट, 2018-19)। भारत में दुग्ध उत्पादन 1950-51 से 2017-18 की अवधि में, 17 मिलियन टन से बढ़कर 176.4 मिलियन टन हो गया। 2016-17 (165.4 मिलियन टन) की तुलना में 2017-18 में 6.65% की वृद्धि दर्ज की गई। वैश्विक दुग्ध उत्पादन में भारत की पहली स्थिति में मुख्य रूप से भैंस का योगदान है जो देश के दूध उत्पादन में 49% का योगदान देती है (डी.ऐ.डी.एफ वार्षिक रिपोर्ट, 2018-19) लेकिन अभी भी इसकी क्षमता को अधिक महत्व नहीं दिया गया है और केवल गायों पर हमेशा ध्यान केंद्रित किया जाता है। भैंस में पारिस्थितिक और आर्थिक लाभ: जैसे कि अनुकूलता, फ़ीड रूपांतरण, अच्छी कार्य क्षमता, कई गोजातीय उष्णकटिबंधीय रोगों से प्रतिरोध, दूध उत्पादन के लिए इस्तेमाल की गई मेटाबॉलाइज़ेबल एनर्जी, गाय की तुलना में अधिक होती है। गाय के दूध की तुलना में भैंस के दूध में अधिक मात्रा में कुल ठोस होते हैं (18%-23% बनाम 13%-16%)।

प्रजनन क्षमता: प्रजनन क्षमता पशुओं की एक नियमित अंतराल पर संतान पैदा करने की क्षमता है जो झुंड की प्रबंधन नीति द्वारा तय की जाती है। प्रजनन क्षमता एक बहु-तथ्यात्मक विशेषता है। इसकी गिरावट आनुवांशिक, पर्यावरण और प्रबंधकीय कारकों की जटिल परस्पर क्रिया के नेटवर्क के कारण हुई है। भैंस एक मुश्किल ब्रीडर है। खराब प्रजनन क्षमता का अर्थ है कम गर्भाधान दर जिसके कारण हमें अधिक अवधि (जो कि अगले एस्ट्रास तक है) के लिए पशु का रखरखाव करना पड़ता है और इस प्रकार उत्पादन की शुरुआत में देरी होगी जिससे किसान को आर्थिक नुकसान होगा। पर्यावरणीय तनाव और युवावस्था की देर से प्राप्ति के लिए अतिसंवेदनशील होने के कारण गायों की तुलना में भैंस की प्रजनन क्षमता काफी कम है। सिंधु-घाटी में भैंस का मूल स्थान दक्षिण-पूर्व एशिया है, फिर भी इस प्रजाति को वर्तमान में उसी क्षेत्र में प्रजनन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह इस कारण से हो सकता है कि भारत में काराबीफ की अनुमति है और अधिकांश नर बछड़ों और कम उत्पादक मादाओं को भी (प्रजनन क्षमता बेहतर होने की संभावना अधिक है) कत्लखानों में भेज दिया जाता है और इस प्रक्रिया में हम प्रजनन में शामिल कुछ मूल्यवान जीन खो सकते हैं। यदि हम दूध उत्पादन के लिए आनुवंशिक गुणों के साथ हीफर्स (64%) और स्तनपान कराने वाली गायों (39%) की गर्भाधान दर की तुलना करते हैं, तो इसमें एक बड़ा अंतर पाते हैं जो दूध उत्पादन में आनुवंशिक सुधार की अवधि के दौरान कम नहीं हुआ है (प्रिस एवं अन्य, 2004)। उच्च दूध उत्पादन की मांग कई कार्यिकी पथों को प्रभावित करती है जो सफल गर्भावस्था स्थापना की संभावना को कम करते हैं। उत्पादक और प्रजनन प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए संतुलित प्रजनन कार्यक्रम के साथ उचित स्वास्थ्य और पोषण प्रबंधन रणनीतियों का पालन किया जाना चाहिए।

प्रजनन रणनीतियाँ: भैंस की उत्पादकता में सुधार के लिए, आई.सी.ए.आर द्वारा दी गई ब्रीडिंग स्ट्रेटेजी जैसे ए.आई.सी.आर.पी और नेटवर्क प्रोजेक्ट ऑन बफेलो इम्प्रूवमेंट, में कई लक्षण शामिल किए हैं जिनमें प्रजनन क्षमता एक महत्वपूर्ण घटक है। इसे टोटल परफॉरमेंस इंडेक्स (टी.पी.आई) के रूप में शामिल करके बेहतर सुधार किया जा सकता है। सूचकांक में संतुलित वेटेज उनके आर्थिक मूल्यों के आधार पर आर्थिक लक्षणों को दिया जाता है।

Figure 1. Improving milk production and declining reproductive performance

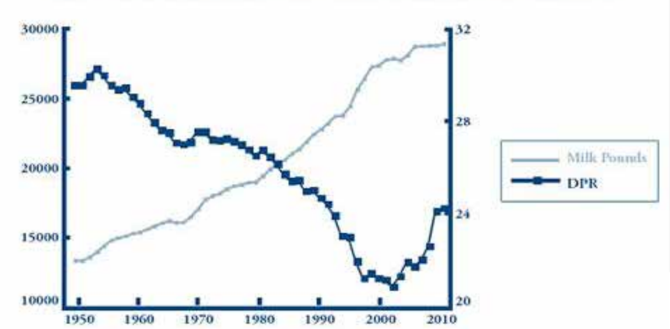

दुग्ध उत्पादन में सुधार और प्रजनन प्रदर्शन में गिरावट।

दूध उत्पादन और गर्भावस्था दर का रुझान: 1970 के दशक के अंत में होल्सटीन गाय की औसत वार्षिक गर्भावस्था दर 22% से घटकर 12% रह गई। हालांकि २००३ में अमेरिकी चयन सूचकांकों में शामिल होने के बाद यह गिरावट रुक गई है (वानरादेन, 2007)।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि भैंस की गर्भावस्था दर पर कोई चयन दबाव नहीं है, तो इनमें भी दूध की पैदावार के लिए चयन से जुड़ी प्रजनन क्षमता में गिरावट देखी जाएगी।

मादा भैंस गर्भावस्था दर (डॉटर प्रेग्नन्सी रेट): डीपीआर को 21 दिनों की अवधि में गर्भवती होने के योग्य गायों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया गया है जो वास्तव में गर्भवती हो जाती हैं। वी.डब्लू.पी को जानना और तय किया जाना चाहिए। एन.डी.आर.आई में, मुर्रा भैंस के वी.डब्लू.पी को 63 दिनों के लिए मानकीकृत किया गया है (पाटिल, 2011)

डीपीआर = 21 / (सेवा अवधि - स्वैच्छिक प्रतीक्षा अवधि + 11) (यूएसडीए, 2003)

अन्य प्रजनन लक्षणों के साथ गर्भावस्था की दर दृढ़ता से सहसंबद्ध है, इसलिए उच्च गर्भावस्था दर वाले जानवरों ने अपनी प्रबंधन प्रणाली की परवाह किए बिना प्रजनन क्षमता में सुधार किया होगा (जोरजानी, 2007)।

विशेषता	आनुवांशिकता		आनुवांशिक सहसंबंध	
	न्यूनतम(%)	अधिकतम(%)	न्यूनतम	अधिकतम
नॉन रिटर्न रेट	1.5	2.0	0.23	0.41
इंसीमिनेशन की संख्या	3.0	--	0.77	--
गर्भाधान दर	2.0	--	0.68	--
पहली सर्विस के लिए दिन	4.2	10.1	0.63	0.72
काविंग अंतराल	3.3	5.8	0.80	0.89
डेज़ ओपन	3.1	4.0	0.91	0.93

मादा भैंस के गर्भधारण की दर के साथ अंतरराष्ट्रीय प्रजनन क्षमता के लक्षणों और सहसंबंधों के लिए न्यूनतम और अधिकतम आनुवांशिकता का अनुमान।

नॉन रिटर्न रेट को छोड़कर सभी लक्षणों के साथ डीपीआर अत्यधिक सहसंबद्ध है। प्रत्यक्ष गर्भाधान-संबंधी लक्षणों (इंसीमिनेशन की संख्या, गर्भाधान दर) के साथ डीपीआर अधिक सहसंबद्ध था। डेज़ ओपन और काविंग अंतराल, डीपीआर के समान लक्षण हैं और डीपीआर के साथ सबसे अधिक सहसंबद्ध भी हैं। इन सहसंबंधों से संकेत मिलता है कि डीपीआर से गर्भाधान दर और पहली सर्विस के दिनों में सुधार की उम्मीद की जा सकती है। प्रति दिन 8 किलो से अधिक दूध का उत्पादन करने वाली रिवेरीन - भैंस में पोस्ट पार्टम अनिस्ट्रस अंतराल का बढ़ाव पाया गया (अजाब एवं अन्य, 1984)। डेरी गायों में अनेस्ट्रोस का मुख्य कारण ओवुलेशन की विफलता है ना कि डोमिनेंट फॉलिकल की अनुपस्थिति (रोशे एवं अन्य, 2000)। मवेशियों में प्रजनन क्षमता (गर्भावस्था दर) और दूध उत्पादन के स्तर का विरोधी संबंध है (डेविस, 2011)।

एचएफ में दूध उत्पादन के साथ गर्भावस्था की दर का सहसंबंध: आनुवांशिक सहसंबंध 0.20 तथा फीनोटीपिक सहसंबंध -0.32 होता है (वार्नडेन एवं अन्य, 2007)। डीपीआर के लिए पीटीए (प्रेडिक्टेड ट्रांसमिस्सिंग एबिलिटी) द्वारा अपनी बेटियों की प्रजनन क्षमता के लिए बैलों के बीच को आनुवंशिक अंतर को मापते हैं। पीटीए डीपीआर का पीटीए पीएल (उत्पादक जीवन) के साथ 0.51 सहसंबंध है (देचो, 2008)। नॉन रिटर्न रेट और दूध उत्पादन के बीच विरोधी संबंध, बी.ए.आई.ए.पी2 जीन (इन्सुलिन लाइक ग्रोथ फैक्टर पर प्रभाव डालता है) और सी.सी.एन.बी1 जीन (सेल चक्र संबंधित) में स्थित एसएनपी के लिए पाए गए थे (बुएराशस एवं अन्य, 2005)। प्रजनन क्षमता में गिरावट एक सहसंबद्ध प्रतिक्रिया है। यदि चयन से संबंधित प्रतिक्रिया से प्रजनन क्षमता को नुकसान पँहुचता है, तो निश्चित रूप से उच्च प्रजनन बैल के चयनात्मक उपयोग से इसमें सुधार किया जा सकता है। डेयरी पशु प्रजनन में आर्थिक महत्व के अन्य सभी लक्षणों के साथ डीपीआर को शामिल करने की आवश्यकता है। हालांकि परिवर्तन की मात्रा प्रभावशाली नहीं होगी, लेकिन उत्पादन के साथ ही प्रजनन क्षमता में भी सुधार होगा।

संतान परीक्षण कार्यक्रम (पीटीपी, प्रोजेनी टेस्टिंग प्रोग्राम): पीटीपी में, भैंस का चयन 305 दिनों की उत्पादन क्षमता (या कम) पर आधारित है, जिसे डेयरी पशुओं के एमपीपीए के रूप में भी जाना जाता है जोकि इनकी अंतर्निहित दूध उत्पादन क्षमता इंगित करता है। आजीवन प्रदर्शन का अनुमान लगाने पर और अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है । प्रत्येक लैक्टेशन में भैंस के चयन के लिए कुल प्रदर्शन सूचकांक (टीपीआई) विकसित करने के लिए ईपीए के साथ अपेक्षित फर्टीलाइज़िंग क्षमता (ईएफए) लेना होगा । कुल प्रदर्शन सूचकांक (टीपीआई) एक चयन सूचकांक है जिसका उपयोग उच्च उत्पादन, विरूपण, वांछनीय स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता के संयोजन के साथ जानवरों को श्रेणीबद्ध करने के लिए किया जाता है (यंग एंड टेलिस, 1961) । 2003 में यू.एस. होल्स्टीन के लिए डीपीआर को टीपीआई में जोड़ा गया था (रेडेन और सेकोरा, 2003) । होल्स्टीन एसोसिएशन यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका (2017) द्वारा टीपीआई के लिए विभिन्न लक्षणों के लिए दिया गया महत्व: उत्पादन लक्षणों के लिए 46% , स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता 28% और बनावट लक्षणों के लिए 26% था ।

$$\text{TPI} = \left[27\frac{(PTAP)}{19.4} + 16\frac{(PTAF)}{23.0} + 3\frac{(FE)}{45} + 8\frac{(PTAT)}{.73} - 1\frac{(DF)}{1.0} + 11\frac{(UDC)}{.8} + 6\frac{(FLC)}{.85} + 7\frac{(PL)}{1.26} + 5\frac{(SCS)}{13} + 13\frac{(FI)}{1.0} + 2\frac{(DCE)}{1.0} - 1\frac{(DSB)}{0.9} + 3.8 + 2138 \right]$$

कुल प्रदर्शन सूचकांक

PTP = पीटीए प्रोटीन; PTF = पीटीए फैट; FE = फ़ीड दक्षता; PTAT = पीटीए प्रकार; DF = STA डेयरी फॉर्म; UCD = उदर कम्पोजिट; FLC = पैर और पैर कम्पोजिट; PL = पीटीए उत्पादक जीवन; SCS = पीटीए सोमैटिक सेल स्कोर; FI = प्रजनन सूचकांक; DCE = पीटीए काविंग ईज़; DSB = पीटीए बेटी स्टिलबर्थ (होल्सटीन एसोसिएशन यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका, 2017)

प्रजनन क्षमता का अर्थशास्त्र : प्रजनन अक्षमता के कारण डेयरी क्षेत्र में वार्षिक हानि 500 करोड़ रुपये से अधिक है (डेयरी इंडिया, 2007)। 305-दिन के स्तनपान में 1% डीपीआर 73 पौंड दूध के बराबर है। 15 से 20% तक 21 दिन गर्भावस्था दर में सुधार दूध उत्पादन का अनुमानित आर्थिक लाभ मूल्य $ 75.7 / गाय प्रति वर्ष होगा (कैबरेरा, 2011) । 21 दिन गर्भधारण की दर में 1% की वृद्धि से दूध उत्पादन का आर्थिक लाभ मूल्य $ 25 / गाय प्रति वर्ष बढ़ जाएगा (दे वीर्स, 2011) ।

बफ़ेलो बुल फर्टिलिटी : यह शुक्राणुओं की मात्रा, सामान्य अवस्था, शुक्राणुओं गति, नर जननांगो की अवस्था, कामेच्छा (सेक्स ड्राइव), आयु, शरीर की स्थिति, बैलों के बीच सामाजिक संपर्क और संभोग क्षमता पर निर्भर करती है । सोसायटी फॉर थ्रिओजेनोलॉजी द्वारा औपचारिक रूप से ब्रीडिंग साउंडनेस इवैल्यूएशन बैल मूल्यांकन के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण है । कासा(कम्प्यूटर असिस्टेड सीमेन एनालिसिस) ने शुक्राणु गति विशेषता विश्लेषण की दक्षता में वृद्धि की है (सेलम एवं अन्य, 2015)। लाइव स्पर्म काउंट मेम्ब्रेन इंटेक्टनेस को दर्शाता है। होस्ट(हाइपो-ओसमोटिक स्वेलिंग टेस्ट) प्लाज्मा झिल्ली में ऑस्मोटिक विनियमन की क्षमता का पता लगाता है (पेट्रुनकिना एवं अन्य, 2007) । एच.एस.पी 70 (हीट शॉक प्रोटीन 70) शुक्राणु ऊसाइट इंटरैक्शन (कमरुद्दीन एवं अन्य,1996) शुक्राणु कैपिटेशन, ज़ोना एडहेशन एवं पेनेट्रेशन (एस्क्विथ एवं अन्य , 2005) में मदद करता है। प्रजनन संबंधी एंटीजन सकारात्मक बैल अपने समकालीन झुण्ड साथी की तुलना में 17-19% अधिक उपजाऊ हैं (बेलिन एवं अन्य, 1998) ।

आनुवंशिक आधार: वर्तमान समय में जीनोम वाइड सिक्वेंसिंग (जीवास) ने जटिल लक्षणों (प्रजनन क्षमता) को प्रभावित करने वाले जीन का पता लगाने की क्षमता को बड़ा दिया है । फॉलिक्युलर डेवलपमेंट प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण आंतरिक प्रक्रियाओं में से एक है। एक शोध अध्ययन ने महत्वपूर्ण जीनों की पहचान करने के लिए फॉलिक्युलर ग्रैनुलोसा कोशिकाओं के जीवास और आर.एन.ए सिक्वेंसिंग को संयोजित किया जो भैंस में प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं।डेटा और नमूने इटैलियन बफ़ेलो ब्रीडर्स एसोसिएशन से प्राप्त इतालवी भूमध्यसागरीय भैंसों के थे। इसमें 90 के अफीमेट्रिक्स एक्सिओम बफैलो एसएनपी ऐरे का उपयोग किया गया था । एसएनपी, जीनोमिक क्षेत्र, और जीन को पहचानें जो सम्बंधित थे प्रजनन लक्षणों के साथ 40 लोसाई में (28 जीनों से संबंधित) छह प्रजनन लक्षणों के साथ जुड़े होने की पहचान की गई (पहली दूसरी और तीसरी काविंग एज, काविंग अंतराल, गर्भाधान के प्रति सर्विस की संख्या और डेज़ ओपन)। इन

जीनों में से 25 की एमआरएनए अभिव्यक्तियाँ भैंस के फॉलिक्युलर ग्रनुलोसा कोशिकाओं में भी देखी गईं। आईजीएफबीपी7 जीन ने पूरे एंट्रल फॉलिक्युलर विकास के दौरान उच्च स्तर की अभिव्यक्ति दिखाई। जब इसे नॉकआउट किया गया तो सेल एपोप्टोसिस में वृद्धि हुई और प्रोजेस्टेरोन और एस्ट्राडियोल का उत्पादन भी बढ़ गया और सेल प्रसार में कमी आई। इसलिए, इस अध्ययन द्वारा कहा जा सकता है कि भैंस के प्रजनन संबंधी लक्षणों से जुड़े जीनों में फॉलिक्युलर विकास को नियंत्रित करके प्रजनन क्षमता प्रभावित की जा सकती है। प्रजनन क्षमता के लिए उम्मीदवार जीन के साथ संबंध में कई अलग-अलग एसएनपी की पहचान की गई है जो शुक्राणु मापदंडों और भैंस के बैल की गर्भाधान दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। उन्हें भैंस के बैल के चयन के लिए संभावित मार्कर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है (ली एवं अन्य, 2018)।

गायों में प्रतिपक्षी लक्षणों का एक साथ सुधार :

आई.एफ.आई.एच-1 के भीतर स्थित अनुकूल एसएनपी एलील ने दूध की पैदावार में वृद्धि की और पहले से सफल गर्भाधान के अंतराल का एक्सपेक्टेड ब्रीडिंग वैल्यू (ई.बी.वी) भी बड़ा दिया (विल्किंस एंड गेल 2010)। एसएनपी की पहचान एसएलसी1ए1 जीन में की गई है, इसी एलील का गायों में उत्पादन और गर्भाधान पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। सीसीएनबी-1 जीन में स्थित एक ही एलील पर ब्रीडिंग करने से दुग्ध उत्पादन और डेज ओपन दोनों में काफी सुधार होता है। एन-एसिटाइल गैलेक्टोसामिनिल ट्रांसफरेज़ के लिए कोडिंग, जीएलएनटी-2 जीन में स्थित एसएनपी के लिए फैट-यील्ड और डेज ओपन के लिए समान सकारात्मक दिशा मिली (प्रिमेल एवं अन्य, 2015)।

निष्कर्ष:

किसी भी उद्देश्य के लिए ब्रीडिंग प्लान में लक्षणों को टीपीआई के रूप में उनके आर्थिक मूल्य के अनुसार संतुलित होना चाहिए। उद्देश्य की उपलब्धि में थोड़ी देरी हो सकती है, लेकिन इससे समग्र सुधार होगा। चूँकि ऐसा कहा जाता है कि बैल झुंड के आधे से अधिक है, इसलिए सख्त ब्रीडिंग साउंडनेस इवैल्यूएशन किया जाना चाहिए, जिसके बाद कासा द्वारा सटीक वीर्य विश्लेषण किया जाए। प्रजनन क्षमता में सुधार के लिए डीपीआर को एक आदर्श विशेषता के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि यह सर्विस पीरियड के साथ-साथ वोलंटरी वेटिंग पीरियड को भी ध्यान में रखता है और अन्य प्रजनन लक्षणों के साथ भी अत्यधिक सहसम्बन्धित है। एक उम्मीदवार जीन के भीतर उत्पादन और प्रजनन दोनों के लिए लाभकारी एसएनपी जीनोटाइप की पहचान के माध्यम से एक साथ दोनों का सुधार हो सकता है। ऐसे एसएनपी की पहचान गायों और सूअरों के लिए की गई है और भैंसों में भी इसके लिए गुंजाइश बनाई जा सकती है।

नियंत्रित प्रजनन विधि द्वारा गौवंशीय पशुओं में गर्भधारण

सत्यनिधि शुक्ला एवं उमा शंकर तिवारी

पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय जबलपुर (मध्य प्रदेश)

नियंत्रित प्रजनन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कई मादा पशुओं को एक साथ गर्मी लाकर गर्भधारण कराया जा सकता है। इस प्रक्रिया में मद चक्र को कई तरीकों से घटाया या बढ़ाया जा सकता है एवं अण्डोत्सर्ग की प्रक्रिया एक साथ कराई जा सकती है। नियंत्रित प्रजनन विधि गायों की तुलना में भैंसों में ज्यादा कारगर साबित हो सकती है क्योंकि भैंसों में शांतमद या मदकाल मालूम न कर पाना एक गंभीर संमस्या है, ऐसे जानवरों में मदतुल्यकालन प्रक्रिया का उपयोग कर कृत्रिम गर्भाधान कराने से जानवरों को गर्भित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के द्वारा 21 दिन के मद चक्र को घटा कर पॉच दिन भी किया जा सकता है।

नियंत्रित प्रजनन के लाभ -

1. नियंत्रित प्रजनन से डेयरी में उपस्थित मादा पशुओं में समय-समय पर समूहों में गर्भधारण कराया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे वर्श भर मादा पशुओं में बच्चे देने की प्रक्रिया एवं दुग्ध उत्पादन कर सकते है।
2. इस प्रक्रिया के द्वारा डेयरी फार्म पर धन खर्च जैसे वीर्य के रख-रखाव, डॉक्टर को बार-बार बुलाने का खर्च, श्रमिक एवं सांड पालने का खर्च कम हो जाता है।
3. इस प्रक्रिया में गर्मी (मद चक्र) को पहचानने की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।
4. निश्चित समय पर कृत्रिम गर्भधान द्वारा एक साथ बहुत सारे जानवरों का गर्भाधान कराया जा सकता है।
5. इस प्रक्रिया में बार-बार गर्मी में आने वाले पशु (रिपीट ब्रीडर) के संख्या में कमी होती है।
6. इस प्रक्रिया द्वारा डेयरी फार्म पर पशु प्रबंधन (पशु प्रजनन, प्रसव एवं पोषण) अच्छी तरीके से किया जा सकता है।
7. इसके द्वारा दुधारू भैंसों, पड़ियों एवं गायों में प्रजनन क्षमता बढ़ जाती है।
8. मद काल में न आने की समस्या (एनइस्ट्रस) से निजात पाया जा सकता है, तदानुसार दो क्रमिक ब्यात अंतराल कम करके ज्यादा दूध उत्पादन ले सकते हैं
9. इस विधि में पचास प्रतिशत से भी ज्यादा मादा पशुओं में गर्भधारण पाया गया है।

इस प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए कुछ आवश्यक बिंदु निम्न है -

1. उपयुक्त मद तुल्य कालन (हीट सिंक्रोनाइजेसन) प्रोटोकॉल का चयन करके।
2. जानवरों को संपूर्ण पोषण देकर।
3. अच्छी नस्ल एवं गुणवत्ता वाले सांड के वीर्य का प्रयोग करके।
4. अच्छी नस्ल के दुधारू पशुओं का चयन करके।

मदचक्र तुल्यकाल के प्रोटोकॉल (उपयोग करने की विधि)

1. एक इंजेक्सन पी. जी. एफ. टू. अल्फा प्रोटोकाल
2. दो इंजेक्सन पी. जी. एफ. टू. अल्फा प्रोटोकाल
3. ओवसिंच (जी.पी.जी.) प्रोटोकाल

- यदि जानवर मद चक्र में है तो एक इंजेक्सन (प्रोस्टाग्लान्डिन एफ.टू.अल्फा जैसे कि क्लोप्रोस्टिनाल / 500 माइक्रोग्राम कुल डोज के हिसाब से अथवा डाइनोप्रोस्ट ट्रोमीथामिन / 25 मिलीग्राम सम्पूर्ण डोज के हिसाब से इन्ट्रामस्कुलर एक बार) का उपयोग अंडाशय मे कार्पसल्युटियम होने पर करते है। ऐसा करने के 48-72 घंटे में जानवर हीट (मद) में आ जाता है, अतः इस मद के समय 12 घंटे के अंतराल से दो बार कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिये।
- दो इंजेक्सन (प्रोस्टाग्लान्डिन एफ. टू. अल्फा जैसे कि क्लोप्रोस्टिनाल / 500 माइक्रोग्राम कुल डोज के हिसाब से अथवा डाइनोप्रोस्ट ट्रोमीथामिन / 25 मिलीग्राम सम्पूर्ण डोज के हिसाब से इन्ट्रामस्कुलर) ग्यारह दिनों के अंतराल पर देते है, दूसरा इंजेक्सन देने के 48-96 घंटे के अन्दर जानवर हीट

(मद) में आ जाता है अतः उचित समय में कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिये।

- यदि जानवर चक्र में नही है तो ओवसिंच एवं इन्सुलिन परिवर्तित ओवसिंच का प्रयोग किया जा सकता है इसमें जी.एन.आर.एच. जैसे कि रिसेप्टाल (बुसेरेलिन ऐसीटेट) 5 मिली. (0 व 9 वे दिन पर इन्ट्रामस्कुलर) एवं पी. जी. एफ. टू. अल्फा (7 वे दिन) पर लगाना चाहिये तथा इन्सुलिन (0, 1 एवं 2 दिन पर / 0.25 आई. यू. प्रति किलोग्राम शरीर वजन के हिसाब से) त्वचा के नीचे लगाते हैं। इसके बाद 10 वें व 11 वें दिन पर कृत्रिम गर्भाधान करना चाहिये। इन्सुलिन परिवर्तित प्रोटोकॉल के अच्छे परिणाम गाय व भैसों में पाये गये है।
- उपरोक्त प्रक्रिया अच्छे नस्ल के पशुओं के लिए उपयुक्त है।
- इस प्रक्रिया में इलाज का खर्च एक से डेढ़ हजार रूपये प्रति जानवर आता है जो कि दुग्ध उत्पादन एवं अन्य खर्च (श्रमिक, रख-रखाव, पोषण, एवं ब्यात अंतराल) की तुलना में नगण्य हैं।
- यदि पशुपालक बतायी गयी विधि का प्रयोग पशु प्रजनन एवं प्रबंधन में करेंगे तो पशु प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन बेहतर ढंग से प्राप्त कर सकते हैं।

जंसकारी घोड़ा : लद्दाख की दुर्गम परिस्थितियों के लिए एक उत्तम नस्ल

प्रिंस विवेक, मोनिका सोढ़ी, रणजीत सिंह कटारिया, साकेत कुमार निरंजन, विजय कुमार भारती, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001

भारतीय लेह-लद्दाख क्षेत्र में मौजूद पशुधन जैसे: लद्दाखी गाय, याक, भेड़, चांगथांगी बकरी, दो कूबड़ वाला ऊंट, जीएस म्यूल (खच्चर) और जंसकारी घोड़ा (जंसकार पोनीज), आदि वहाँ के लोगों की जीविका में बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहाँ पर भूमि संसाधन अल्प और टुकड़ों मे होने के कारण फसलों के उत्पाद को अपने खेतों से घरों तक ले जाने में भी पशुधन प्रमुख भूमिका निभाता है। पालतू पशुओं मे घोड़ा एक बहुत ही विकसित और कुशल प्रजाति का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि इसकी शारीरिक बनावट इसे गति और धैर्य के साथ भिन्न प्रकार के वस्तुओं या सामान को ढोने की क्षमता बनाए रखने मे सहायता करता है। इसमें असाधारण धावक प्रदर्शन के लिए कार्यात्मक और संरचनात्मक अनुकूलन की एक प्रचुर क्षमता होती है, जिसमें मांसपेशियों का विकास, (ए) और (बी) प्रकार का उच्च मांसपेशीफाइबर का अनुपात, उच्च मात्रा मे माइटोकॉन्ड्रिया की घनत्व तथा रक्त मे अत्यधिक ऑक्सीजन-वहन करने की क्षमता शामिल है। कार्बन डाईऑक्साइड के लिए रक्त, बफरिंग और परिवहन क्षमता, ऊर्जा सब्सट्रेट (विशेष रूप से ग्लाइकोजन) के मांसपेशियों में भंडारण, यकृत और मांसपेशियों मे लैक्टेट क्षमता की कमी, और थर्मोरेग्यूलेशन के लिए वाष्पीकरण के कुशल उपयोग शामिल हैं।

राष्ट्रीय कृषि आयोग (1996) के अनुसार, भारत में घोड़ों को मोटे तौर पर दो वर्गों में रखा गया है। पहले धीमी गति से चलने और सामान ढोने वाले और दूसरे तेजी से दौड़ने वाले और सवारी के लिए या गाड़ियां खींचने में इस्तेमाल किए जाने वाले घोड़े। घोड़ों की देसी नस्लों में मारवाड़ी, क्च्छी-सिन्धी, काठियावाड़ी, मणिपुरी, स्पीति, भूटिया और जंसकारी शामिल हैं। इनमें से, मारवाड़ी और काठियावाड़ी को दो अलग-अलग नस्लें माना जाता है, हालांकि दोनों अरबी मूल के प्रकार के होने की पुष्टि करते है जबकि अन्य घोड़े अपनी विशेषताओं में मंगोलियाई टट्टू के समान हैं। काठियावाड़ (गुजरात) और राजस्थान में क्रमशः काठियावाड़ी और मारवाड़ी नस्लें पायी जाती हैं। इन नस्लों का उनकी उपयोगिता और सुंदरता, दोनों के लिए चुना गया है। भूटिया, स्पीति, जंसकारी मुख्य रूप से हिमालय पर्वतमाला के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में विदेशी नस्ल जैसे थोरोब्रेड नस्ल, जलीय नस्ल, अरबी, पोलिश, कोनीमरा और हाफलिंगर भी पायी जाती है। यह माना जाता है कि अव्यवस्थित प्रजनन और अच्छे जानवरों की उपलब्धता की कमी के परिणामस्वरूप घोड़ों की सभी देसी नस्लों की गुणवत्ता एवं संख्या में तेजी से कम रही है। जब तक उंच स्तर पर इन्हें बचाने की प्रतिबद्धता नहीं हो जाती, तब तक इस बात की संभावना है कि घोड़े की आबादी /नस्लें अपने ही घर में अपनी पहचान खो देंगी, जो कि एक चिंता का विषय है।

लेह-लद्दाख की उच्च ऊंचाई वाला वातावरण बहुत ही दुर्गम और कठिनाईयों से भरा होता है। इन क्षेत्रों में पर्यावरणीय तनाव के विभिन्न कारक मौजूद होते हैं। यहाँ सर्दियाँ अधिक समय के लिये होतीं हैं और तापमान मे भारी गिरावट (-40° सेंटी ग्रेड) होती है जोकि गर्मियों में बढ़कर (+35° सेंटी ग्रेड) हो जाता है। वर्षा की कमी (८०-३०० मिमी) होने के कारण नमीं/आर्द्रता की यहाँ कमी (२५-४०%) रहती है। तीखीं धूप और उच्च ऊंचाई होने के कारण परा-बैंगनी किरणों की चमक अधिक होती है। उच्च हवा का वेग और कंपकंपा देने वाली ठंड एक विशेष और विषम परिस्थिति को उजागर करते हैं। उच्च ऊंचाई तनाव के कारकों में से कम तापमान के साथ-साथ उंच ऊँचाई पर ऑक्सीजन की कमी मुख्य कारक होता है,क्योंकि बाकी सभी विषम परिस्थियों से विशेष सुविधा के द्वारा बचा जा सकता है, लेकिन ऑक्सीजन की कमी से बचना मुश्किल है।

इन उच्च पर्वतीय इलाकों में कठोर जलवायु के साथ-साथ भूस्खलन की स्थिति सदैव बनी रहतीं है। सड़क निर्माण में मुश्किलों के चलते,

मोटर चालित वाहनों से परिवहन भी अत्यंत मुश्किल है तथा कभी-कभी कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में अधिक समय लेने के कारण काफी ख़र्चीला भी होता है। उच्च लागत के कारण हेलीकॉप्टर द्वारा सामग्री पहूँचाना हमेशा संभव नहीं हो पाता, क्योंकि उच्च ऊँचाई पर भार और लिफ्ट क्षमता भी कम हो जाती है। अच्छे राजमार्गों या रेलमार्गों के बिना, सैनिकों और उनके लिए आवश्यक सामग्री की आपूर्ति को आसानी से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। दुर्गम पहाड़ी रास्तों के कारण सैनिकों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित करने में बहुत अधिक समय लगता है। टैंको और तोपों का वज़न कई गुना अधिक होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने मे भारी कठिनाई होती है। शत्रुतापूर्ण घुसपैठ को रोकने और इन क्षेत्रों की रखवाली में लगे जवानों के लिए राशन आपूर्ति श्रृंखला की आवश्यकता होती है। इनके लिये इस दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में जी एस म्यूल (खच्चर) और जंसकारी घोड़ों के द्वारा आवश्यक सामग्री की आपूर्ति की जाती है। खासकर इन जगहों के लिए स्थानीय पर्यावरण में ढलें जंसकारी पोनी बहुत ही ज्यादा ऊपयुक्त माने जाते हैं, क्योकि अत्यधिक ठंडी जलवायु का सामना करने की क्षमता, अथक परिश्रम, और उंच ऊंचाई पर भार ले जाने की क्षमता इनमें जी एस खच्चर के मुकाबले अधिक होती है। इस पोनी मे रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है, छोटे आकार के होने के कारण भार वहन के लिए इन्हें ऊपयुक्त माना गया है। डीआरडीओ-रक्षा ऊंच तुंगता अनुसंधान संस्थान (डिहार) द्वारा परीक्षण किए गए, उच्च ऊंचाई वाले ठंडे मरुस्थलीय जलवायु की स्थिति के लिए यह जंसकारी घोड़े निश्चित रूप से उपयोगी मानी गई है।

चित्र - शारीरिक मापन और रक्त के नमूने संग्रह का नुबरा घाटी में जंसकारी घोड़ों का अध्यन

जंसकार घोड़ों की विशेषताएँ एवं पहचान

जंसकारी घोड़ा, ट्रांस-हिमालयन प्रदेश कारगिल और लद्दाख के जंसकार घाटी मे पाये जाने वाली एक क्षेत्रीय नस्ल है।

ये पोनीज आकार में मध्यम, अच्छी तरह से निर्मित और १२०-१४० सेमी ऊंचे होते हैं। इनकी आँखें प्रमुख रूप से अंडाकार और गोल, भारी और लंबी पूंछ और एक समान कमर इनकी पहचान होती हैं। शरीर के बाल लंबे और चमकदार होते हैं। यह एक छोटे घोड़े की तरह दिखता है और शरीर का आकार नाटा, मोटे कान, छोटे पैर, मजबूत खुर, भारी बाल कोट, छाती मध्यम चौड़ी, प्रमुख रंग स्लेरी, भूरा और भूरा लाल इनकी पहचान होती है। शारीरिक मांप जैसे - शरीर की लंबाई (कंधे के बिंदु से नितंब तक) १३५-१५४, चेहरे की लंबाई ६०-६८, क्रुप की ऊँचाई १२१-१३५, छाती का घेरा १४०-१८२, कानों के आधार के बीच की दूरी १३-१५, टांगे-परिधि १५-२०, लंबाई २०-२४, खुर की परिधि सामने से ३३-३८, और पींछे से ३३-४० सेंटी मीटर पायी गयी हैं। यह घोड़ा लद्दाख सेक्टर के स्पीति घोड़ों के समान हैं। इन घोडों को लद्दाख में जंसकार घाटी जोकि हिमालय श्रृंखला के उत्तरी क्षेत्र (कारगिल) में स्थित है, उसकी नस्ल माना जाता है।ये घोड़े भारत की पाँच स्वदेशी नस्लों में से एक है और स्थानीय स्तर पर उच्च ऊंचाई और ठंडे रेगिस्तान की परिस्थितियों के लिए बहुत अच्छी तरह से अनुकूलित हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में सवारी और भार वहन करते समय शारीरिक संतुलन बनाये रखने की क्षमता इसका विशेष गुण है। इसलिए, भार वाहक जानवरों के रूप में इनकी उपयुक्तता के कारण, लद्दाख-सेक्टर और अन्य उच्च पर्वतीय क्षेत्र में सभी इलाके के वाहनों के रूप में तैनाती के लिए इनकी मांग बढ़ रही है। इसी कारण से भारतीय फौज के लिये इस क्षेत्र में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है और काफी संख्या में फौज इन्हें पाल रही है। इन पोनीज को साहसिक जानवर माना जाता है। ये जानवर वास्तव में मानव सभ्यता के लिए अपरिहार्य है, और व्यापक रूप से दूर-दराज के इलाकों और ऊंचे पहाड़ों के किसी न किसी इलाके में स्थानीय लोगों द्वारा भार वहन के कार्य मे उपयोग किए जाते हैं। आज के आधुनिकीकरण के दौर में इन घोड़े के महत्व को कम नहीं आंका जा सकता क्योकि, कारगिल युद्ध के संचालन के दौरान जंसकारी घोड़े (पोनीज़) के महत्व को प्रदर्शित किया गया था। इसे इसलिए चुना गया क्योंकि, ये इस क्षेत्र के लिए स्थानीय है और उच्च ऊंचाई के लिए पूर्ण रूप से अनुकूलित हैं। ये घोड़े आमतौर पर विनम्र और रख-रखाव में आसान होते हैं। इन घोड़ों को संकरी पटरियों पर चलने की काबिलियत के लिए चयन किया गया है, और भार वहन क्षमता जी एस म्यूल (खच्चर) की तरह ही होती है। ये रोगों और विकृतियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते है। ये स्थानीय घास और चारे पर अच्छी तरह से जीवित रह सकते हैं, और आपात स्थिति के मामले में, बहुत तत्परता से तैनात किए जा सकते हैं। इस कारन से ज़ांस्करी घोड़ा का प्रबंधन कम से कम लागत में किया जा सकता है। लेह में डीआरडीओ के रक्षा ऊंच तुंगता अनुसंधान संस्थान (डिहार) प्रयोगशाला ने जंसकारी घोड़े को अपग्रेड किया है। नेशनल लाइवस्टॉक सेंसस सर्वे, 2012 के अनुसार लद्दाख की अन्य घाटियों में लगभग नौ हजार के करीब ही जंस्कारी घोड़े मौजूद हैं। हलांकी गैर-वंशीय पोनीज और विदेशी नस्लों के साथ बड़े पैमाने पर प्रजनन ने इस नस्ल को खतरे में डाल दिया है। पशुपालन विभाग, जम्मू और कश्मीर ने हाल ही में चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से इस नस्ल को महत्वपूर्ण और संरक्षण के लिए स्थापित किया है। इससे पहले, एक अध्ययन में भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीएजीएआर) ने डीहार के साथ मिलकर जंसकारी

पोनीज की जैव रसायनिक गुणों का अध्ययन किया और परिणाम में विभिन्न नस्लों के बीच सही नस्ल की पहचान और विविधता का संकेत दिया। तुलनात्मक बाह्य शारीरिक लक्षणों के द्वारा कार्यात्मक जीन आधारित चिन्हों को इंगित करने के लिए उनकी आनुवंशिक संरचना, और विकासवादी विचलन को समझा जा सकता है। भविष्य में इन विषेश लक्षणों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण जीन लोकस में विविधताओं के आणविक जीनोटाइपिंग की सहायता से भारतीय और यूरोपीय मूल के नस्लों के बीच जीनोमिक भेदभाव को प्रकट करना एक महत्वपूर्ण उपागम है।

उच्च ऊँचाई के सीमांत क्षेत्रों मे राशन आपूर्ति, परिवहन के लिए उपयुक्त और ताकतवर जंसकारी घोड़े की पहचान करना अत्यंत ही महत्वपूर्ण है, जो सफलतापूर्वक उच्च तुंगता की चुनौतियों को आसानी से सहन कर सके। इसलिए अधिक से अधिक भार ले जाने वाले जानवरों की तैनाती के लिए, और जानवरो के अंदर सहनशक्ति (एण्डुरेंस) के जो महत्वपूर्ण चिन्हों को भी मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। एण्डुरेंस चिन्हों का मूल्यांकन कर स्वस्थ, सहनशील और ताकतवर घोड़ों की पहचान और चयन किया जा सके और उनको भार ढ़ोने के कार्य मे तैनात किया जा सके। इसकी पहचान के लिये व्यायामिक सहन शक्ति, और भार वहन क्षमता (लोड कैरिन्ग केपेसिटी) के लिए फिटनेस के स्तर का मूल्यांकन करना जरूरी है।

इन सभी बातों को ध्यान मे रखते हुए, ऑक्सीजन की कमी और भार वहन के दौरान जंसकार पोनीज़ में उत्त्पन्न तनाव के जवाब में शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक परिवर्तनों से संबंधित आँकड़े उपलब्ध करने का निर्णय लिया गया। इसके अलावा जीनोम में परिवर्तन के कारण ट्रांसस्क्रिप्टोम और कार्यात्मक प्रोटीन विश्लेषण के माध्यम से सहन शक्ति से जुड़े जीनों और उनके आणविक मार्गों की पहचान करना शामिल है। यह अध्यन आगे चलकर उत्तम नस्ल के अच्छे ज़ांस्कारी घोड़े के चयन मे मदद करेगा।

निष्कर्ष

ज़ांस्कारी घोड़े (जंसकार पोनीज) वास्तव में उच्च तुंगता में मानव सभ्यता के लिए अपरिहार्य, साहसिक और बेशकीमती जानवर है। अध्ययन के दौरान, जीएस खच्चर की तुलना में जंसकार पोनीज अधिक अनुशासित, आज्ञाकारी और शांत मूलयांकन किया गया है। ज़ांस्कारी घोड़े और जीएस खच्चरों में भार वहन के दौरान उत्पन्न तनाव के जवाब में व्यवस्थित शारीरिक, हेमेटोलॉजिकल, जैव रासायनिक और आणविक परिवर्तनों से संबंधित आँकड़े इक्क्ठे किये गये। इसके अलावा जीनोम मे परिवर्तन के कारण ट्रांसस्क्रिप्टोम और कार्यात्मक प्रोटीन विश्लेषण के माध्यम से सहन शक्ति से जुड़े जीनों और उनके आणविक मार्गों की पहचान के लिए महत्वपूर्ण जानकारी हासिल की गयी। इन सभी मापदंडों के आधार पर जंसकारी पोनीज को उच्च ऊंचाई के दुर्गम पारिस्थियों मे प्रदर्शन के मूल्यांकन के लिए जैविक चिन्हों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

अधिक से अधिक रक्त के नमूने और रक्त कोशिकाओं को एकत्रित कर एवं तुलनात्मक लक्षणों के द्वारा कार्यात्मक जीन आधारित चिन्हों को इंगित करने के लिए उनकी आनुवंशिक संरचना, और विकासवादी विचलन को समझा जा सकता है। भविष्य मे इस महत्वपूर्ण नस्ल को बचाने के लिए संरक्षण के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। लद्दाख के अलग केंद्र-शासित प्रदेश बनने से उम्मीद है कि सभी लद्दाखी पालतू पशुओं विशेषकर लद्दाखी गाय, याक तथा जंसकार पोनीज़ पर विशेष कार्य शुरू किया जा सकेगा।

पशुओं में पीलिया (पीत) रोग

दिग्विजय सिंह[1], अखिलेश कुमार सिंह[2], मनोज कुमार[1] एवं उदय प्रताप सिंह[2]

[1]टी. डी. पी. जी. कॉलेज जौनपुर, उत्तर प्रदेश

[2]बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी

परिचय

पीलिया या जाँडिस एक यकृत रोग है। जो किसी भी कारण यकृत सामान्य क्रिया में अवरोध उत्पन्न होने के कारण होता है। इस रोग में रक्त में बिलीरूबिन की मात्रा बढ़ने लगती है। जिसके कारण त्वचा एवं आँखों में पीलापन बढ़ने लगता है। पीलिया तीन प्रकार की होती है, प्रथम प्रकार की पीलिया में रक्त में लाल रूधिर कणिका (आर. बी. सी.) नष्ट होकर कम होने लगता है, जिसके कारण रक्त में बिलीरूबिन की मात्रा बढ़ती है, और शरीर में रक्त की कमी होने लगती है, इसे हेमोलाइटिक जाँडिस कहते है, दूसरे प्रकार के जाँडिस जिसमें बिलीरूबिन के आँत में पहुँने में बाधा उत्पन्न होती है, तीसरे प्रकार की जाँडिश में लीवर कोशिकाँओं में जहरीली दवा या विषाणु संक्रमण से नुकसान के कारण होता है।

रोग का कारण

पीलिया का मुख्य कारण रक्त में बिलीरूबिन कें मात्रा का अधिक होना है, बिलीरूबिन एक पीले रंग का पदार्थ हैं जो रक्त के लाल रक्त कणिकाँओं के टुटने से बनता है, जब किसी कारण वश लाल रक्त कणिकाँए जल्दी-जल्दी टूटने लगती है तो रक्त में बिलीरूबिन की मात्रा बढ़ने लगती है, और यह शरीर के अन्य अंगों में पहुँच कर पीलापन उत्पन्न करने लगती है, इसके अतिरिक्त दूषित पानी के प्रयोग से, विषाणु संक्रमण, एवं शरीर में रक्त की कमी से भी जानवर में पीलिया रोग होता है।

लक्षण

इस रोग के नाम से ही पता चलता है कि इस रोग का मुख्य लक्षण त्वचा एवं आँख का पीला होना है, इस रोग में पशुओं के आँख में पीलापन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चित्र (01)

चित्र (01) पीलिया से पीड़ित पशु का नेत्र जाँच

इसके अतिरिक्त अन्य लक्षण हैः- जानवर का सुस्त रहना, जानवर का कमजोर हो जाना, अक्सर ज्वर होना, खाने में रूचि न होना, जीभ का पीला होना भी इसका एक लक्षण है। इसके अतिरिक्त खुजली होना, गोबर का सख्त होना, मूत्र का गहरा पीला होना, इत्यादि इसके लक्षण है।

चित्र (02) पीलिया रोग से ग्रसित पशु के लक्षण

रोग का निदॉन

पशुओं में रोग का निदॉन मुख्य रूप से लक्षणों को देखकर किया जाता हैं इसके अतिरिक्त रक्त मे बिलीरूबिन की मात्रा को देखकर इस रोग की पहचान की जा सकती है।

उपचार

पीलिया से ग्रसित पशुओं के उपचार हेतु बेलामाइल इन्जेक्शन की 10 मिली0 एवं लिओटास सिरप की 50 मिली0 मात्रा दिन में एक बार इन्जेक्शन दिया जा सकता है। यदि आवश्यकता हो तो रिन्टोज 500 इन्जेक्सन के 10 मिली0 कान्सीप्लेक्स के साथ अन्तः शिरा दिया में दिया जा सकता है।

इस रोग के उपचार हेतु कुछ आयुर्वेदिक औषधियों जैसे-अरण्डी के पत्ते का रस गदहपुरना (पुनर्नवा) की जड़ का रस, सुनाका की छाल का काढ़ा पशुओ को देने से आशातीत लाभ होता है।

पीलिया की चिकित्सा हेतु पशुओं को निम्नलिखित होम्योपैथिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है।

कार्डअस मैरिएनस-200	लाइकोपोडियम-200
चेलीडोनियम-200	नक्सवोमिका-200
कोलेस्टेरिनम-200	कार्बोवेज-200
कोलोसिंथिस-200	कैमोमिला-200

इसकी 10-15 बूँद मात्रा दिन में तीन बार पशुओं को देते है।

उपचार के समय पशुओं को केवल हरा चारा एवं भूसा देते है। इसके अतिरिक्त गन्ने का रस, शीरा या गुड़ के बने रस को देते है। पशुओं को पूर्ण रूप से आराम देते है।

चित्र (03) पीलिया से पीड़ित पशु का उपचार

रोकथाम

पशुओं को दूषित जल एवं चारा दाना नहीं देना चाहिए एवं साफ-सफाई का ध्यान रखना चाहिए, पीलिया के दौरॉन ऐसा चारा देना चाहिए जिसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटिन, विटामिन सी, विटामिन ई, विटामिन बी0 काम्पलेक्स उपलब्ध है। पीलिया में गन्ने का रस कॉफी फायदेमन्द है, अतः पशु को गन्ने का रस या गुड़ चारे के साथ खिलाना चाहिए।

गोवंशों में टिक संक्रमण: समस्या और समाधान

अवनीश कुमार सिंह[1], करणवीर सिंह[2], कमल जायसवाल[1], मोनिका सोढ़ी[2], प्रवेश कुमारी[2] एवं मनीषी मुकेश[2]

[1]बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

[2]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल-132001 (हरियाणा)

उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय देशों में गोवंश पालन कृषि के बाद एक महत्वपूर्ण आर्थिक व्यवसाय है तथा इन देशों मे रोजगार सृजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, इन प्रदेशों की विस्तृत कृषि योग्य भूमि तथा चारगाहों की उपस्थिती ने इन प्रदेशों को गोपालन के अनुकूल बनाया है अतः इन प्रदेशों की अधिकतर आबादी का पालन पोषण, कृषि एवं अन्य सहायक क्षेत्रों विशेषतया गोपालन पर निर्भर करता है। वही भारतीय परिप्रेक्ष्य में बात करें तो गोपालन ना सिर्फ आर्थिक महत्व का विषय है अपितु यह भारतीय लोगों के आध्यात्मिक पहचान से भी जुड़ा है। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों की पहचान उनकी उच्च तापमान एवं उच्च आर्दता वाले जलवायु से की जाती है तथा ऐसे जलवायु-प्रदेशों में जीव-जंतुओ के अलावा परजीवियों की भी भरमार होती है अतः इन क्षेत्रों के गोवंशों को अनेक परजीवियों का सामना करना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में गोपालन के क्षेत्र में यूरोपीय गो नस्लों की मांग उनकी उच्च दुग्ध उत्पादकता की वजह से लगातार बढ़ी है परंतु टिक एवं टिक जनित बीमारियों प्रति कमजोर प्रतिरोधक क्षमता के कारण इन प्रदेशों में विदेशी नस्लों के प्रवेशन में टिक संक्रमण एक बड़ी बाधा रहा है

टिक: एक परिचय

टिक जिसे 'चिचड़ी', 'कुटकी' या 'किलनी' भी कहा जाता है एक बाह्य-परजीवी हैं जो पशुओं के बाहरी सतह से चिपककर उनका खून चूसते हैं तथा जाने-अनजाने अनेक संक्रामक रोगों के वाहक भी बनते है। प्रत्यक्ष रूप से ये परजीवी पशुओं के बाह्य शरीर से चिपककर उनका खून चूसते रहते हैं तथा टिक चिंता (tick worry) का कारण बनते है जिससे पशुओं में जलन एवं खुजली का होना, खाद्य रूपान्तरण दर में कमी, दुग्ध उत्पादन मे कमी, त्वचा के विकार तथा रक्ताल्पता जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वही अप्रत्यक्ष रूप से ये अनेक संचारी रोगों जैसे अनाप्लाज्मोसीस, बबेसिओसिस, थिलेरिया, लाइम रोग, क्यासानूर फॉरेस्ट डीजीज इत्यादि के प्रसार मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन बीमारियों के संकेत और लक्षण अलग-अलग परजीवियों के आधार पर अलग-अलग होते हैं तथा यह टिक के संक्रमण की गंभीरता, पशु की उम्र और / या स्थिति और रोग की अवस्था इत्यादि पर भी निर्भर करता है। बीमारी की लक्षणों में शामिल हो सकते हैं;

- वजन घटना
- भूख में कमी
- खून की कमी
- अचानक बुखार आना
- दूध का उत्पादन कम होना
- लाल या भूरे रंग का मूत्र (एनाप्लाज्मा मार्जिन मामलों में मौजूद नहीं)
- पीलिया
- तंत्रिका संबंधी संकेत जैसे कि हाइंड क्वार्टर कमजोरी और मांसपेशियों का हिलना

मृत्यु, जो आमतौर पर संक्रमण के तीन सप्ताह बाद होती है, लेकिन किसी भी बिंदु पर 24 घंटे के भीतर भी हो सकती है।

टिक एवं टिक-जनित बीमारियों से होने वाले आर्थिक नुकसान भी इन उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय देशों में एक बड़ी समस्या के रूप मे उभरे हैं, वही विगत वर्षों में वैश्विक तापमान मे हुई बढ़ोतरी ने इस समस्या को और भी विकराल बना दिया है। 1979 में किए गए एक अध्ययन के अनुसार विश्व में टिक और टिक जनित बीमारियों से होने वाला कुल नुकसान 7000 मिलियन अमेरिकी डालर के बराबर था (मैककोस्कर,1979)।

चित्र - विदेशी नस्लों में टिक संक्रमण की समस्या

टिक नियंत्रण के उपाय

दुनिया के अलग-अलग देशों में टिक नियंत्रण के भिन्न-भिन्न तरीके प्रचलित हैं जैसे कि परंपरागत औषधियाँ एवं जड़ी-बूटियाँ, आधुनिक रासायनिक टिकनाशक, टिक-विरोधी वैक्सीन्स इत्यादि। प्रचलित उपायों मे रासायनिक नियंत्रण एक सुलभ परंतु अस्थायी तरीका है तथा इससे जुड़ी अपनी समस्याएँ भी हैं जैसे रसायनों मे होने वाला खर्च, पशुओ तथा पशु-उत्पादों मे उत्पन्न विकार एवं जैव-परिस्थितिकी पर होने वाला प्रतिकूल असर। तात्पर्य ये है कि रासायनिक नियंत्रण के उपायों पर अतिशय निर्भरता क्षणिक समाधान से ज्यादा दूरगामी समस्याओं को जन्म देने वाली है जैसे टिक प्रजातियों में इन रसायनों के प्रति उत्पन्न प्रतिरोधक क्षमता, पशु-उत्पादों में इनके मिलने का खतरा तथा परिस्थितिकी-तंत्र में इनके मिलने से होने वाली दूसरी समस्याए। इसलिये टिक नियंत्रण के अन्य उपायों जैसे कि टिक नियंत्रण कि परम्परागत औषधियों का संवर्धन एवं विकास, टिक नियंत्रक वैकसीनों कि खोज, तथा टिक प्रतिरोधी नस्लों का प्रजनन कार्यक्रमों द्वारा चयन एवं विकास इत्यादि पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

टिक नियंत्रण: एक स्थायी समाधान की ओर

उल्लिखित सभी उपायों मे से टिक प्रतिरोधी नस्लों का विकास एक स्थायी, पर्यावरण अनुकूल एवं आर्थिक रूप से किफ़ायती उपाय है। भारत मे टिक संक्रमण से होने वाले आर्थिक नुकसान का कोई स्पष्ट आंकड़ा तो मौजूद नहीं है परंतु एक अध्ययन के अनुसार यह लगभग 4353 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष के आस पास है (मिनजाव बी, माइक्लिओद ए, 2003) जो भारत जैसे विकासशील देश मे गोपालन के लिए एक बड़ी बाधा है।

हाल ही मे हुये एक सर्वे के अनुसार टिक प्रजातियों मे रासायनिक टिक्कनाशकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता मे लगातार वृद्धि हो रही है। भारत के तीन कृषि जलवायु-प्रदेशों मे किए गए एक अध्ययन के अनुसार इन प्रदेशों मे पायी जाने वाली टिक प्रजाति 'हायलोमा अनलोटिकम' मे प्रथम दर्जे की प्रतिरोधक क्षमता पायी गयी है। वही दूसरी महत्त्वपूर्ण टिक प्रजाति 'रिफिसिफाइलस बूफिलस' मे प्रचलित टिकनाशकों जैसे डेल्टामेथ्रिन एवं अमृताज़ के विरुद्ध उच्च स्तर की प्रतिरोधक क्षमता पायी गयी। टिक मे रासायनिक टिक्कनाशकों के प्रति बढ़ती हुई प्रतिरोधक क्षमता भविष्य के लिए एक चिंताजनक स्थिति है।

1995 ईसवी मे प्रथम टिक वैक्सीन (बीएम86) के निर्माण ने टिक नियंत्रण के क्षेत्र मे एक आशा जगायी थी। परंतु जल्द ही व्यावहारिक स्तर पर इसके परिणाम संतोषजनक नहीं पाये गए। शायद कुछ वैज्ञानिक एवं वाणिज्यिक कारणों से इसे टिक नियंत्रण के लिए उपयोगी नहीं पाया गया एवं साथ ही साथ वैक्सीन की उपलब्धता, अधिक लागत मूल्य तथा भिन्न- भिन्न नस्लों की भिन्न-भिन्न प्रतिरोधक क्षमता के कारण बड़े स्तर पर इनका उपयोग अभी संभव नहीं हो सका है। उम्मीद है कि भविष्य मे पशु-वैज्ञानिक इस दिशा मे कार्य करेंगे। अंतिम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय जिसकी चर्चा हम इस लेख मे करेंगे वो है टिक प्रतिरोधी गोवंश का विकास

जो कि टिक-नियंत्रण कि दिशा में एक स्थायी पहल साबित होगी तथा गोपालकों कि आर्थिक हालत एवं पर्यावरण सुधार जैसे मुद्दों को एक साथ समायोजित करेगी। टिक प्रतिरोधी गोवंश के विकास के मुख्यतः दो तरीके है पहला गोवंश पलकों द्वारा टिक प्रतिरोधी नस्लों मे अंतर्निहित प्रतिरोधी क्षमता का चयन करके पीढ़ी दर पीढ़ी उनका उत्तरोत्तर विकास करना तथा दूसरा टिक प्रतिरोधी जीन कि पहचान करके उनका नयी नस्लों के विकास में उपयोग करना।

उष्णकटिबंधीय गोवंशों में उन्नत टिक प्रतिरोधी क्षमता

उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में परजीवियों कि अधिकता के कारण यहाँ पाये जाने वाले गोवंशों में उद्विकास के फलस्वरूप उन्नत प्रतिरोधी क्षमता पायी जाती है, जीव विज्ञानी ऐसा मानते है कि कालक्रम में इन परजीवियों के संपर्क में आने के कारण इन गोवंशों में इन परजीवियों के लिए जन्मजात प्रतिरोधक क्षमता का निर्माण हुआ, अफ्रीकी महाद्वीप एवं भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाने वाली बहुतेरी नस्लों में यूरोपीय नस्लों के मुक़ाबले उन्नत टिक प्रतिरोधी क्षमता देखी गयी है तथा हाल में हुये अध्ययनों में वैज्ञानिक यह पता लगाने कि कोशिश कर रहे है कि इन गोवंशों मे वो कौन-कौन से आंतरिक व बाह्य गुण है जो इन्हे टिक प्रतिरोधी बनाते है, बाहरी गुण जैसे कि कोट (बालों) कि लंबाई, कोट का घनत्व, कोट का रंग, त्वचा कि मोटाई इत्यादि वही आंतरिक गुणों में, त्वचा में पायी जानी वाली प्रतिरक्षी उपायों तथा प्रतिरक्षी तंत्र से जुड़े अन्य प्रतिरक्षी उपाय।

चित्र – भारतीय गोवंशों में टिक प्रतिरोध की बेहतर क्षमता

सफल प्रजनन कार्यक्रम के लिए टिक प्रतिरोधी जीन व मार्कर का चयन

भारतीय गोवंशों में टिक प्रतिरोधी क्षमता के लिए उत्तरदायी जीन व उनसे जुड़े मार्कर का प्रयोग टिक प्रतिरोधी नस्लों के पहचान, विकास एवं संवर्धन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है तथा गोपालकों की रासायनिक निर्भरता को कम करके उन्हे फायदा पाहुचा सकता है परंतु जीन के चयन मे यह ध्यान रखने की जरूरत होगी कि तिक प्रतिरोधी गुण आनुवांशिक हो अर्थात यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होने वाले हो तथा टिक प्रतिरोधी गुण, गोवंशों के दुग्ध उत्पादन एवं उनके प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल असर ना डाले, एक सफल प्रजनन कार्यक्रम के लिए जरूरी है कि वो अपने सभी लक्ष्यो को पूरा करे इसलिए अगर टिक प्रतिरोधी जीन का चयन दूसरी नयी समस्यायों को जन्म देता हो तो इसे एक सफल प्रजनन कार्यक्रम नहीं समझा जाएगा, परंतु खुशी कि बात है कि विभिन्न अध्ययनों में यह बात सामने आई है कि टिक प्रतिरोधी क्षमता किसी भी उत्पादक गुण पर नकारात्मक असर नहीं डालता अर्थात टिक प्रतिरोधी गुणो का चयन एक सही विकल्प साबित होगा। विभिन्न अध्ययनों मे हुये क्यू टी एल मैपिंग ने गो जीनोम में अनेक हिस्सों की पहचान की है जो टिक प्रतिरोधी क्षमता से जुड़े हुये है। टिक प्रतिरोधक क्षमता से जुड़े कई जिम्मेदार 'उम्मीदवार जींस' की भी खोज की गयी है जो टिक प्रतिरोध मे अहम भूमिका निभाते है जैसे की 'इंटेग्रिन अल्फा ११'(पोर्टो नेटो एल० आर० एट

आल, २०१०), 'एम एच सी (बोवाइन ल्यूकोसाइट एंटीजेन) डी आर बी ३.२' (मार्टिनेज एम० एल० एट आल,२००६), 'इंटरफेरोन गामा- सी' (मरयम जे० एट आल, २०१२)। इन जींस में समय एवं वातावरण के कारण हुये उत्परिवर्तन एवं उनका टिक प्रतिरोधी गुणों पर प्रभाव इत्यादि का अध्ययन करके टिक प्रतिरोधी गोवंश का विकास किया जा सकता है।

विश्व के विभिन्न प्रजनन कार्यक्रमों में उच्च टिक प्रतिरोधी क्षमता के साथ उच्च दुग्ध उत्पादकता वाले गोवंशों का मिश्रण कर संकर नस्लों का विकास किया गया है उदाहरण के लिए ऑस्ट्रेलियन फ्रीजियन साहिवाल जो कि ना सिर्फ उच्च टिक प्रतिरोधी गुण बल्कि उच्च दुग्ध उत्पादक क्षमता के लिए भी जानी जाती है।

चित्र – ऑस्ट्रेलियन फ्रीजिएन साहिवाल

संदर्भ:

मैककोस्कर पी जे 1979. ग्लोबल आस्पेक्ट्स ऑफ द मैनेजमेंट एंड कंट्रोल ऑफ टिक्स ऑफ वेटेरिनरी इंपोर्टेन्स. रिसेंट एडवानसेस इन अकेरोलोजी (द्वितीय), पी. 45-53. न्यूयॉर्क, एन वाइ, यू. एस. ए., अकेडमिक प्रेस.

मिनजाव बी, माइक्लिओद ए, २००३. टिक-बोर्न डीजीजेस एंड पोवर्टी। द एम्पैक्ट ऑफ टिक्स एंड टिक-बोर्न डीजीजेस ऑन द लिवलिहुड ऑफ स्माल-स्केल एंड मार्जिनल लाइव्स्टाक औनेर्स इन इंडिया एंड ईस्टर्न एंड सौदर्न अफ्रीका. रिसर्च रिपोर्ट .डी एफ आई डी एनिमल हेल्थ प्रोग्राम ,सेंटर फॉर ट्रोपिकल वेटेरिनरी मेडिसिन, यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग यू के. 2003.

मार्टिनेज एम एल , मकैडो एम ए ,नेसीमेंटों सी, सिल्वा वी जी बी एम, रोबेर्टों टी, फरलोंग जे, प्रटा एम सी ए, कैंपोस ए एल, मारटा एम, आना लूइसा ए, मारिया पी, रूई वी, २००६. एसोसिएसन ऑफ बो एल ए –डी आर बी ३.२ एलील्स विद टिक (बूफिलस मिक्रोप्लस) रेजीस्टेंस इन कैटल .जेनेटिक्स एंड मोलिक्युलर रिसर्च: जी एम आर.५ .५१३-२४.

पोर्टो नेटो एल आर, बंच आर जे, हैरीसन बी ई, प्रयाग के सी & बैरेन्स डब्ल्यू, २०१०. हेप्लोटाइप्स दैट इङ्क्लूड द इंटेग्रिन अल्फा ११ जीन आर असोसियटेड विद टिक बरडेन इन कैटल .बी एम सी जेनेटिक्स, ११, ५५, डी ओ आई :१० ११८६ /१४७१ -२१५६ -११ -५५

मरयम जे, बाबर एम ई, नदीम ए, २०१२० जेनेटिक वेरिएंट्स इन इंटरफेरोन गामा (आई एन एफ- गामा) जीन आर असोसिएटेड विद रेजीस्टेंस अगेन्स्ट टिक इन बॉस टारस एंड बॉस इंडिकस। मोल बायोल रेप ३९: ४५६५-४५७०

रिवोल्वी एल, २०१९. "आस्ट्रेलियन फ्रीजियन साहिवाल" ऑन रिवोल्वी डॉट कॉम. [ऑनलाइन]. रिवोल्वी डॉट कॉम अवेलेबल ऐट: //www.revolvy.com/page/Australian-Friesian-Sahiwal [एक्सेस्ड ८ अगस्त। २०१९].

गाय/भैंसों में रिपीट ब्रीडिंग/फिरावट (पशु का बार-बार गर्मी में आना)

संजय कुमार मिश्र[1] एवं अतुल सक्सेना[2]

[1]पशु चिकित्सा अधिकारी, चौमुहाँ, मथुरा।

[2]आचार्य, उ०प्र०पं० दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, मथुरा।

प्रजनन का यह विकार पशुपालकों तथा कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे पशुपालकों को पशु के गर्भधारण न कर पाने के कारण बहुत आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इससे पशु तीन बार नैसर्गिक प्रजनन/कृत्रिम गर्भाधान कराने के बावजूद गर्भधारण नहीं कर पाता है तथा अपने नियमित मदचक्र में बना रहता है। सामान्य परीक्षण के दौरान वह लगभग नीरोग लगता है।

यदि पशु का मद चक्र सामान्य है, अन्दर के जननांग भी सामान्य हैं और 3 गर्मी तक नैसर्गिक/कृत्रिम गर्भाधान से गर्भ धारण नहीं होता है तो इसे गंभीर नहीं मानना चाहिए और न ही बाँझ मानें क्योंकि इसका उपचार संभव है।

रिपीट ब्रीडर पशुओं को दो भागों में बांट सकते हैंः-

(क) निषेचन का न होना (ख) भ्रूण की मृत्यु हो जाना

(क) निषेचन का न होनाः-

यदि अण्डाणु व शुक्राणु का मिलना यानि निषेचन नहीं होगा तो गर्भधारण भी नहीं होगा और पशु गर्मी में आता रहेगा। अण्डाणु व शुक्राणु के आकार, गति में कोई कमी व कोई विकृति के कारण ऐसा नहीं हो पाता है। यदि अण्डवाहिनी में कोई रूकावट हो तो भी अण्डाणु अण्डवाहिनी में नहीं आ पायेगा जिससे अण्डाणु व शुक्राणु का मिलना नहीं हो पायेगा। लगभग 35-40ः गायें तथा 5-25ः ओसर इसी कारण से रिपीट ब्रीडर हो जाती है।

असामान्य अण्डक्षरण - यह तीन प्रकार से हो सकता है -

- अण्डक्षरण न होना
- अण्डक्षरण का देरी से होना
- एक ही गर्मी में बार-बार अण्डक्षरण होना

अण्डाणु के आकार में विकृति -

आकार में कोई विकृति, अधिक समय या अधिक उम्र का अण्डाणु इनमें अधिकतर अण्डाणु में कोई भाग क्षतिग्रस्त होता है क्योंकि अण्डाणु की उम्र निषेचन से पहले कुछ ही घण्टे होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसकी गति कम होने से पहले निषेचन हो जाना चाहिए।

शुक्राणु का गतिशील नहीं होना -

निषेचन न होने का सबसे प्रमुख कारण है शुक्राणु का गतिशील नहीं होना और इसी कारण से अधिकांश गाय भैसों में सफल निषेचन नहीं हो पाता है।

(ख) भ्रूण की मृत्यु हो जाना -

निम्न कारणों से गर्भावस्था का समय पूर्ण होने से पहले ही भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। अधिकांश रिपीट ब्रीडर पशुओं में 16 दिन से पहले भ्रूण की मृत्यु हो जाती है जिससे ऋतु चक्र अनियमित नहीं होता है और पशु हर 21 दिन बाद गमी/ऋतु में आ जाता है। यदि 16 दिन के बाद भ्रूण की मृत्यु होती है तो पशु 25-35 दिन बाद गर्मी में आता है। ऐसा पशु जो 25-35 दिन या इसके गुणक दिनों में ऋतु चक्र में आता है तो भ्रूण की मृत्यु को कारण मानना चाहिए।

- जन्मजात आनुवांशिक कारणों की वजह से निषेचन नहीं होता है। यदि निषेचन हो भी जाता है तो भ्रूण की मृत्यु हो जाती है।
- निषेचन के बाद भ्रूण के आस-पास का माहौल अनुकूल नहीं होने पर भ्रूण वृद्धि नहीं कर पाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त पशु का पोषण भी इसको प्रभावित करता है।

रिपीट ब्रीडिंग के अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें से निम्नलिखित कारण प्रमुख हैंः-

1. **पशु की प्रजनन नली में वंशानुगत, जन्म से अथवा जन्म के बाद होने वाले विकारः-**

इनमें प्रजनन नली के अंगों में से किसी एक खण्ड का न होना, अण्डाशय का बरसा के साथ जुड़ जाना, अण्डाशय में रसौली, गर्भाशय ग्रीवा का टेढ़ा होना, डिम्ब वाहिनियों में अवरोध का होना, गर्भाशय की अंदर की परत में विकार आदि सम्मिलित हैं।

2. शुक्राणुओं, अंडाणु तथा प्रारम्भिक भ्रूण में वंशानुगत, जन्मजात तथा जन्म के बाद होने वाले विकारः-

इनमें काफी देर से अथवा मदकाल के समाप्त होने पर कृत्रिम गर्भाधान कराने के कारण अंडाणु का निषेचन योग्य समय निकल जाना, अंडाणु अथवा शुक्राणु में विकार, एक ही सांड के वीर्य का कई पीढ़ियों में प्रयोग, शुक्राणु व अण्डाणु में मेल न होना, मदकाल की प्रारम्भिक अवस्था में गर्भाधान कराना जिससे अण्डाणु के पहुँचने तक शुक्राणु पुराने (अधिक उम्र के) हो जाते हैं, अथवा मदकाल समाप्त होने के बाद गर्भाधान कराने से शुक्राणु के पहुँचने तक अण्डाणु (अधिक उम्र के) पुराने हो जाते हैं, आदि प्रमुख हैं।

3. पशु प्रबन्धन में कमियाँः-

इनमें पशुपालक द्वारा पशु के मद काल में होने का सही पता न लगा पाना, अकुशल व्यक्ति से कृत्रिम गर्भाधान कराना, पशु के कुपोषण तथा पशु में तनाव इत्यादि सम्मिलित है।

4. अंतः स्रावी विकारः-

इनमें अण्डाणु का अंडाशय से बाहर न आना, अण्डाणु का अण्डाशय से अधिक समय बाद बाहर आना, सिस्टिक अण्डाशय, पीत काय (कोरपस ल्यूटियम) का असक्षम होना, कमजोर गर्मी इत्यादि शामिल हैं।

5. प्रजनन अंगों के संक्रामक रोग अथवा उनकी सूजनः-

इन रोगों में ट्राइकोमोनास फीटस, विब्रियो फीटस, आई.बी.आर.-आई.पी.वी, कोराइनीवैक्टेरियम पायोजेनीज तथा अन्य जीवाणु व विषाणु शामिल हैं। इसमें गर्भाशय में सूजन हो जाती है जिससे भ्रूण की प्रारम्भिक अवस्था में ही मृत्यु हो जाती है।

उपचार व निवारणः-

1. रिपीट ब्रीडर पशु का परीक्षण व उपचार कुशल पशु चिकित्सक से कराना चाहिए ताकि इसके कारणों का सही पता लग सके। ऐसे पशु को कई बार परीक्षण के लिए बुलाना पड़ सकता है क्योंकि एक बार पशु को देखने से पशु चिकित्सक का किसी खास नतीजे पर पहुँचना कठिन होता है। अण्डाशय से अण्डाणु निकलता है या नहीं इसकी जानकारी पशु का मदकाल में तथा मदकाल के 10 दिन के पश्चात् पुनः परीक्षण करके लगाया जा सकता है। दस दिन के बाद परीक्षण करने पर पशु की अन्य बहुत सी बीमारियों का पता पशु चिकित्सक लगा सकते हैं। अतः पशु चिकित्सक की सलाह पर पशुपालकों को पशु को उसके परीक्षण तथा उपचार के लिए अवश्य लाना चाहिए।
2. डिम्ब वाहिनियों में अवरोध जो कि रिपीट ब्रीडिंग का एक मुख्य कारण है, का पता एक विशेष तकनीक जिसे परिवर्तित पी.एस.पी. टेस्ट कहते हैं, के द्वारा लगाया जा सकता है। अंतःस्रावी विकार के लिए कुछ विशेष हारमोन्स जी.एन.आर.एच. अथवा एल.एच. आदि लगाये जाते हैं।
3. मदकाल में पशु के गर्भाशय से श्लेष्मा (म्यूकस) एकत्रित कर सी.एस.टी. परीक्षण के लिए भेजा जा सकता है, जिससे गर्भाशय के अन्दर रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं का पता लग जाता है तथा उन पर असर करने वाली प्रतिजैविक औषधि का भी ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार उस औषधि के प्रयोग से गर्भाशय के संक्रमण को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. पशु के मद काल का पशुपालक को विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए उसे पशु में मद के लक्षणों का समुचित ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। ताकि वह पशु की मद की सही अवस्था (द्वितीय अर्द्धभाग) में कृत्रिम गर्भाधान करा सके।
5. पशुपालक को पशु की सही मद अवस्था में न होने की दशा में उसका जबरदस्ती गर्भाधान नहीं कराना चाहिए तथा कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता को भी अनावश्यक रूप से पशु को टीका नहीं लगाना चाहिए क्योंकि इससे रिपीट ब्रीडर की संख्या बढ़ती है और पशु को कई और बीमारियाँ होने का खतरा बढ़ जाता है।
6. रिपीट ब्रीडर पशु को गर्भाशय ग्रीवा के मध्य में गर्भाधान करना उचित है क्योंकि कुछ पशुओं में गर्भधारण के बाद भी मदचक्र जारी रहता है। ऐसे पशु का गर्भाशय के अन्दर गर्भाधान करने पर भ्रूण की मृत्यु की पूरी सम्भावना रहती है।
7. पशुपालक को पशु की खुराक पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कुपोषण के शिकार पशु की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। पशु में खनिज मिश्रण एवं विटामिन-ई आदि की कमी से प्रजनन विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
8. देर से अण्डोत्सर्ग करने वाले पशु में 24 धण्टे के अन्तराल पर 2-3 बार गर्भाधान कराने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

राजभाषा खंड

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें 26-3-2018, 30-07-2018, 27-11-2018, 26-02-2019 को आयोजित की गई.

हिंदी पखवाड़े का आयोजन:

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी संस्थान में हिंदी पखवाड़े का आयोजन दिनांक 6-20 सितम्बर 2018 तक किया गया जिसके अंतर्गत कई लिखित/मौखिक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया. इनमें हिंदी निबंध, पत्र लेखन, अनुवाद, टिप्पणी व मसौदा

लेखन प्रतियोगिता में वैज्ञानिकों, कार्मिकों द्वारा उत्साह से भाग लिया गया. मौखिक प्रतियोगिताओं में भाषण, आशु-भाषण, हिंदी शब्द खोज प्रतियोगिता का आयोजन किया गया. वैज्ञानिकों के लिए हिंदी शौध-प्रस्तुतीकरण प्रतियोगिता आयोजित की गई. काव्य-पाठन प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया.

हिंदी पुरस्कार वितरण:

हिंदी पखवाड़े में आयोजित हुई सभी लिखित व मौखिक प्रतियोगिताओं के विजेताओं को संस्थान के "स्थापना-दिवस" समारोह जोकि 20 सितंबर 2018 को आयोजित किया गया था, के दौरान पुरस्कृत किया गया. वर्ष 2017-18 के दौरान राजकीय कार्यों में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग हेतु उत्कृष्ट हिंदी कार्मिक का प्रथम पुरस्कार श्री बाबूराम, द्वितीय पुरस्कार श्री शिवचन्द्र व तृतीय पुरस्कार श्री नरेश नरवाल को मिला.

संस्थान में हिंदी कार्यों का निरीक्षण

संस्थान में हिंदी कार्यों का निरीक्षण, कृषि अनुसन्धान एवं शिक्षण विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली से आये श्री दीपक खत्री द्वारा दिनांक 10-11 अक्तुबर 2018 को किया गया. उनके द्वारा भेजी गई निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार संस्थान में हिंदी का प्रयोग उत्साहवर्धक है.

पशुधन प्रकाश के नवम अंक का विमोचन

दिनांक 20 सितंबर 2018 को संस्थान के स्थापना दिवस समारोह के शुभ अवसर पर हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश के नवम अंक (वर्ष-2018) का विमोचन हुआ.

पुरस्कार प्राप्तियां

- नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति करनाल द्वारा वर्ष 2017-18 के दौरान संस्थान को राजभाषा हिंदी में हुए उत्कृष्ट कार्यों के लिए द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया. जिसमे संस्थान निदेशक डॉ. आर्जव शर्मा को एक ट्रॉफी तथा श्री सतपाल, नामित राजभाषा अधिकारी को प्रमाण पत्र प्रदान किया गया.
- संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश के अष्टम अंक (वर्ष-2017) को नराकास करनाल की ओर से दिनांक 30-11-2018 को प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया.

नामित राजभाषा अधिकारी

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल – 132 001 (हरियाणा) भारत

दूरभाष : 0184-2267918, फैक्स : 0184-2267654

ईमेल : directornbagr@gmail.com; director.nbagr@icar.gov.in

http://www.nbagr.res.in